

पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का सार—



# अष्टछापेतर मध्ययुगीन काव्य में बाल-भाव का साहित्यिक अध्ययन

शोध छात्रा :

(श्रीमती) उमा शर्मा

एम० ए०

नामांकन संख्या एम० ५११६

निर्देशक :

डॉ० शिवशंकर शर्मा

पी-एच-डी०, डी० लिट०

हिन्दी-विभाग,

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़ (उ० प्र०)

सन् १९८१ ई०

T-2439



प्रबन्ध-सार

‘वष्टाफितर मध्ययुगीन हिन्दी-काव्य में बाल-भाव सम्बन्धी

साहित्य का अध्ययन ‘‘

वात्सल्य भाव मनुष्य के मन में कीमल भाव-  
नाओं के एक ऐसे पुत्र के रूप में विद्यमान है, जिसका बालीक उसके सम्पूर्ण  
जीवन को बालीकित कर देता है। मनुष्य भविष्य की वाकांक्षाओं में अपनी  
संतान की प्रतिष्ठाया अनेक सुनहरे स्वप्नों में, अनेक रूपों में देखता है। बिना  
संतान के मानव जीवन में एक बूनाफ व्याप्त हो जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि  
से वात्सल्य - भाव मानव- हृदय का ऐसा नैसर्गिक भाव है, जिसका अविरत  
प्रवाह किसी भी व्यग्रधान को सहन नहीं करता। यदि व्यक्तित्व के जीवन में  
अपनी संतान का अभाव हो, तो उसकी वात्सल्य- भावना समाज के अन्य बालकों  
के क्रिया-कलापों पर केन्द्रित हो जाती है। साहित्यकार की कृति में उसके  
हृदय की भावनाओं के साथ ही उसके वातावरण की अभिव्यक्ति होती है।  
हृदय की कीमल अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यकार किसी बालम्ह  
का सहारा लीज लेता है। इस सहारे के लिए साहित्यकार ने बालक को अपने  
सबसे अधिक निकट पाया है। नारी की सम्पूर्णता मातृत्व में होती है और  
इस प्रकार सृष्टि मात्र में वात्सल्यानुभूति की अजल धारा अविरत रूप से बह  
रही है। सूर्य की प्रथम रश्मि के ऊय के साथ ही मानव ही नहीं, प्रत्येक जीव  
अपने नीड का त्याग करके अपनी संतान के पालन- पोषण के लिए उत्साहपूर्वक

संलग्न हो जाता है और संध्या की वपौ बसे में वापस आता है। यह वात्सल्य-भावना की चरम तृप्ति का परिचायक है।

साहित्य के क्षेत्र में, भारत के वाङ्मय-परिवेश में, साहित्यकारों ने वात्सल्य का विभिन्न रूपों में वर्णन किया है। वात्सल्य की तीव्र अनुभूति वादिकाल से काव्य के जैसे सौपानों की लक्ष्मी हुई मध्यकाल तक वा फूँबी। मध्यकालीन काव्य में वात्सल्य का काव्यशास्त्रीय पद विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुआ। वात्सल्य को संस्कृत के वाचार्यों ने कभी रस के रूप में स्वीकार किया और कभी नहीं किया। वाचार्य भरतमुनि ने वात्सल्य को केवल सैविक परिचय दिया। उसके पश्चात् जैसे विद्वानों ने वात्सल्य की विविध प्रकार से विवेचना प्रस्तुत की। वाचार्य विश्वनाथ ने सर्वप्रथम वात्सल्य को एक स्वतन्त्र रस के रूप में स्थापित किया। उन्होंने वात्सल्य का स्थायी भाव ममता तथा स्नेह माना। वात्सल्य की स्वतन्त्र सत्ता के प्रतिष्ठापन के पश्चात् वात्सल्य-रस से युक्त काव्य की सर्जना हुई। हमने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत वात्सल्य रस के शास्त्रीय पदों का विवेचन करते समय विभिन्न विद्वानों के मतों का यथा संभव विवेचन किया है। विभिन्न विद्वानों ने वात्सल्य की रति, प्रेम से जोड़ने का प्रयत्न किया है। हमने यह उद्घाटित करने का प्रयास किया है कि वात्सल्य का सम्बन्ध व्यक्त के निजी 'राग' से होता है। वस्तुतः माता-पिता के हृदय में संतान के प्रति, गुरु के हृदय में शिष्य के प्रति उत्पन्न रागात्मक भावना ही वात्सल्य-भाव है।

मध्ययुगीन साहित्य में वात्सल्यपरक विवेचन करते समय सर्वप्रथम बृहद्वाप-काव्य का महत्व अनुभव होता है। बृहद्वाप कवियों ने वस्तुमाचार्य की पुष्टिमार्गीय विचारधारा से प्रभावित होकर,

उनके विभिन्न सिद्धान्तों के प्रतिपादन के साथ ही कृष्ण की बाल-कवियों का जन्म किया। कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित उनके बाल-लीलाओं को उन्होंने अपने उत्कृष्ट काव्य का सरस विषय बनाया। वष्टहाप कवियों के काव्य का विवेचन यद्यपि हमारी शोध-सीमा के अन्तर्गत नहीं आता, तथापि बिना उसकी सूक्ष्म विवेचना किए शोध-कार्य में प्रवृत्त होना उचित नहीं था। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में उनके काव्य का प्रसंगगत सांकेतिक परिचय दिया गया है। इसका एक कारण यह भी है कि वष्टहाप काव्य की भाव-भूमि पर ही वष्टहाप काव्य की सर्जना हुई है। कृष्ण का रुटना, मचलना, हठ करना, यशोदा के हृदय की वत्सल-अनुभूति आदि का चित्रण वष्टहाप-तर कवियों की आधार के रूप में वष्टहाप के कवियों से प्राप्त हुआ। अतः पृष्ठभूमि के रूप में उनका परिचय शोध प्रबन्ध के लिए आवश्यक था। सर्वप्रथम वष्टहाप कवियों ने ही भगवान् श्रीकृष्ण के उदात्त, निश्कल एवं पवित्र रूप की लौकिक व्यञ्जना करके हमारे सम्मुख उन्हें सामान्य बालक के रूप में हसत-खेलना प्रस्तुत किया।

मध्ययुगीन काव्य में विभिन्न प्रकार के साहित्य की सर्जना हुई। एक तरफ नाथ पंथ से प्रभावित होकर निर्गुण कवि अपने आराध्य के निर्गुण रूप का प्रतिपादन कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग से प्रभावित सगुणीपासक कवियों ने ब्रह्म की लौकिक धरातल पर प्रस्तुत किया। भक्ति के निर्गुण काव्य की दो शाखाएँ प्रकट हुईं, जिन्हें ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाओं के नाम से अभिहित किया जाता है। हमने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यह उद्दिष्ट किया है कि सत् कवियों ने अपनी बानियाँ के माध्यम से कुटुम्ब के परित्याग की घोषणा की है। उनका



विचार था कि समस्त सांसारिक सम्बन्ध मनुष्य को मोह-माया के जाल में उलझाकर ईश्वर की भक्ति में बाधक बनते हैं। इस बात का उन्होंने अपने काव्य में यथावत् वर्णन भी किया है। मनुष्य के अचेतन मन में कुछ ऐसी हव्हार होती है, जिनका प्रस्फुटन यथासमय यथास्थान स्वयमेव हो जाता है। संत कवियों के काव्य में पारिवारिक परिष्कार के बावजूद पारिवारिक शब्दावली एवं प्रसंगों का उत्तेजक स्वरूप मिलता है। हमने प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ में संत काव्य की वात्सल्य भावना का परिपाक उनकी काव्यगत प्रवृत्तियों की आधार बनाकर किया है। संत कवियों ने अपनी वात्सल्य भावना का उद्घाटन स्पष्ट प्रतीकों के माध्यम से किया है। अनेक स्थलों पर संत कवियों ने वात्सल्य भावना के शुद्ध रूप को विभिन्न प्रकार से रूपान्तरित किया है। इसके लिए उदाहरण देकर अपनी हृदयगत वात्सल्य भावना का परिचय दिया है। संत कवियों ने सत्संग की महिमा का गान किया है। प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ में वात्सल्य भाव के माध्यम से सत्संग की महिमा का गान का संतों ने किस प्रकार किया है, इसको उद्घाटित किया गया है। संत कवियों ने जहाँ एक ओर स्वयं को "राम की बहुरिया" माना है, वहीं दूसरी ओर ईश्वर को माता एवं स्वयं को उसका पुत्र भी घोषित किया है। इस प्रकार की चर्चा करके संत कवियों ने वात्सल्य भावना के परिपाक के साथ ही वैराग्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है। जानाजयी शास्त्र के कवियों ने अनेक सिद्धान्तों की प्रतिपादित करके अपनी विचारधारा को स्पष्ट किया है। उन्होंने अपनी सैद्धान्तिक विचारधारा के प्रतिपादन एवं कु-संस्कारों की शुद्धि के लिए वात्सल्य की भावना का विवेचन किया है। अपनी वात्सल्य भावना का परिचय देते हुए संत कवियों ने वात्सल्य की भावना को प्रसंगवश जीवन की अनिवार्य प्रेरणा के रूप में माना है। संत-काव्य में स्त्री के मातृ

रूप की वंदना प्रायः सर्वत्र मिलती है। यही कारण है कि संतों के उपदेशों की तुलना माता के ममत्व से की गई है। इन्होंने वात्सल्य की भावना की अत्यन्त व्यापक माना है। यह भावना मानव एवं मानवैतर सभी में समान रूप से पाई जाती है। संत कवियों ने पशु-पक्षियों के हृदय की वत्सल-भावना का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया। संत कवियों ने उल्टेबांसियों के माध्यम से विरोधात्मक शब्दों के द्वारा अपनी वात्सल्यानुभूति का परिचय दिया है। कहीं-कहीं वात्सल्य सूक्ष्म शब्दों में रहस्यात्मकता का भी बोध होता है। इसके अतिरिक्त संतों में वात्सल्य सम्बन्धी भावों का प्रकाशन वात्तिक तुष्टि के लिए भी किया है। इन्हें हम संत-सूक्ति भी कह सकते हैं। हमने शोध प्रबन्ध में इस बात को भी स्पष्ट किया है कि संत कवि भाव-सेतु बांधने में इतना विश्वास नहीं करते थे, जितना भाव धारा की सहज मोड़ देने में। संत काव्य की वत्सल भावना को विभिन्न कौटियों में बांट कर हमने उनकी ज्ञान-शुद्धि नीरस बानियाँ में भी वात्सल्य की कोमलता को लीजने का प्रयास किया है। संत कवियों ने वात्सल्य की भावना को धर्म सात्विक एवं साधनात्मक विचारधारा से जोड़ने की चेष्टा की है।

ज्ञानाश्रयी शास्त्रा के संत कवियों की तरह प्रेममार्गी शास्त्रा के सूफी कवियों ने भी ब्रह्म के निर्गुण रूप की प्रतिष्ठा की है। सूफी कवियों ने अपनी विचारधारा के प्रतिपादन के लिए भारत की लोक प्रचलित कथाओं को काव्य का आधार बनाया। सूफी कवियों ने अपनी वात्सल्यानुभूति का परिचय देने के लिए प्रेम कथाओं के आरम्भ में नायक अथवा नायिका के बाल बचन का उल्लेख किया है। उन्होंने ईश्वर को स्त्री के रूप में चित्रित किया है। इन कवियों ने स्त्री रूपी ईश्वर को दिव्य रूप में प्रस्तुत किया और उसकी दिव्यता के परिप्रेक्ष्य में अपनी हृदय की वत्सल-भावना का परिचय दिया है।



सूफी कवियों ने संतान के जन्म से

पीड़ित माता पिता की व्याकुलता का परिचय दिया है कि यदि पुत्र न हो तो मनुष्य को अपना मौलिक वैभव भी निःसार प्रतीत होता है। मनुष्य यही सोचता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका नाम लेने वाला भी कोई नहीं रहेगा। भारतीय संस्कृति में भी पुत्रों द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति मानी गई है। ऐसे अनुभूतिपरक प्रसंगों को हमने इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है। सूफी कवियों ने भारतीय लोक-कथाओं के माध्यम से वात्सल्य भावना को व्यक्त किया है। सूफी काव्य प्रायः ईश्वर सत्य पर आधारित है। ईश्वर की प्राप्ति में किसी भी प्रकार की बाधाओं को लक्ष्मी में सूफी काव्य का नायक सफल होता है। जब नायक की माता उसे कष्ट साध्य साधना में प्रवृत्त होने से रोकती है तो वह अपनी माता से कहता है कि मौलिक जगत् से परे कौलिक जगत् के स्वामी ईश्वर की प्राप्ति में बाधा नहीं डालना चाहिए। इससे ईश्वर की प्रशंसा होती है। सूफी काव्य में कतिपय स्मृतियों के माध्यम से भी वात्सल्यानुभूति की व्यंजना की गई है। इस प्रकार निष्कर्षितः सूफी-काव्य की समस्त वात्सल्यानुभूति का परिपाक पारिवारिक परिवेश में हुवा है।

सूफी-काव्य में अभिव्यक्ति 'प्रेम की

पीर' की अवधारणा वात्सल्य की विरहजन्य अनुभूति के माध्यम से की गई है। वात्सल्य-भाव की वियोगजन्य अनुभूति सूफी काव्य की जन-साधारण से सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हुई है।

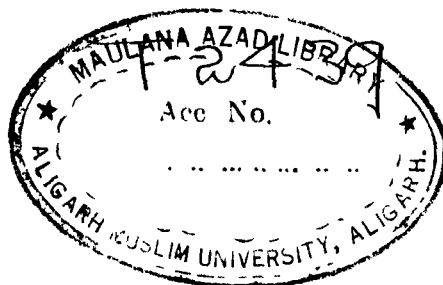
कव्यसुनीन सगुण काव्य धारा में राम-

काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। राम-भक्ति काव्य समाज में व्याप्त अज्ञान को दूर करके, मर्यादित जीवन यापन की प्रेरणा देने में समर्थ हुवा। राम-

काव्य की समस्त प्रसृतियाँ गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य में समाहित हैं। इस काव्य में राम के लोक पर्यायित रूप के साथ ही उनकी बाल-हवि का भी ज्ञान हुआ है। इस काव्य में संयोग-वात्सल्य के विविध चित्र मिलते हैं। राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न का बालपन उनका सहज सद्दियं तथा माता कौसल्यादि के हृदय की अनुभूति का ललित संगम राम-काव्य का सद्दियं है। वात्सल्य की इन माँकियों में राम का लोक पर्यायित रूप सदैव कवि के मनोमस्तिष्क पर बाँझादित रहता है। राम-काव्य में संयोग वर्णन के चित्रों के ही सदृश वियोगजन्य चित्रों की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस काव्य में वर्णित दशरथ, कौसल्या के हृदय की वत्सल-वेदना जनसाधारण की वेदना बन जाती है। इस काव्य में अभिव्यक्ति वत्सल-भावना का रूप सेवक सेव्य तथा पिता-पुत्र के सम्बन्धों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में राम भक्त कवि तुलसी की व्यक्तित्वगत वत्सल भावना का परिचय दिया गया है।

वत्सलभावाय की 'लीलावत्तुल्यवत्यम्'

विचारधारा से प्रभावित होकर समस्त कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल हवियों का उत्कृष्ट वर्णन किया है। वष्टहाप कवियों का काव्य कृष्ण काव्य का आधार स्तम्भ है। उन्हीं के काव्य की अपनी प्रेरणा का ग्रीत मानकर समस्त वष्टहापिटर काव्य की सज्जा हुई। वष्टहापिटर कवि पूर्ण-रूपेण वष्टहाप कवियों की काव्य सज्जा से प्रभावित थे। वष्टहापिटर काव्य हमारे शोध प्रबन्ध का प्रमुख विषय है। वष्टहापिटर कृष्ण काव्य में कृष्ण का बाल वर्णन अत्यन्त ललित फावली में चित्रित है। इन कवियों के काव्य में वात्सल्यानुभूति का चरमोत्कर्ष रूप दिखाई देती है। वष्टहापिटर कवियों ने कृष्ण की बाल-हवि तथा उनके सद्दियं वर्णन के साथ ही उनकी जैवत हठी





प्रभुत्व का समीपनि विवेचन किया है। इन कवियों ने कृष्ण को अवतार माना है। इस दिव्य भावना को इन कवियों ने कि. प्रभुत्व लीकिक धरातल पर लाकर अपनेकाव्य में प्रतिबिम्बित किया है। बृहद्वापरा काव्य में भी कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के अतिरिक्त यशोदा, नंद, देवकी, वसुदेव की वत्सल अनुभूति के चित्र भी प्राप्त होते हैं। इस काव्य में कृष्ण के लीकिक जीवन की लीकिकता के सनि में डाल कर माता यशोदा के हृदय की वत्सल भावना का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में रीतिकालीन वत्सल भावना का भी यथेष्ट वाकतन किया गया है। रीतिकाल में सुगत वैभव के अवसान के कारण कवियों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर बंधन लग गया था। वह कुटिया से निकल कर राव प्रासादक में पहुँच गई थी। राजनीतिक विस्तार का प्रभाव भी रीतिकालीन काव्य पर पड़ा। अतः जो कवि ईश्वर के विभिन्न रूपों को काव्य का विषय बना रहे थे, वे अपने वात्रयदाताओं को प्रसन्न करने जीविकोपार्जन करने लगे। रीति काल में कवि वात्सल्य भाव के प्रति प्रायः उदासीन रहे। किन्तु रीतिकालीन वैभव युक्त कृत्रिम वातावरण में वात्सल्य भावना का नैसर्गिक उद्भूत काव्य में किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त हुआ है। रीतिमुक्त कवियों में वात्सल्यवयी भूत प्रभुत्व का वर्णन मयितकालीन कवियों की तरह करने का प्रयास तो किया, लेकिन वह वर्णन वासनात्मक वातावरण में कुछ समुदाष्ट के साथ ही प्रकट हुआ है।

२५.

इसमें प्रस्तुत शोध

प्रबन्ध में यह स्पष्ट किया है कि वात्सल्य का सहज उद्भूत कृत्रिमता के वातावरण में नहीं रुका, वह <sup>भावना</sup> अवसर पाते ही यत्र तत्र प्रकट होती गई। रीतिकालीन कवियों ने वात्सल्य भावना के लिए कृष्ण के जीवन से

सम्बन्धित घटनाओं की ही काव्य का विषय बनाया, भक्तिकालीन कवियों की ही भाँति कृष्ण राधा आदि के जन्म के अवसर पर आशीर्द-मय वातावरण का चित्रण इन कवियों ने भी किया है।

सांस्कृतिक एवं सामाजिक संदर्भ में

रीतिकालीन कवियों ने मातृ-हृदय की वत्सल-अनुभूति का वर्णन किया है। भक्त कवियों की ही भाँति रीतिकालीन कवियों ने कृष्ण के अलौकिक एवं लौकिक दोनों ही रूपों का काव्य में अवतरित किया है।

भक्तिकालीन वात्सल्य भक्ति एवं रीति-कालीन वात्सल्य भक्ति में विषयगत अन्तर न होते हुए भी भावगत अन्तर सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। भक्त कवियों की अपनी वात्सल्यानुभूति का परिचय देने के लिए किसी का सहारा नहीं लेना पड़ा। रीतिकालीन कवियों ने कृष्ण के बाल्यकाल से सम्बन्धित घटनाओं के वर्णन में पारि-वारिक सम्बन्धों को आधार बनाकर सहज वात्सल्य भाव की विवेचना की है। कहीं कहीं शृंगार का सहारा लेकर वात्सल्य की विवेचना की है।

संक्षेपः समस्त मध्यकालीन वद्वत्वाप,

वद्वत्वापि एवं रीतिकालीन काव्य में वात्सल्य भावना का पर्यावलीकन करने पर ज्ञात होता है कि वात्सल्य भाव वर्णन की प्रवृत्ति नैसर्गिक रूप में सभी को प्रिय रही है। वद्वत्वाप में वात्सल्य-भावना से सम्बन्धित अनेक शोधपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वद्वत्वाप काव्य की वत्सल-भावना का परिचय विस्तरः प्राप्त है। अतः हमने वद्वत्वापि काव्य में प्राप्त वात्सल्यानुभूति को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। वद्वत्वापि काव्य में निःसंदेह वात्सल्य भाव की धारा सहज रूप में विद्यमान है। हमने वद्वत्वापि काव्य की इसी सहज भक्ति युक्त वात्सल्यानुभूति को प्रस्तुत ग्रन्थ में विवेचित किया है।



पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध—



# अष्टछापेतर मध्ययुगीन काव्य में बाल-भाव का साहित्यिक अध्ययन

शोध छात्रा :

(श्रीमती) उमा शर्मा

एम० ए०

नामांकन संख्या एम० ५११६

निर्देशक :

डॉ० शिवशंकर शर्मा

पी-एच-डी०, डी० लिट्०

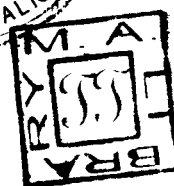
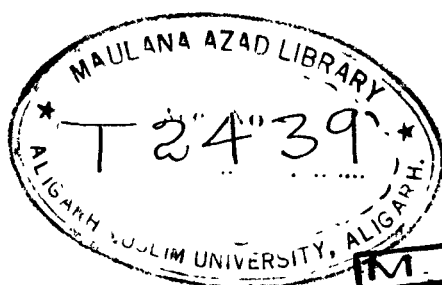
हिन्दी-विभाग,  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,  
अलीगढ़ (उ० प्र०)

सन् १९८१ ई०

  
**CHECKED-2002**



**T2439**



## विषयानुक्रमिका

कव्याय १

विषय प्रवेश

पृ० संख्या १ से २०

- (क) विषय की सीमा और महत्त्व
- (ख) मध्ययुग का काल निर्देश
- (ग) वृष्टहाप कवियों का साहित्यिक योगदान
- (घ) वृष्टहाप कवियों के साम्प्रदायिक सिद्धान्त
  - ब्रही सम्प्रदाय
  - हंस सम्प्रदाय
  - ब्रह्म सम्प्रदाय
  - रुद्र सम्प्रदाय
  - गौडीय सम्प्रदाय
  - राधावल्लभ सम्प्रदाय
  - निष्कर्ष
- (ङ०) शोध की योजना
- (च) प्रस्तुत शोध की मौलिकता

कव्याय २

भारतीय काव्य-शास्त्र के सम्प्रदाय

२१ से ५३

- (क) रस-सम्प्रदाय,



कलङ्कार सम्प्रदाय  
रीति सम्प्रदाय  
ध्वनि सम्प्रदाय  
वङ्गीकृत सम्प्रदाय  
वीचित्य सम्प्रदाय

(स) वात्सल्यपरक शास्त्रीय विवेचन  
वात्सल्य-रस की मूल परम्परा

(ग) वात्सल्य-भाव के मूल तत्त्व

निष्कर्ष

अध्याय ३ मध्ययुगीन भक्ति-काव्य का स्वरूप

५४ से १००

(क) मध्ययुगीन भक्ति-काव्य का स्वरूप

(स) भक्तिकाल की सामान्य परिस्थितियाँ

राजनीतिक

सामाजिक

धार्मिक

साहित्यिक

(ग) प्रमुख भक्त कवियों का बाल-साहित्य

सूरदास

नन्ददास

चतुर्भुजदास

कृतस्वामी

गौ विन्दस्वामी

कृष्णदास

परमानन्ददास

कृष्णदास

रसज्ञान

सूरदास मदनमोहन

जगु भगवान

गंगाबाई

तानसेन

रत्नकृष्ण रि चन्द्रसखी

ब्रजवासीदास

नारायण स्वामी

वीरवल

रसिक प्रीतिम

तुलसीदास

व्यदास

केशवदास

हरधर सिंह

कृपा निवास

रामचरण दास

निष्कर्ष

(स) मध्ययुगीन रीति-काव्य का स्वरूप

सामान्य परिस्थितियाँ

राजनीतिक

सामाजिक

धार्मिक

साहित्यिक

निष्कर्ष

प्रमुख रीतिकालीन कवियों का बाल-साहित्य

बिहारी

केशव

बालम स्वयं शैल

धनानंद

नागरीदास

चाचा हित वृन्दावनदास

ब्रजवासीदास

सूचित

बाबा दीन दयाल गिरि स्व

वदर अनन्य

निष्कर्ष

**व्याय ४ निर्गुण भक्ति-काव्य में बाल-भाव का साहित्यिक**

---

**व्यायन : भाव पदा एवं कलापदा**

---

**(क) ज्ञान मार्ग ( सत-काव्य )**

---

- व- वात्सल्य के शुद्ध स्वरूप का रूपान्तरण
- वा- वात्सल्य-भावना के परिपाक से वात्सल्य की महत्ता का प्रतिपादन
- इ- बाल-भाव के माध्यम से सत्संग की महिमा का गान
- ई- वात्सल्य के माध्यम से सिद्धान्तों की स्थापना एवं कृषिकारों की शुद्धि
- उ - सत-काव्य में बाल-भाव के अन्तर्गत पशु- प्रेम
- ऊ- उत्तर्वासियों में वात्सल्य-भाव
- ए- वात्सल्य तुष्टि के लिए वात्सल्यपूर्ण भावना का संकेत

निष्कर्ष

**(ख) सुफी-काव्य**

---

**प्रेममार्गी शाखा**

- ब- दिव्य बालजन्म के परिप्रेक्ष्य में वात्सल्यानुभूति



- वा- वात्सल्य प्राप्त विरह भावना  
 ह- कभाव जन्म वाकुलता एवं विकलता  
 ई- भारतीय संस्कृति एवं लोक कथाओं से प्रेरित  
 पुत्र कथना पुत्री की कामना  
 उ- विषय प्रेरणा से वात्सल्य-भाव को चुनौती  
 ऊ- वात्सल्य-भाव से मुक्त उपदेशात्मक निषेध  
 ए- कृतीत की स्मृतियों में वात्सल्य-भावना  
 उद्धेक  
 ऐ- पुत्री की स्नेहानुभूति से प्रेरित वात्सल्य-भाव

कव्याय ५ (क) सगुण व्यक्ति काव्य में बाल-भाव साहित्यिक साहित्य का अध्ययन

(क) रामकाव्य

१५ ए० से २५ ए०

- व- राम-काव्य में कवि की व्यक्तिगत वात्सल्य-  
 भावना  
 वा- राम-काव्य में संयोग वात्सल्य से वैविध्यपूर्ण  
 चित्र की कर्मा कियी  
 ह- राम-काव्य में वियोग वात्सल्य की वैविध्यपूर्ण  
 कर्मा कियी

(ख) कृष्णकाव्य

- व- कृष्ण-भवत कवियों की व्यक्तिगत वात्सल्यानुभूति  
 वा- कृष्ण की बाल-लीलाओं में वात्सल्य-भाव  
 ह- कृष्ण की वलौकि लीलाओं में वात्सल्य-भाव

हं- कृष्ण-काव्य में वियोग की अनुप्रास की  
वन्तगत वात्सल्य भाव

कव्याय ६ रीतियुगीन काव्य में बाल-भाव सम्बन्धी साहित्य का

अध्ययन

२५७ से ३०७

- क- शृंगार के श्रौढ में वात्सल्य-भाव का समावेश
- ख- पुत्र जन्म के अवसर पर वात्सल्याभिव्यक्ति
- ग- सांस्कृतिक एवं सामाजिक संदर्भों में बाल-भाव की अभिव्यक्ति
- घ- मातृ-हृदय में वात्सल्य-भाव का उद्गार
- ङ- कृष्ण के अलौकिक बाल रूपों पर आधारित वात्सल्याभिव्यक्ति
- च- कृष्ण के लौकिक बाल-रूपों पर आधारित वात्सल्याभिव्यक्ति

कव्याय ७ पद्ययुगीन भक्ति एवं रीतिकाव्य का बाल-भाव सम्बन्धी

साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

३०८ से ३२९

- क- पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर वात्सल्य-भावना का परिपाक
- ख- ब्रह्म और जीव के भेद पर आधारित सूफी कवियों का वात्सल्य-भाव

- क- राम एवं कृष्ण काव्य में उपलब्ध  
वात्सल्य-भावना का सामान्य वाधार
- ख- बाल-सुलभ लीलाओं में वात्सल्य का निर्देश
- उ- ऐतिहासिक काव्य एवं भक्तिकालीन काव्य में  
वात्सल्य का निरूपण

निष्कर्ष

उपसंहार

३२२ से ३२४

सहायक पुस्तकों की सूची

३३० से ३४४

## सूक्ति

बच्चों के सान्निध्य ने मेरे मन की सदैव प्रभावित किया है। वात्सल्य की <sup>भावना</sup> स्त्री मात्र में संस्कारगत होती है। बाल्य काल से ही अपनी ममतामयी माता के चारों ओर बालकों की एक भीड़ पर मेरी स्नेह दृष्टि सदैव केन्द्रित रही है। बच्चों के प्रति माँ के सहज स्नेह की भावना मैं ही मेरे अव्यक्त मन पर गहरी व अमिट छाप छोड़ दी है। यही कारण है कि मैं स्वयं को बालकों से घिरी पाकर मानसिक परितोष पाती हूँ। इसी मानसिक सन्तुष्टि ने मुझे बाल साहित्य पर शोध कार्य करने के लिए प्रेरित किया। शोध-विषय का चयन करते समय मुझे अष्टछाप कवियों के वात्सल्य-प्रदर्शन-चित्रण ने आकृष्ट किया। शोध-विषय की पुनरावृत्ति से बचने के लिए मैं अष्टछापेतर काव्य में वात्सल्य-भावना की प्रवृत्तिगत विशेषताओं को प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है, जैसा अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता।

कुछ पारिवारिक उलझनों एवं विषम परिस्थितियों के कारण शोध-सामग्री के संग्रह एवं प्रस्तुतीकरण में कुछ बाधाएँ आई हैं। यही कारण है कि शोधपरक अध्ययन उपेक्षानुसार सूक्ष्म एवं विस्तृत रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। फिर भी मैं शोध-प्रबन्ध में मध्यकालीन अष्टछापेतर कवियों के साहित्य का परिमाण की दृष्टि से अधिक मात्रा में वर्णन किया है। फिर भी इस प्रबन्ध में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उनके लिए मुझे खेद है, साथ ही यह संकल्प भी है कि प्रकाशित होने से पूर्व उनका परिहार कर दिया जायेगा।

शोध-प्रबन्ध की हमने वैज्ञानिक बनाने हेतु रीतिकाल की वात्सल्य-भावना से भक्तिकालीन वात्सल्य-भावना का तुलना-त्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मध्यकालीन वृष्टहाफ़ेतर कवियों के वात्सल्य-चित्रों का अवलोकन करने पर मेरा हृदय ब्रजवासीदास की वात्सल्य-भावना एवं रसज्ञान की वात्सल्य-भावना से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है।

मैं शोध-कार्य वादरणीय डा० शिवशंकर शर्मा जी के निर्देशन में सम्पन्न किया है। शोध के निर्देशन में उनके द्वारा प्रदत्त मार्ग दर्शन अवर्णनीय है। गुरुवर शर्मा जी के सहयोग की मैं वाजन्म नहीं भूल सकती।

शोध-सामग्री के चयन के लिए मुझे कलिंगद मुस्लिम विश्व विद्यालय ने वाराणसी जाने के लिए वार्षिक सहायता देकर अगृहीत किया। शोध-प्रक्रिया में मुझे विभागाध्यक्ष परमादरणीय प्री० डा० प्रेमस्वरूप गुप्त जी ने सदैव प्रोत्साहन एवं सक्रिय सहयोग प्रदान किया मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ। शोध से सम्बन्धित पुस्तकों तथा कुछ शोध-प्रबन्धों के अवलोकन में सहायता करने के लिए मैं हिन्दू विश्व विद्यालय की लाइब्रेरी के अध्यक्ष महोदय की कृतज्ञ हूँ। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सभी कार्यकर्त्ताओं से मुझे पूर्ण सहयोग मिला जिसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देती हूँ। इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता के लिए कलिंगद मुस्लिम विश्व विद्यालय



के हिन्दी स्टेज के माहं सैयद राकिम जली को धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है, क्योंकि उनके बार समय न होने पर भी फितावें उपलब्ध कराके इन्होंने मेरी विशेष सहायता की है।

वफ़े हृदय की भावना के अनुरूप विषय मिल जाने के कारण मेरा मन इस शोध-प्रबन्ध में अधिक रमा है।

अन्त में मैं सभी लोगों को हृदय से धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने मुझे परोक्षा वक़्ता वपरोक्षा रूप से शोध-प्रबन्ध पूर्ण करने में मदद की। विशेष रूप से मैं वफ़े पतिदेव श्री सुरेश चन्द्र जी की आभारी हूँ, जिन्होंने उनके सुविधाओं को शोध-प्रबन्ध की पूर्ति में बाधक जानकर तिलांजलि दी तथा कभी व्यस्त कहे और कभी मुक्त रूप से सहयोग दिया।

अनुज राजशेखर का समत्वमरा व्यवहार जो शोध-सामग्री-चयन एवं शोध कार्य पूर्ण करवाने के लिए मिला उसके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं और फिर उनकी ही बातों का वक़्ता वक़्त ही अस्तित्व होता है।

उमा शर्मा

( उमा शर्मा )

## अथर्व व्याय

## विषय प्रवेश

- (क) विषय की सीमा और महत्त्व
- (ख) मध्ययुग का काल निर्देश
- (ग) ऋषिपुत्र कवियों का साहित्यिक योगदान
- (घ) ऋषिपुत्र कवियों के साम्प्रदायिक सिद्धान्त  
श्री सम्प्रदाय, हंस सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदाय  
रुद्र सम्प्रदाय, गौडीय सम्प्रदाय, राधा-  
वल्लभ सम्प्रदाय

## निष्कर्ष

- (ङ०) शोध की योजना
- (च) प्रस्तुत शोध की मौलिकता

## विषय- प्रवेश

### (क) विषय की सीमा और महत्त्व

बाल साहित्य का प्रणयन एक कलात्मक पूजा होती है। इसकी एक निष्ठापूर्ण कार्य के रूप में सरसता के साथ चित्रित करके कवि पाठक का मनोरंजन करने में तभी सफल होता है, जब उसका साहित्य वात्सल्य की भावना को जगाकर पाठक का हृदय आनन्दित कर सकने में सक्षम हो। हमारे अध्यात्म प्रधान देश में भगवान् की विविध उपासना में उनके बालक रूप को विशेष महत्ता दी गई है। मध्यकाल की परिस्थितियों में इससे अनेक लाभ हुए। मनुष्य के हृदय में कौमल भावना उद्भूत हुई, जिसके फलस्वरूप समाज में ममता से युक्त भावनाओं को बढ़ावा मिला। यही नहीं समाज में सहयोग की भावना को महत्त्व प्राप्त हुआ, क्योंकि सहयोगी भावना ममत्व एवं अपनी-पन की भावना पर ही आधारित होती है। वात्सल्य मनुष्य के हृदय की कौमल एवं स्वाभाविक भावना है। मध्यकालीन परिवेश में वात्सल्य भावना से युक्त साहित्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

मध्यकाल के अष्टकाक्षर काव्य के प्रस्तुतीकरण में मेरी कुछ सीमाएँ हैं। अष्टकाक्षर के वात्सल्यपरक साहित्य पर अनेक शोध ग्रन्थों की सर्जना हुई है। मध्ययुग के अष्टकाक्षर काव्य में बाल- भाव सम्बन्धी साहित्य के पक्ष पर अभी तक कोई मौलिक एवं पुरा कार्य दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। हमने पुरावृत्ति से बचने की यथासंभव चेष्टा की है, फिर भी कुछ भाव- तत्त्व तथा विचार तन्तु ऐसे हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी विवेचना के द्वारा

इस प्रबन्ध में समाहित कर लिया गया है। प्रस्तुत शोध प्रक्रिया में कुछ ग्रन्थों का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ है कि यद्यपि कुछ लेखकों एवं लेखिकाओं ने अष्टाक्षर-तर काव्य, निर्गुण काव्य तथा रीतिकाव्य में बाल भाव का वर्णन करना चाहा है, तथापि उन्होंने विस्तृत विवेचन न करके अत्यन्त संक्षेप में वर्णन किया है। इसीलिए इस विषय को चुनकर इसका विस्तृत पदार्थ उद्धृत करके प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का महत्त्व स्थिर किया है।

### (स) मध्ययुग का काल निर्देश

अनेक इतिहासकारों ने विवेचनात्मक अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य को विभिन्न कालों में विभाजित किया है। यद्यपि विभिन्न कालों के बीच निर्णयात्मक सीमा चिह्न अंकित करना कठिन है तथापि जो काल निर्णय विद्वानों ने अब तक की सोच के आधार पर किया है वह प्रायः विश्वसनीय है। प्रस्तुत शोध का विषय मध्यकाल तक ही सीमित है, जिसका सीमा दोष प्रायः निर्विवाद है। मध्यकाल अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस काल के अन्तर्गत न केवल साहित्यिक उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षनीय है, वरन् आध्यात्मिक उन्नति अथवा साधना की सूक्ष्मता की दृष्टि से भी यह काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घोषित किया गया है। काल-निर्णय करने का इस प्रबन्ध में हमारा कोई स्वतन्त्र आधार नहीं है और न हम इसके लिए सचेष्ट हैं। हमने तो इतिहासकारों द्वारा प्रदर्शित एवं प्रशस्त दिशा का वाश्रय लिया है। अतः मध्यकाल की सीमा विक्रम की १४ वीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी तक मानना समीचीन प्रतीत होता है।

इतिहास लेखन की दृष्टि से सर्वप्रथम प्रयास 'गासाँ द ताँसी' नामक एक फ्रेंच विद्वान् ने किया। 'गासाँ द ताँसी' ने मध्य युग का काल निर्देश देते हुए कहा है- " १२ वीं शताब्दी से १८४८ तक के समय को मैं मध्यकाल कहता हूँ।"<sup>१</sup>

सर जार्ज ग्रियर्सन ने मध्यकाल का निर्देश करते समय काल निर्धारण स्पष्ट रूप से नहीं किया है। उनकी पुस्तक का अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि इन्होंने मध्ययुग का समय सँ० १८७५ तक माना है। उनकी विचारधारा के अनुसार " १४०० ई० के आस पास से सँ० १८७५ के पूर्व का समय" मध्ययुग का माना जा सकता है।<sup>२</sup>

फ़िखबन्धु ने मध्ययुग का काल निर्देश करते समय उसे विभिन्न भागों में बाँटा है। इन्होंने १४४५ से १८८६ तक का समय मध्य-काल माना है।<sup>३</sup>

मोतीलाल भारारिया ने मध्यकाल को दो भागों में विभाजित किया है। पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल। उनके विचारानुसार मध्यकाल का समय १४६० से १६०० तक माना गया है।<sup>४</sup>

इन हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के

१- डा० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ११

२- गासाँ द ताँसी - अ० लक्ष्मी सागर वाष्णीय, पृ० ६०

३- सर जार्ज ग्रियर्सन - माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान -

का० स० टिप्पण अनुवाद पृ० ६६

४- फ़िखबन्धु - संक्षिप्त हिन्दी नवतम पृ० १६-२३

५- मोतीलाल भारारिया - राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १३२, १६३



वतिरिक्त आचार्य रामचन्द्र शुक्ल<sup>१</sup>, डा० राम कुमार वर्मा<sup>२</sup> आदि ऐसे प्रबुद्ध इतिहासविद् हैं जिन्होंने मध्यकाल का समय निश्चित रूप से विक्रम की १४ वीं शताब्दी से १६०० शताब्दी तक माना है। इनके वतिरिक्त पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी मध्यकाल का समय १४ वीं से १६ वीं शताब्दी तक ही माना है।

चौदहवीं शताब्दी के अन्त में हिन्दी का बीज अफ़्ग़ानि के परिनिष्ठित रूप में बढ़ रही थी। मध्यकाल मभित साहित्य के आरम्भिक युग में एक ओर जहाँ नाथ पंथ से प्रभावित साधनात्मक साहित्य की रचनाएँ प्राप्त होती हैं, वहीं दूसरी ओर नीति एवं शृंगार की भावना से युक्त साहित्य उपलब्ध होता है। मध्यकाल साहित्य निरूपण की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक निर्गुण साहित्य दूसरा सगुण साहित्य या मभित साहित्य। मभित साहित्य की एक धारा निर्गुण धारा के रूप में प्रतिष्ठापित हुई। निर्गुण काव्य में भी दो प्रकार से ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन हुआ। साहित्य के साधनात्मक एवं नाथ पंथ से प्रभावित साहित्य की उपलब्धियों को ज्ञानाश्रयी शास्त्रा के नाम से अभिहित किया गया। इस साहित्य में ईश्वरवाद की प्रतिष्ठा का प्रतिपादन किया गया। साथ ही समाज की मान्यताओं की विवेचना करते हुए अपने मत को स्थापित करना ही सत काव्य एवं उनके कवियों का अभिष्ट था। निर्गुण काव्य की दूसरी शाखा को सूफी काव्य धारा का नाम प्रदान किया गया। इस काव्य में यद्यपि ज्ञानाश्रयी शास्त्रा की तरह निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करके ईश्वरान्मुख साहित्य की सर्जना की गई, तथापि कवियों ने ~~साहित्य के कवियों ने~~ भावुकता से युक्त काव्य में प्रेम तत्त्व का प्रतिपादन किया। सूफी कवियों ने देश

१- रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ६१, २२३

२- डा० रामकुमार वर्मा- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३२

की विभिन्न लोक कथाओं को अपने साहित्य का आधार बनाकर उसमें ईश्वर की महत्ता प्रतिष्ठापित किया।

निर्गुण काव्यधारा के समानान्तर मध्यकाल में सगुण काव्यधारा भी प्रवाहित हो रही थी। निर्गुण कवि जहाँ ज्ञान और प्रेममयी बातों से देशवासियों के हृदय में तत्कालीन कुंठित वातावरण से दूर रहकर सात्विकजीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दे रहे थे। वहाँ सगुण, भक्त कवि राम एवं कृष्ण के विभिन्न अवतारों, लीलाओं की ओर सकल ध्यान आकर्षित कर रहे थे। सगुण धारा में दो धाराएँ अविरल रूप से बहती हुई हिन्दी साहित्य की समृद्ध बना रही थीं। एक धारा राम के लोकपर्यायित रूप को व्यंजित करके देश में पर्यायित जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्रदान करती थी और दूसरी कृष्ण के बाल रूप को प्रतिष्ठापित करके मनुष्य के हृदय में इस बात को स्पष्ट करने के लिए प्रयासशील थी कि भगवान् हमारे ही जाति में है। हमें उनको खोजने के लिए धर-उधर नहीं भटकना चाहिए।

इस प्रकार मध्यकाल में सत काव्य, सूफी काव्य, राम काव्य एवं कृष्ण काव्य की सहज उपलब्धियाँ हमारे सम्मुख आईं। मध्यकाल में ही मुसलमानों के वर्णन से देश के विभिन्न राजाओं के विलासी वातावरण में एक भिन्न प्रकार के साहित्य की सर्जना हुई। इस साहित्य को शृंगार साहित्य का नाम प्रदान किया गया। राम एवं कृष्ण शृंगार काल के कवियों के अवचेतन में विद्यमान थे, किन्तु तत्कालीन परिवेश में, विलास रंजित वातावरण में राम, कृष्ण का पवित्र रूप अभिव्यंजित करना असंभव था। अतः मध्यकाल के उत्तरकाल में कवियों की उन्नित कृष्ण एवं राधा के वर्णन का बहाना लेकर चित्रित हुई है। इस प्रकार के साहित्य युग को मध्यकाल का रीति युग कहा गया। रीति युग में केवल शृंगार, वर्णन ही नहीं हुआ, बल्कि विभिन्न लक्षणा

एवं लक्ष्य ग्रन्थों की भी सर्जना हुई। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मध्यकाल के भक्ति साहित्य में भावात्मकता एवं बौद्धिकता का जैसा सामंजस्य उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मध्यकालीन साहित्य का निरूपण करते हुए डा० राम कुमार वर्मा ने कहा है-

“ मध्यकाल के साहित्य में सभी प्रकार की रचना शैलियों का प्रयोग किया। इसमें श्रेष्ठ काव्य के साथ साथ दृश्य काव्य भी पाया जाता है और मुक्तक काव्य के साथ साथ प्रबन्ध काव्य भी। ”

इस प्रकार मध्य युग का काव्य सभी गुणों से युक्त है, यद्यपि मध्य युग का ऐतिहासिक इस बात का अभाव है। इस काल के आते आते हिन्दी कविता में तेजस्विता का अभाव हो गया था। काव्य में व्यक्ति का स्थान शृंगार ने ले लिया था। इस विषय में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार उल्लेखनीय हैं -

“ इस काल तक आते आते हिन्दी कविता का वह तेज क्षीण हो गया था जो पन्द्रहवीं शताब्दी के भक्त कवियों में दिखाई पड़ा था। जीवन के सामने कोई भी नया आदर्श नहीं रह गया था। ”

#### (ग) "अष्टकाप" कवियों का साहित्यिक योगदान

कवि का स्थान युग पुरुष से भी अधिक व्याप्त होता है, क्योंकि उसका अभिव्यक्ति अथवा विवेचन देश और काल की सीमाओं

१- डा० रामकुमार वर्मा- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास ,

पचिसा संस्करण पृ० ३३६

२- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य पृ० ३५७

से मुक्त होता है। यही कारण है कि कोई कला कृति कभी भी पुरानी नहीं होती। मध्ययुगीन साहित्य में अष्टछाप कवियों की महत्ता उनका साहित्य स्वभाव ही प्रतिपादित करता है। जिस समय विट्ठलदास जी ने अष्टछाप की स्थापना की थी, उस समय हिन्दी साहित्य का अधिक प्रचार प्रसार नहीं था। अष्टछाप कवियों की प्रतिभा के फलस्वरूप जिस साहित्य की सर्जना हुई, उसका ही फल था कि ब्रज भाषा साहित्य की अत्यधिक उन्नति हुई। अष्टछाप कवि सुर के गीतों में भारत का हृदय स्पन्दित होता है। सुर ने हर बालक में श्रीकृष्ण को एवं हर माता में यशोदा को देखा है। अतः उनके साहित्य में देश का संपूर्ण जनमानस ही सिमिट गया है। अष्टछाप कवियों में सुरदास, नन्ददास, परमानन्द दास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, कुम्भनदास, कृतिस्वामी एवं गोविन्द स्वामी प्रमुख हैं। इन कवियों ने यद्यपि ब्रजभाषा गद्य में रचना नहीं की है तथापि उनके चरित्रों द्वारा कहे गये वार्ता रूप ब्रजभाषा का गद्य साहित्य ही है। "चौरासी वैष्णवन की वार्ता", "अष्टसखान की वार्ता" ग्रन्थ में ब्रज भाषा का गद्य रूप प्राप्त है। इस प्रकार पद्य एवं गद्य दोनों ही क्षेत्र में अष्टछाप कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अष्टछाप के कवि मन्दिर में नित्य भजन करते थे। ये कवि संगीत कला एवं वाद्यों के मर्मज्ञ थे। यही कारण है कि अष्टछाप के कवियों के काव्य में संगीत की कोमलता, विभिन्न रागों का समावेश, हृदयगत तीव्रानुभूति एवं सहज सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। संगीत के लिए यही सौंदर्य आवश्यक एवं अनिवार्य होता है, जैसा कि पं० बीकार नाथ ठाकुर ने कहा है -

“ गीतियों की प्राणधारारें भाव केन्द्रित  
 एवं संगीत ही हैं। भाव घनत्व, अनुभूति तभी होता है जब व्यं- बोध होता है।  
 लेकिन संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव या रस की प्रतीति  
 हो जाती है। यहाँ तक कि शब्द ही या न ही, केवल नाद के बल पर ही संगीत

में रस की निष्पत्ति हो जाती है। गीत के सुहल होने के लिए दो बातों की आवश्यकता है। स्वर चातुरी और शब्द चातुरी।<sup>१</sup>..

संगीत मार्तण्ड पं० बीकार नाथ ठाकुर की उक्ति के अनुसार यदि वष्टकाप कवियों के काव्य का मूल्यांकन करें तो वे संगीत स्वर चातुरी एवं शब्द चातुरी के जादूगर सदृश दृष्टिगत होते हैं। वष्टकाप कवियों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत भी उत्तरेस्तीय है :

“ सूर सागर में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी। इससे वह संगीत प्रेमियों के लिए भी बड़ा भारी सजाना है।<sup>२</sup>..

वष्टकाप कवियों के काव्य में साहित्य की अमूल्य निधि है। इन कवियों ने हिन्दी साहित्य को इस प्रकार समृद्ध बनाया कि उनका युग साहित्य का स्वर्ण युग बन गया। वष्टकाप कवियों के बाठों कवियों की अपनी पृथक् विशेषताएँ हैं, जिनमें कवि सूरदास मणि के समान चमकते हैं। इसका कारण देते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है कि सूर की दृष्टि केवल धर्म प्रचार पर ही नहीं थी अपितु वे साहित्यिक दृष्टिकोण से भी अवर्ण्य थे। सूर के काव्य में रस का उत्कृष्ट रूप द्रष्टव्य है :

“ सूर ने रस- निरूपण के सौन्दर्य को अपने काव्य में यथास्थान सुसज्जित किया है। यदि उनका दृष्टिकोण धार्मिक के साथ साथ साहित्यिक न होता तो वे चित्र काव्य के अन्तर्गत दृष्टिकूट पद ही क्यों लिखते ?<sup>३</sup>..

१- बीकार नाथ ठाकुर - प्रणव भारती सं० प्रथम पृ० १६

२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- सूरदास , तृतीय संस्करण पृ० २००

३- डा० रामकुमार वर्मा- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,

मध्ययुगीन वष्टकाप कवियों की ललित पदा-  
वलियों, सुरम्य कवि भावनावीं एवं उत्कृष्ट ब्रजभाषा का रूप वफे वापें  
एक उदाहरण है। इस युग में वष्टकाप कवियों के उत्कृष्ट काव्य के कारण वह  
गौरव प्राप्त करके ग्रामीण जनपद को हटाकर नगर एवं ग्राम की भाषा को  
जोड़ने में सफल हो गई थी। मध्ययुगीन कवियों ने कृष्ण को बाल रूप में  
प्रतिष्ठापित कर वात्सल्य रस को गौरव प्रदान किया। अतः बाल साहित्य  
की प्रचुर मात्रा वष्टकाप कवियों के साहित्यिक योगदान के कारण ही संभव  
हो पायी है। ब्रजभाषा साहित्य की चित्रात्मकता, बालकात्मकता, भावा-  
त्मकता, सजीविता, प्रतीकात्मकता बिम्बात्मकता इस युग में वफे चरमोत्कर्ष  
रूप में वष्टकाप कवियों के काव्य में प्रयुक्त है। सूर उनके प्रयोग में सर्वोपरि हैं।  
वष्टकाप कवियों में सूरदास के अतिरिक्त नन्ददास एवं परमानन्ददास का नाम  
गण्यमान्य है। काव्य प्रजितता एवं सौष्ठव की दृष्टि से नन्ददास एवं परमानन्द  
दास की प्रतिभा बहुमुखी थी। वफे सुन्दर शब्द चयन के कारण नन्ददास को  
‘जड़िया’ कहा जाता है। वष्टकाप कवियों का साहित्य उस युग की धर्म  
भाषा बन गई थी, जिसे परवर्ती कवियों ने भी वफे काव्य का माध्यम बनाया।

वष्टकाप कवियों ने हृदय की अनुभूतियों को  
हंश्वरीन्मुख करके उनका सामंजस्य भौतिक एवं वाध्यात्मिक जीवन के साथ स्था-  
पित किया है। मानव जीवन के इस कोमल चित्र को हंश्वर के साथ जोड़ने से  
उनके साहित्य में जीवन के उस परम सौन्दर्य का समावेश हो गया है जिसका  
सम्बन्ध मानव-हृदय के भाव चित्रों से होता है। वष्टकाप कवियों में सूक्ष्मदर्शिता  
की दृष्टि बढ़ी गहरी थी। वष्टकाप के कवियों की सूक्ष्मदर्शिता के विषय में  
डा० श्यामसुन्दरदास ने वफा मत इस प्रकार प्रकट किया है :

“ जीवन के अपेक्षाकृत निकटवर्ती चित्र को लेकर उसमें अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने में सूर वद्वितीय है। सूक्ष्मदर्शिता में सूर अपेक्षा जोड़ नहीं रखते । - वष्टहाप में प्रत्येक नेप पूरी दामता से प्रेम और विरह के सुन्दर गेय पद गाये । ”

वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचारानुसार इन कवियों ने मानव जीवन में अनुराग की भावना को जगाया था । वे कहते हैं :

“ मनुष्य के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्य पूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीने के प्रति अनुराग जगाया । ”

डा० दीन दयालु गुप्त के विचारानुसार -

“ वष्टहाप काव्य पर उस भारतीय प्रेम भक्ति परम्परा का प्रभाव मुख्य है जो भारतवर्ष में सूफियों के धर्म प्रचार के पहले से चली आती थी और जिसको वष्टहाप ने अपनी गुरुओं से पाया था । ”

वष्टहाप के कवियों पर शुद्धाद्वैत एवं पुष्टि-मार्गीय विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस विचार धारा के प्रभाव के कारण उपासना से प्रभावित ललित पद हिन्दी साहित्य की धरोहर है। उनके साहित्य में जीवन के उस परम सौन्दर्य का समावेश हो गया है, जिसका सम्बन्ध मानव हृदय के भाव चित्र से होता है। वष्टहाप कवियों की साहित्यिक

१- डा० श्यामसुन्दर दास- हिन्दी भाषा और साहित्य पृ० ३१६, ३२२, ३२६, ३२७

सं० १६६४

२- रामचन्द्र शुक्ल- प्रमरगीत - प्रथम सं० भूमिका पृ० २

३- डा० दीन दयालु गुप्त - वष्टहाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ पृ० १८



उपलब्धियों का बोध हमें उस समय अत्यधिक होता है, जब इतिहास के पृष्ठ फटते हुए यह ज्ञात होता है कि निर्गुणवाद, कर्मकाण्ड, ज्ञान मार्ग की कष्ट प्रद साधना स्वयं शुष्कता का विरोध करके किस प्रकार इन कवियों ने कृष्ण प्रेम की विभिन्न भाविकाओं को अपने साहित्य में वर्णित करके उसे भारत में लोकप्रिय बनाया ।

### वष्टकाप कवियों के साम्प्रदायिक सिद्धान्त

मध्ययुग में वष्टकाप कवि जिस समय साहित्य सृजना में लगे थे उस समय समाज में अनेक सम्प्रदाय प्रतिष्ठापित हो चुके थे । प्रत्येक सम्प्रदाय के अनुयायी अपने दृष्टिकोण से अपने मत का प्रतिपादन कर रहे थे । हिन्दी के वष्टकाप कवियों ने इन सम्प्रदायों के द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक एवं भक्ति सिद्धान्तों से प्रेरणा ग्रहण की । मध्ययुग में निम्नलिखित प्रमुख सम्प्रदाय विद्यमान थे । जिनको माध्यम बनाकर वष्टकाप कवियों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया ।

#### श्री सम्प्रदाय

इस मत के प्रवर्तक वाचार्य रामानुज हैं । इनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को " विशिष्टाद्वैतवाद " के नाम से अभिहित किया जाता है। इनका दार्शनिक मत है कि चित्, अचित् और ईश्वर अथवा ब्रह्म ये तीन तत्त्व होते हैं<sup>१</sup> श्रुति, स्मृति, पुराण आदि शास्त्रों के द्वारा ब्रह्म का अवगम होता है<sup>२</sup> ईश्वर की शक्ति का नाम " माया " अथवा प्रकृति

१- ब्रह्मसूत्र १।१।१ पर श्रीभाष्य

२- रामानुज सिद्धान्तसार पृ० ३०, ३३

है। जीव को समझना चाहिए कि वह ईश्वर का एक केश मात्र है। दार्शनिक दृष्टि से स्वामी रामानन्द का सम्प्रदाय प्रायः श्री सम्प्रदाय की मान्यताओं को मानता है।

### हंस सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय को " निम्बार्क " सम्प्रदाय " का नाम भी दिया गया है, क्योंकि इस सम्प्रदाय के संस्थापक निम्बकाचार्य हुए हैं। इस मत के दार्शनिक मत को द्वैताद्वैत कथवा भेदाभेदवाद कहते हैं। इनके मतानुसार ईश्वर सच्चिदानन्द अनेक कल्याणकारी गुणों से युक्त है। रामानुज की भाँति इन्होंने भी उक्त तीन तत्त्व ही माने हैं। जीव ईश्वर का एक केश है। वह कर्ता स्व भवता मात्र है। माया के कारण ही जीव की ज्ञान क्षमता नष्ट हो जाती है। भगवत्कृपा से ही वह क्षमता पुनर्जीवित हो सकती है। विशेषतः इस मत के अनुयायियों ने युगल उपासना का महत्त्व बताकर माधुर्य भक्ति रूपा राधा की उपासना दी। इस प्रकार इस सम्प्रदाय के अनुयायियों ने अपनी साधना का मुख्य मार्ग प्रेम लक्षणा भक्ति माना।

### ब्रह्म सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के संस्थापक मध्व ने शास्त्रीय आधार पर अपनी दार्शनिक विचारधारा का नाम " द्वैताद्वैत " घोषित किया। इसे " पूर्णप्रज्ञ दर्शन " भी कहते हैं। इनके विचारानुसार उत्पत्ति, स्थिति, नियमन, ज्ञान वावरण, वध और मोक्ष यह सभी कर्तव्य गुणों से परिपूर्ण विष्णु ही करते हैं। माया के वावरण के कारण जीव आदि काल से बन्धन में पड़ा हुआ है, अन्यथा वह भगवान् की भाँति सच्चिदानन्दात्मक है। इस मत के अनुयायियों ने मोक्ष को वास्तविक सुख माना है, जिसकी प्राप्ति भक्ति में

सर्वश्रेष्ठ 'वमला भक्ति' से हो सकती है। इसे 'अनन्याभक्ति' भी कहते हैं।

### रुद्र सम्प्रदाय

संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य रुद्र इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक थे। विष्णु स्वामी इस सम्प्रदाय के प्रधान संस्थापक के रूप में माने जाते हैं। आगे चलकर वल्लभाचार्य ने इस सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार किया। इसीलिए इसे 'विष्णु सम्प्रदाय' या 'वल्लभ सम्प्रदाय' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इसका दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैतवाद' है। अपने सम्प्रदाय के प्रचार में वल्लभाचार्य ने पुष्टि (सगवान् का अनुग्रह) को विशेष महत्त्व दिया। भक्ति का प्रतिपादन करते समय अपने दो प्रकार की भक्ति का मार्ग बताने का निर्देश दिया - पर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति। इनका भक्ति मार्ग पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सम्प्रदाय में भजन, पूजन आदि साधनों की विशेष व्यवस्था है।

### गौड़ीय सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीकृष्ण चैतन्य माने जाते हैं। १५वीं शताब्दी में बलदेव विद्याभूषण ने इस सम्प्रदाय को शास्त्रीय रूप प्रदान किया। उन्होंने 'गोविन्द भाष्य' की सर्जना की। उनका दार्शनिक सिद्धान्त 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी ने इस सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रचार किया। इसके मत के अनुयायियों ने श्रीकृष्ण को परम तत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया है।

### राधावल्लभ सम्प्रदाय

---

हितहरिवंश ने राधावल्लभ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठापित किया। हितहरिवंश ने कृष्ण को अथवा राधाकृष्ण को अपना इष्ट नहीं माना है। उन्होंने नित्यविहारिणी राधा को अपना इष्ट माना है। परवर्ती भक्तों ने उनके द्वारा 'राधा सुधानिधि' में प्रतिपादित राधा के रूप को स्वीकार किया। इस सिद्धान्त का मूलधार प्रेम तत्त्व है। राधावल्लभ सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त दैतवाद अथवा वैदितवाद पर आधारित नहीं।

### निष्कर्ष

---

विभिन्न उक्त सम्प्रदायों के दार्शनिक मतों से प्रभावित होने से अष्टछाप कवियों के साहित्य में भक्ति को ज्ञान का साधन न मानकर ज्ञान की भक्ति प्राप्ति का साधन माना गया है। वल्लभ सम्प्रदाय का अष्टछाप कवियों पर विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। सुरदास ने इन सिद्धान्तों के दार्शनिक पक्ष का भी उद्घाटन उसी प्रकार किया, जिस प्रकार उनके व्यावहारिक पक्ष का। अष्टछाप कवियों में सुरदास ने अपनी भक्ति का आधार पुष्टिमार्ग बनाया, जिसके सहारे मनुष्य को मुक्ति की प्राप्ति होती है। अष्टछाप कवियों ने कृष्ण भक्ति के द्वारा साम्प्रदायिक स्तर पर साहित्य का सर्जन किया है।

पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के पश्चात् सुरदास ने 'सब बिधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावैं' कहकर कृष्ण की लीला का व्यापक चित्रण किया। इस चित्रण से उनके पदों की संरचना ही बदल गई। वल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्यासक्ति को सहज रूप में प्रतिष्ठापित

किया गया है। सुरदास ने इसी आधारणा के अनुसार वात्सल्य के संयोग पदा तथा वियोग पदा की सुन्दर अभिव्यञ्जा की है। वल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति मार्ग एवं दार्शनिक पदा का आधार स्तम्भ गीता , भागवत, नारदीय भक्ति सूत्र शाण्डिल्य भक्ति सूत्र , नारद पंचरात्र वादि प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं। वष्ट-  
 कृष्ण कवियों पर इस सम्प्रदाय की माधुर्य भक्ति की कृष्ण भी दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि शृंगार से युक्त विभिन्न अवस्थाओं एवं रूप से युक्त भाव चित्रों की व्यञ्जा सुरदास के साथ-साथ परमानन्ददास के काव्य में भी दृष्टिगोचर होती है, तथापि बाल- भाव से युक्त चित्र वष्टकृष्ण कवियों के काव्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। श्रीकृष्ण की भक्ति से युक्त चित्रों की सर्जना करते समय वष्टकृष्ण के सभी कवियों ने राधाकृष्ण की संयोग लीला का चित्र अधिक तल्लीनता से प्रस्तुत किया है। काव्यशास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित विरह की दसों दशाओं का चित्रण भी भक्ति के संदर्भ से भरे पदों में अत्यन्त गीतात्मक, आत्म -  
 विषयात्मक रूप में वर्णन करके वष्टकृष्ण कवियों ने परम्परागत काव्यशास्त्रीय मान्यताओं की प्रतिष्ठा प्रदान की है। सुरदास, परमानन्ददास के अतिरिक्त नन्ददास भी साहित्य सर्जना के क्षेत्र में प्रतिष्ठित माने गये हैं। यह काव्यशास्त्र के ज्ञाता थे। इनके काव्य में तत्कालीन भक्ति सम्प्रदाय की दार्शनिक विचार-  
 धारा एवं धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्राप्त होता है। वष्टकृष्ण के कवि कृष्णदास ने वल्लभ सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार बढ़े ही मनोयोग से किया। मध्यकालीन वष्टकृष्ण कवियों ने वल्लभ सम्प्रदाय की विचारधारा के अनुसार लौकिक प्रेम की भक्ति में परिणत करके उसे उदात्त रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाएं उनके पांडित्य , मधुर भावुक चरित्र एवं भाषाधिकार की धौतक हैं। वल्लभ सम्प्रदाय एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में मान्य है, इन सम्प्रदाय के अनुयायी वष्टकृष्ण कवियों ने जिस प्रकार के साहित्य की सर्जना की, उसके लिए हिन्दी साहित्य सदा कर्णी है।

### (घ) शोध की योजना

#### प्रस्तुत शोध का विषय 'अष्टकाफतर

मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में बाल-भाव सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन ' है ।  
विषय- विवेचन की दृष्टि से वात्सल्य वर्णन के दौत्र में अष्टकाप कवियों का मुख्य स्थान है। अष्टकाप कवियों का वर्णन इस शोध की परिधि से बाहर का विषय है, किन्तु अष्टकाफतर काव्य के लिए आधार स्तम्भ के रूप में अष्टकाप का काव्य ही था । परवर्ती कवियों ने अष्टकाप काव्य की भव्य भूमि पर ही अपने काव्य की सर्जना की है।

प्रस्तुत शोध के प्रथम अध्याय में हमने संक्षिप्त विवरण के साथ सर्वप्रथम मध्ययुगीन काव्य का काल निर्देश तथा निरूपण करते हुए अष्टकाप कवियों का साहित्य में क्या योगदान था, इसे प्रतिपादित किया है। साहित्य के दौत्र में वात्सल्य भावना का जन-साधारण में प्रचार एवं प्रसार का श्रेय अष्टकाप कवियों को ही दिया जाता है, अतः उनका सांकेतिक रूप से उल्लेख प्रस्तुतीकरण शोध की पृष्ठभूमि के लिए आवश्यक था ।

द्वितीय अध्याय में वात्सल्य के विषय एवं विवेचन के लिए विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिपादन किया गया है। संस्कृत आचार्यों के मतों की विवेचना करके हमने यह स्पष्ट किया है कि वात्सल्य मानव मन की वह रागात्मक अनुभूति होती है जिसका उद्गार माता-पिता , गुरु- शिष्य के हृदय में होता है। इसका सम्बन्ध रति से नहीं बल्कि स्नेह, ममता आदि भावों से होता है। वात्सल्य की विषय वस्तु एवं मूल तत्त्वों का प्रतिपादन करते हुए इसी अध्याय में हमने यह स्पष्ट किया है कि किस

प्रकार एवं किन परिस्थितियों में वात्सल्य भावों का उद्भूत होता है, जिससे वात्सल्य महत्ता स्वयं प्रतिपादित हो जाती है।

तृतीय अध्याय महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय में मध्ययुगीन भक्ति काव्य एवं मध्ययुगीन रीतिकाव्य के स्वरूप का विस्तृत विवेचन करते हुए उसके भावपक्ष एवं कलापक्ष का सर्गीपंग चित्रण किया गया है। मध्ययुग की तत्कालीन परिस्थितियों ने ही उस युग का साहित्य के क्षेत्र में स्वर्णयुग के रूप में प्रतिष्ठापित किया। उस युग की विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ ही हमने वष्टाफेतर बाल साहित्य के सर्व प्रमुख कवियों के काव्य का सांकेतिक परिचय भी दिया है। उन्हीं प्रबुद्ध कवियों के काव्य से हमने शोध-सामग्री एकत्रित की है। इन कवियों के बाल-साहित्य का सांकेतिक परिचय देना हमें इसलिए भी अभीष्ट था, क्योंकि इनका काव्य-विवेचन ही हमारे शोध-प्रबन्ध का आधार है।

चतुर्थ अध्याय में निर्गुण भक्त संतों के काव्य में प्राप्त बाल भावना की विस्तृत विवेचना की गई है। निर्गुण धारा के ज्ञान-मार्गी कवि निर्गुण ब्रह्म के रूप की उपासना में विश्वास करते थे। निर्गुण काव्य धारा के प्रेममार्गी सूफी कवि भी ईश्वर के निर्गुण रूप का ही प्रतिपादन करते थे। हमने इस बात को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि संत हृदय ही वक्ता सूफी हृदय ही, वह मानव हृदय ही होता है। मानव मन की वात्सल्यजन्य नैसर्गिक भावना किसी न किसी रूप में इनके काव्य में अवतरित हुई है। यद्यपि उसका स्वरूप एवं विस्तार सगुणीपासक कवियों की अपेक्षा भिन्न एवं स्वल्प दिताई पड़ता है।

पंचम अध्याय में रामभक्ति तथा कृष्ण भक्ति काव्य में प्राप्त वात्सल्य भाव से युक्त साहित्य का विस्तृत उल्लेख किया गया है। राम काव्य के वाकाश स्तम्भ तुलसी की हमने अष्टकापेक्षर मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में बाल-भाव सम्बन्धी चित्रण का आधार स्तम्भ माना गया है। तुलसीदास के साहित्य में राम का मर्यादा पुरुषोत्तमत्व प्राप्त होता है। साथ ही बाल वर्णन के दौत्र में उनका साहित्य उच्च कोटि का सर्व नैसर्गिक है। उनके काव्य में किसी न किसी रूप में बाल चित्रण प्राप्त होता है। "रामचरित मानस" में यदि उस वर्णन का रूप मर्यादित सर्व सीमित है, तो "गीतावली" में उसका सुन्दरतम रूप अपनी रागात्मकता के साथ प्रस्फुटित हुआ है।

षष्ठ अध्याय में मध्य युग के निर्गुण सर्व सगुण काव्य के भाव पदा सर्व कलापदा के विस्तृत विवेचन के पश्चात् रीति-कालीन काव्य में प्राप्त बाल-भाव सम्बन्धी साहित्य के भाव पदा सर्व कला पदा का विवेचन किया गया है। इस अध्याय में रीति-सिद्ध, रीतिबद्ध तथा रीति-मुक्त काव्य के बाल-भाव का सांगीतिक चित्रण किया गया है।

सप्तम अध्याय में अष्टकापेक्षर मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में बाल-भाव का वर्णन भक्ति काव्य सर्व रीति काव्य में तुलनात्मक रूप से किस प्रकार प्राप्त होता है, इसकी विवेचना की गई है। इस अध्याय में हमने मुख्य रूप से यह उल्लेख करने का प्रयास किया है कि वात्सल्य ऐसा प्राकृतिक प्रवाह है जिसे तत्कालीन परिस्थितियाँ रोकने में असमर्थ होती हैं। अन्तर इतना ही है कि परिस्थितियाँ में जड़ मानव हृदय कभी अपनी भावनावी की सीधे रूप में अभिव्यक्त करता है और कभी किसी के माध्यम के द्वारा।

उपसंहार में वर्णित विचारधारा का मुख्य प्रतिपाद यह है कि जिस प्रकार अष्टकापेक्षर कवियों की बाल-भाव सम्बन्धी



विचारधारा का प्रभाव अष्टहाफ़्तर काव्य पर पड़ा, उसी प्रकार अष्टहाफ़्तर काव्य की बाल भाव सम्बन्धी विचारधारा का प्रभाव सीतिकाव्य के बाल सम्बन्धी साहित्य पर पड़ा। इस वर्णन के बिना प्रस्तुत शोध में त्रुटि रह जाती।

#### (ड०) प्रस्तुत शोध की मौलिकता

प्रस्तुत शोध का विषय दीर्घ अष्टहाफ़्तर काव्य है, जिसका अभी तक शोधपरक विवेचन नहीं हुआ है। मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में वात्सल्यपरक विवेचन विशेषकर रस के संदर्भ में जो कुछ शोध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। डा० वाशा शिरोमणि तथा डा० अवधेश्वर वरुण, डा० श्रीमती जयशोला पाण्डेय एवं डा० लीला ज्योति का नाम इस प्रकार के योगदान के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डा० शिरोमणि के शोध प्रबन्ध "हिन्दी काव्य में वात्सल्य रस" में अष्टहाफ़्तर कृष्ण मणित काव्य तथा रीतिकाव्य का वात्सल्य रसपरक विवेचन संक्षिप्त रूप में प्राप्त होता है। डा० अवधेश्वर के शोध प्रबन्ध "मणितकालीन हिन्दी कवियों का वात्सल्य चित्रण", डा० जयशोला पाण्डेय के शोध प्रबन्ध "हिन्दी मणित साहित्य में बाल प्रकृति का चित्रण" तथा डा० लीला ज्योति के शोध प्रबन्ध "सूरदास और पीतना के साहित्य में शृंगार वी वात्सल्य" नामक शोध ग्रन्थ में भी वात्सल्यपरक विवेचन प्राप्त होता है। इन सभी शोध प्रबन्धों में सूर के काव्य तथा अन्य अष्टहाफ़्तर कवियों के काव्य का शोध का विषय बनाया गया है। उक्त शोध-प्रबन्धों के अतिरिक्त तुलनात्मक रूप से कृष्ण काव्य का वात्सल्य वर्णन पाया जाता है। "सूरदास एवं पुरन्दर दास का वात्सल्य रस के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन", कुमारी के० वैकट लक्ष्मी का एक अन्य शोध प्रबन्ध है। इसके अति-

रिक्त ' हिन्दी और संस्कृत के कृष्ण वात्सल्य का तुलनात्मक अध्ययन ' , डा० श्रीमती इन्दु जोशी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इन ग्रन्थों में भी वात्सल्य वर्णन का आधार सूर एवं वृष्ट्याप कवि ही माने गये हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रन्थों में वृष्ट्याप कवियों की ही मुख्य विषय बनाया गया है। इस प्रकार हमारे शोध विषय की मौलिकता का प्रतिपादन स्वयमेव हो जाता है। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में मौलिकता के समावेश के लिए हमने विषय विवेचन की दृष्टि से वात्सल्य रस को प्रतिपादित न कहे वात्सल्य भाव या बाल भाव को मुख्यतः अभिव्यजित किया है। वात्सल्य भाव की उद्भावना में हमने वात्सल्य रस का यथार्थमव शास्त्रीय विवेचन भी किया है। वात्सल्यपरक विवेचन करते समय हमने आलोच्य सामग्री के विश्लेषण में मोटे तौर पर मन के विकारों का ही विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर हमने वात्सल्य के परिप्रेक्ष्य में स्थायी एवं संचारी भावों का भी समावेश किया है। हमने वात्सल्य का सुखात्मक एवं दुःखात्मक रूप प्रस्तुत कहे प्रस्तुत शोध के भाव के धरातल पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है। रस की केवलवानन्ददायक अनुभूति ही नहीं वरन् विरहजन्य वेदना से भरे वात्सल्य चित्रण भी प्रस्तुत शोध की परिधि में समाहित है।

...

## द्वितीय अध्याय

### भारतीय काव्यशास्त्र के सम्प्रदाय

- (क) रससम्प्रदाय, जल्लारसम्प्रदाय  
रीति सम्प्रदाय , ध्वनि सम्प्रदाय  
कवीवित्त सम्प्रदाय, औचित्य सम्प्रदाय
- (ख) वात्सल्यपरक शास्त्रीय विवेचन  
वात्सल्य रस की मूल परम्परा
- (ग) वात्सल्य-भाव के मूल तत्त्व

निष्कर्ष

## अध्याय 2

### भारतीय काव्यशास्त्र के सम्प्रदाय

किसी भी शब्द एवं उसके अर्थ को साहित्यिक रूप में तभी ग्रहण किया जाता है, जब वह मनुष्य की मनोभावनाओं को किसी विशेष परिस्थिति में रागरंजित करने की क्षमता रखता हो। वस्तुतः मनुष्य अपनी भावनाओं को दूसरों की भावनाओं पर आरोपित किया करता है। इसके अतिरिक्त वह दूसरों के प्रति सहानुभूति रखकर उन्हें अपनी मन की गहराइयों से जोड़ने की क्षमता भी रखता है। साहित्यकार के मन में इस प्रकार की मनोभावनाओं, अर्थात् दूसरे व्यक्ति की मनोभावनाओं के तादात्म्य की स्थिति के फलस्वरूप बहिर्जगत् उसके अंदर ही अन्तर्भूत में सिमट जाता है। इस प्रकार उसका साहित्य अधिक आकर्षक हो जाता है। डा० रामकुमार वर्मा के विचारानुसार -

“ साहित्य से तात्पर्य जीवन की किसी महत्वपूर्ण स्थिति के ऐसे प्रस्तुतीकरण से है, जिससे उसे एक रागात्मक रूप प्राप्त हो सके। ”

इस प्रकार यह रागात्मक मनोभाव विश्व की सम्पत्ति तथा लोकहित की कामनाओं से युक्त है। स-हित से जुड़ा होने के कारण ही वह साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। साहित्य की सौन्दर्य से युक्त बनाने के लिए साहित्यकार विभिन्न प्रक्रिया से गुजरता हुआ सर्जना करता है। साहित्य का सम्बन्ध मनुष्य की मनोवृत्ति से होता है।

मनोवृत्ति पूर्णरूपेण भावों की सहभागिनी है। साहित्य में सौन्दर्य का समावेश करने के लिए रस की महत्ता प्रायः निर्विवाद है। रस का सम्बन्ध भावों, विभावों, कृतभावों तथा संचारी भावों से होता है। इन भावों की गतिशील बनाने के लिए मनोविज्ञान का सहयोग भी अपेक्षित है। भारतीय साहित्यकार ध्येय सामान्य रूप से व्यक्तिवादों नहीं था, वतः वह स्वयमेव रस के द्वारा कुप्राणित हुआ है। विश्व में रस के माध्यम से कल्याण की भावना से युक्त 'वानन्द' की सृष्टि विशेषतः भारतीय साहित्य में ही पायी जाती है। भारतीय काव्य में रस की कुप्राणितजन्य विशेषता के कारण, वानन्दानुभूति के कारण रस की परिभाषा लोकोत्तर वानन्द की कुप्राणित के रूप में ही ग्रहण की गई है। तैत्तिरीय उपनिषद् में रस को 'रसो वै सः' कह कर वानन्द ब्रह्म माना है। भरतमुनि ने तो यहाँ तक कहा है 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' इस प्रकार जीवन को वानन्दमय बनाने के लिए रस अनिवार्य हो जाता है। भारतीय आचार्यों ने साहित्य एवं काव्य को एक दूसरे का पर्याय माना है, तथा उसमें व्याप्त रसों के आधार पर उसका मूल्यांकन करने की व्यवस्था की है और कतिपय नियमों की विवेचना भी की है। काव्यशास्त्रीय मूल्यों के अन्तर्गत आचार्यों ने रस को विशेष महत्त्व दिया है, जिसके प्रेरक तत्त्व हैं - कुप्राणित जन्य चिन्तन तथा कल्पना। इसी प्रकार काव्य सौन्दर्य का विवेचन करने के लिए भारतीय आचार्यों ने अनेक सम्प्रदायों की सृष्टि की, यथा- रस सम्प्रदाय, कर्तार सम्प्रदाय, रीति-सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय एवं वाचित्य सम्प्रदाय। साहित्य की परस ही इन सम्प्रदायों के उद्भव का कारण थी। भरत आदि आचार्यों ने रस को काव्य की वात्सा मानकर उसका सम्बन्ध मनुष्य की रागात्मक वृत्ति से स्थापित किया। जब किसी वस्तु का सम्बन्ध मन की रागात्मक कुप्राणित से होता है तब उसमें सजीवता संप्राण भावात्मकता का तत्त्व समाहित होता है। यही वह तत्त्व

है जिसे काव्य की आत्मा माना गया है।

काव्य की आत्मा के विषय में बौधायन करते हुए कर्लार शास्त्र के वाचार्यों ने बप्ते बप्तेमर्तों का प्रतिपादन किया । एक सम्प्रदाय ने कर्लार को काव्य का प्राण माना तो दूसरे ने काव्य के गुण को तीसरे ने काव्य की रीति की व्याख्या की और चौथे ने ध्वनि को काव्य का विशेष गुण मानकर उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया । प्राचीन वाचार्यों की सम्प्रदाय विवेचना में उनके मत मतान्तरों में प्रसुता रस की मिली ।

### रस सम्प्रदाय

काव्यशास्त्रीय परम्परा का सूत्रपात रसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में भारत के नाट्यशास्त्र से हुआ । साहित्य विवेचना के क्षेत्र में रस सम्प्रदाय प्रसुत है। भरत मुनि ने सर्वप्रथम रस का महत्त्व प्रतिपादित किया और उनके अनुयायियों ने रस को काव्य की आत्मा माना । भरत मुनि के विचारानुसार रस से विरहित काव्य अस्तित्वहीन होता है । उन्होंने कहा कि रस के अभाव में किसी भी प्रतीति का होना संभव नहीं, क्योंकि अर्थ का उद्बोधन ही रसमय होता है :

‘ नहि रसावृतेः कश्चिदर्थः प्रवर्तते ।’<sup>१</sup>

रस को पूर्ण रूप में साहित्य के क्षेत्र में

---

१- अग्नि पुराण ३२७, ३३३

प्रतिष्ठापित करने का श्रेय वाचार्य विश्वनाथ को है। मम्मट स्व जगन्नाथ ने भी काव्य में रस के जीवन को स्वीकार किया है। भरत का प्रसिद्ध रस-सूत्र इस प्रकार है :

“ विभावानुभावव्यभिचारिणीगान्धर्वरसनिष्पत्तिः । ”

### कर्त्तार सम्प्रदाय

कर्त्तार सम्प्रदाय के प्रमुख वाचार्य बामह और उसके हीमाकार हर्दट हैं। दण्डी ने भी कुछ रूपों में कर्त्तार सम्प्रदाय का समर्थन किया है। कर्त्तारवादियों का वह स्वर्ण युग था जब वाचार्यों ने कर्त्तार पर आवश्यकता से अधिक बल दिया था। उस युग के वाचार्यों का विचार था कि कामियों के शरीर पर जो स्थान वाभूषणों का होता है वही स्थान काव्य में कर्त्तार का होता है। वाचार्य बामने “ सौंदर्यकर्त्तार ” कह कर अपना मत प्रकट किया है। कर्त्तारवादियों ने कर्त्तार का महत्त्व देते हुए भी रस की महत्ता को स्वीकार किया है। इसीलिए वे विभिन्न स्थलों पर रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वी और समाहित नामक कर्त्तारों को बांध कर रस को साहित्य के पक्ष में उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है।

### रीति-सम्प्रदाय

रीति-सम्प्रदाय के प्रमुख वाचार्य दण्डी स्व बामन हैं। इस सम्प्रदाय को गुण सम्प्रदाय के नाम से भी अभिहित किया

जाता है। एक विशेष रीति पर काव्य में वफे कौशल को दिखाकर वफे मत का प्रचार करना ही इस मत के कृत्यायियों का कमीष्ट था। वाचार्थ वामन इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इन्होंने रीति को काव्य की वात्मा माना है। काव्य की वात्मा विवेचना करते हुए वाचार्थ भामह ने उसे कान्ति गुण से समेटते हुए काव्य में रस की महत्ता को स्वीकार किया है। रति स्व रीति के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए यद्यपि कहीं भी कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं मिलती, तथापि वाचार्थ दण्डी ने यह रेखा खींच दी थी। उन्होंने राग को प्रीति स्व रति दो भागों में विभाजित कर दिया था, तथा रति को मैथुन भाव से युक्त बतलाया है। -

‘मनो नुक्कुलैष्वर्थेषु सुखसवेदनं रतिः ।  
 कसंप्रयोगविषयासेव प्रीतिनिगमतेऽति  
 प्रीतिलक्षणम् ।’

दण्डी ने स्पष्ट किया कि प्रीति में वात्मीयता का भाव किसी के लिए भी हो सकता है जबकि पति में वात्मीयता का भाव किसी के लिए भी हो सकता है जबकि पति में वात्मीयता वफे पत्नी के लिए ही होती है। इन्होंने प्रेयस का स्थायी भाव प्रीति माना और शृंगार का स्थायी भाव रति मानकर दोनों की पृथक्ता सिद्ध की।

‘प्राक् प्रीति दर्शितास्य रति शृंगारता गता,  
 रूपं बाहुल्य योगेन तदिदं रस दृग्वच ।।’ २

१- दण्डी : काव्यादर्श - द्वितीय परिच्छेद श्लोक सू१ पृ० १५६

२- .. .. सू१ पृ० १५८



यहाँ यह स्मृत करना आवश्यक है कि भारतीय काव्यशास्त्र में वात्सल्य भाव की रति में समाहित करके देखा गया है। वास्वाद की दृष्टि से संस्कृत के वाचार्यों ने वात्सल्य को एक भाव माना है। वाचार्य सोमेश्वर ने रति के अन्तर्गत स्नेह, भवित स्वं वात्सल्य की विवेचन किया है। यथा-

‘स्नेहो भवित्वात्सल्यमिति हि रतिरेव विशेषः’।<sup>१</sup>

सोमेश्वर ने स्नेह स्वं भवित का अन्तर स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं। उनकी वात्सल्यानुभूति में भी वही तन्मयता व वात्म त्याग होता है, जो रति में होता है।

वामिनवगुप्त ने अपनी बहुचर्चित ग्रंथ ‘वामिनव भारती’ में वात्सल्य की कला से महत्ता को अस्वीकार किया है। उनका कहना है कि स्नेह कोई रस नहीं होता। इसका सम्बन्ध तो सम्पर्क - जैसी वस्तु से है, जो भय, रति, उत्साह में समाविष्ट होता है। इसी प्रकार उन्होंने कहा कि बालक के माता-पिता के प्रति स्नेह की विश्रान्ति ‘भय’ में तथा समान आयु वाले मित्रों के स्नेह की विश्रान्ति रति में होती है। लक्ष्मण वादि का भाई के प्रति प्रेम कर्तव्य उत्साह, व्यक्त करता है। इसी प्रकार बहों का छोटी के प्रति स्नेह भी सम्पर्कना चाहिए :

‘वार्द्रतास्यायिः स्नेहो रसवित्त्वसत् ।’

स्नेहो द्रुयाभिर्जागः । स च सर्वारत्युत्साहादावेव

पर्य वस्यति । तथा हि- बालस्य माता पित्रादी

स्नेहो भये विश्रान्तः । युतोर्मित्रजे रति । लक्ष्मणादि

१- वाचार्य सोमेश्वरः साहित्य कल्पद्रुम (राजकीय पुस्तकालय मद्रास का हस्तलिखित ग्रन्थ) भाग १ खण्ड १ (ब) पृ० २६५  
ग्रन्थिक २१२६

भ्रातरि सैहो धर्मयुः स्व । स्व वृद्धस्य पुत्रा  
दाविति द्रष्टव्यम् ।<sup>१</sup>

वाचार्यं वभिनवगुप्त की मान्यता परवर्ती  
वाचार्य की मान्य नहीं हुई। रुद्रट के 'प्रेयान्' शब्द का रस की परंपरा के रूप में विकास हुआ। इसे वाचार्य विश्वनाथ ने 'वत्सल रस' कहा है।

इसी प्रकार भरत ने काव्य के गुण की भाव के रूप में विवेचना की और इन गुणों की संख्या दस मानी।

“ श्लेषः प्रसादः समता समाधिः  
माधुर्यं भोजः फल सौ कुमार्यम्  
वर्णस्य च व्यपित रुदारता च  
कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते ॥ ”<sup>२</sup>

वाचार्य दण्डी ने भरत के मत का अनुमोदन किया। वाचन के विचारानुसार काव्य की वात्सा रीति होती है जिससे काव्य की शोभा द्विगुणित हो जाती है। वानन्दवर्धन, वभिनवगुप्त, मम्मट आदि वाचार्य के विचारानुसार रीति, गुण रस के धर्म हैं और रस स्वयं वर्गी है।

### ध्वनि सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के विद्वानों ने ध्वनि सम्प्रदाय की

१- वभिनवगुप्त : वभिनवभारती, नाट्यशास्त्र, अष्ट अध्याय, श्लोक ८३ पर टीका, पृ. ३४

२- भरतः : नाट्यशास्त्र, भाग १, अध्याय १, श्लोक १०

विचारों को भी महत्त्व दिया है। अलंकारशास्त्र में ध्वनि सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भी अपने मत का प्रतिपादन किया है। काव्य का वात्मा की विवेचना, अनुसंधान करना ध्वनि सिद्धान्तवादियों का अभीष्ट है। ध्वनि सम्प्रदाय को रस सम्प्रदाय का ही एक विकसित रूप कहा गया है। रस, रीति, गुण, दोष आदि काव्यांगों की विवेचना ध्वनि सम्प्रदाय के वाचार्यों ने अपने दृष्टिकोण से अत्यन्त सुन्दर रूप में किया है। इस परम्परा में व्यंग्य व्यर्थ की प्रधानता दे कर काव्य की श्रेष्ठता अथवा कीष्टता का विवेचन किया है। ध्वनि काव्य विशेष प्रकार का काव्य है, जो अपने अन्तर्गत शब्द और व्यर्थ के मुख्य स्वरूप को छिपाकर उस व्यर्थ को प्रकट करने में सक्षम होता है जो काव्य का परम रहस्य होता है। ध्वनि सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त हैं। आनन्दवर्धन के पश्चात् इस परम्परा को मम्मट ने आगे बढ़ाया, किन्तु इस सम्प्रदाय की परम्परा भी मम्मट से पश्चात् लुप्त हो गई।

### वक्रोचित सम्प्रदाय

प्रसिद्ध काव्य परमेश कुन्तक ने वक्रोचित को काव्य के जीवनकै रूप में स्वीकार किया है एवं उसका विश्लेषण 'वैदग्ध्य-भंगीमणिति' किया है। कुन्तक ने 'वैचित्र्य' एवं वक्रत्व को समानाभाव के रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार महम्मट के मतानुसार जहाँ चमत्कार सिद्धि के लिए प्रसिद्ध मार्ग को छोड़कर व्यर्थ को अन्याया कहा जाय, वह वक्रोचित है।

### वाचार्य कुन्तक की विचारधारा की कुछ

१- पारिभाषिक शब्द कोष - राजेन्द्र सिंह द्विवेदी पृ० १६८

परिवर्तित रूप में भामह, दण्डी, ने क्रमशः वृत्तियों के रूप, श्लेष युक्त सौन्दर्य के रूप में वर्णित किया । कुन्तक के पश्चात् यह सम्प्रदाय विकसित नहीं हुआ ।

### वैचित्त्य सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं वाचार्य दीपन्द्र । वाच्य वैचित्त्य सम्प्रदाय की विवेचना करते हुए बताया कि समाज में वैचित्त्य वैचित्त्य की महत्ता की ही तरह काव्य में भी वैचित्त्य के बिना निष्क्रिय है। सही स्थान पर सही वर्णन का प्रयोग ही वर्णन का महत्त्व प्रतिपादित करता है। दीपन्द्र का विचार है कि उचित स्थान पर रस जाने पर ही वर्णन वर्णन कहे जाते हैं और गुण गुण कहे जाते हैं। वाचार्य दीपन्द्र के मतानुसार ध्वनि, रस वादि वैचित्त्य के अनुगामी हैं। भरत, वानन्दधन, दण्डी के वैचित्त्य की विभिन्न रूपों में विवेचना के पश्चात् दीपन्द्र ने वैचित्त्य का वैज्ञानिक विवेचन किया । फलस्वरूप वैचित्त्य को काव्य तथा वर्णनशास्त्र का आवश्यक अंग माना गया ।<sup>१</sup>

### निष्कर्ष

इस प्रकार प्राचीन वाचार्यों में भरत के नाट्य-शास्त्र से रस की भाव की कोटि में रस की एक परम्परा कायम हुई, दण्डी एवं उद्भट तक इसी मान्यता को सभी वाचार्यों ने प्रतिपादित किया । सर्वप्रथम

१- वैचित्त्य विचार चर्चा - श्लोक ६

उद्भट ने 'प्रयान्' शब्द को इस से सम्बन्धित करके उसका सम्बन्ध वात्सल्य से भी प्रतिपादित किया। इस को सर्वप्रथम प्रमुखता के रूप में साहित्य जगत में प्रतिष्ठापित करने का श्रेय वाचार्य विश्वनाथ को मिला। वाफे वफे 'साहित्यदर्पण' में वफे विचारों को विभिन्न रूपों में लेखीबद्ध किया तथा उसके शास्त्रीय आधार को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया। इस प्रकार 'साहित्यदर्पण' के द्वारा वात्सल्य को उसके मूल रूप में ग्रहण करके इस की गरिमा मिली।

भारत के पार्वती वाचार्यों ने 'देवपुत्रादि विषया रतिः' कह कर उसे भाव के स्तर पर रखकर उसे मिथुन भाव, काम-वासना से अलग रखकर मानव मन के सम्बन्धों की विवेचना की। यद्यपि प्रत्येक वाचार्य ने वफे मत मतान्तरों को स्पष्ट किया किन्तु इस को प्रायः सभी वाचार्यों ने वफे शास्त्र में प्रमुख स्थान दिया है। इस की महत्ता स्वीकार करते हुए डा० नगेन्द्र ने कहा है :

“ इस का साहित्य से एक संगठित बंधन वायी जित प्रयत्न नहीं है, वह व्यक्तित्व का वात्स साक्षात्कार है, वात्सा-मिर्व्यजन है। ”

प्राचीन वाचार्यों में एक विशेष वर्ग ने वात्सल्य के स्थायी भाव की प्रीति से न जोड़कर उसका सम्बन्ध शृंगार से बताया क्योंकि उन्होंने वात्सल्य की परिणति शृंगार के अन्तर्गत माना जिनमें मम्मट का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

डा० अवधेश्वर वरुण का कथन है कि :

“ वाचार्य भोज ने वात्सल्य को स्वतन्त्र रूप मानने वाले वाचार्यों की वंशावली परम्परा की सूचना पहली बार दी। ”

उन्होंने अपने शोध ग्रन्थ में वात्सल्य की रसात्मकता का सर्वप्रथम परिचय देने वाले वाचार्यों में हरियाल देव का नाम बताया है, किन्तु बादमें उन्होंने अन्य विद्वानों की विचारधारा का अनुगमन करते हुए स्वीकार किया है कि वाचार्य विश्वनाथ वात्सल्य की उसका अस्तित्व दिला सके। वाचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य के विभिन्न पक्षों की विस्तृत विवेचना की। उन्होंने “ अथ मुनीन्द्र सम्पत्ति वत्सल्यः ” कहकर अपनी गम्भीरता एवं गौजस्विता का परिचय दिया है। आधुनिक विद्वानों ने वात्सल्य रूप की महत्ता को समस्त रूप में स्वीकार किया है। अतः माता पिता और घर के बड़े बूढ़ों की अपने बच्चों के प्रति गुरु की अपने शिष्य के प्रति जो एक विशेष आसक्ति एवं स्नेह होता है उसे वात्सल्य कहते हैं। वात्सल्य की भावना माता-पिता ही बालक के प्रति दिसाते हैं ऐसा नहीं, बालक के प्रति दिसाते हैं ऐसा नहीं, बालक भी अपनी वत्सल भावना का परिचय अपने माई, बहनों, अपने पालतू पशु के माध्यम से देते हैं। इसका कारण यही है कि जिस प्रकार माता-पिता का मानसिक तादात्म्य बालक से होता है, उसी प्रकार बालक का अपनी सहयोगी से होता है।

---

१- डा० अवधेश्वर वरुण : भक्तिकालीन हिन्दी कवियों का वात्सल्य

चित्रण पृ० ५८

### (स) वात्सल्यपरक शास्त्रीय विवेचन

#### वात्सल्य-रस विवेचन की मूल परम्परा

संस्कृत के वाचार्यों ने यद्यपि वात्सल्य की विशेष चर्चा नहीं की है तथापि उनकी दृष्टि से वात्सल्य रस की रसात्मकता की वानन्ददायक अनुभूति का पता बौध्दल नहीं रहा है। प्राचीन वाचार्यों ने वात्सल्य रस की रसात्मकता को अपने ढंग से स्वीकार किया है, किन्तु पर्याप्त एवं प्रचुर साहित्य के अभाव में या तो वे वात्सल्य की गम्भीर विवेचना करने में असमर्थ रहे अथवा इसे रस के स्तर तक लाने में उन्हें कुछ संकोच हुआ ।

वाचार्य मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' में वात्सल्य रस का निर्देश सम्भवतः इसलिये नहीं किया कि उनके विचारानुसार पुत्रादि विषयक रति भाव रस ध्वनि के अन्तर्गत नहीं आते, बल्कि इनका सम्बन्ध भाव ध्वनि से होता है।

वाचार्य दण्डी कलंकखवादी थे, अतः उन्होंने रस का विवेचन रसवत् कलंकार का उल्लेख करते समय किया । वाचार्य उद्भट ने रसों का उल्लेख करते समय रस की संख्या आठ से बढ़ाकर नौ कर दिया, लेकिन उन्होंने नवाँ रस वात्सल्य को न मानकर शान्त को माना । बाद में

१- रतिर्देवादि विषया व्यभिचारी तथाऽज्जितः । भावः प्रोक्तः

वादि शब्दाद्भुनि गुरु नृप पुत्रादि विषया, कान्ता विषयात्

व्यसता शृंगारः । - चतुर्थ उल्लास, श्लोक 35

वामन<sup>१</sup>, वानन्दवर्धन<sup>२</sup>, भानुदत्त<sup>३</sup>, जगन्नाथ<sup>४</sup> ने भी वाचार्य उद्भट की विचार धारा का समर्थन करते हुए रसों की संस्था नही मानी।

वाचार्य मम्मट रस जगन्नाथ ने वात्सल्य की भाव के रूप में माना है। सम्भवतः इस विचारधारा में भरत के प्रति श्रद्धा की भावना रस परम्परा के प्रति मोह की भावना है। कवि कर्णभूर ने वात्सल्य रस की स्थापना करने वाले उपकरणों की विवेचना न करने पर भी जिस तरह उदाहरण देकर उसमें समाविष्ट भावों की विवेचना की है उसमें वात्सल्य की स्पष्ट रूप में स्वतन्त्र रस माना है। कवि कर्णभूर के विचारानुसार वात्सल्य रस प्रीति की अभिव्यक्ति का वह माध्यम है, जो मथुन भाव से रहित होता है, उन्होंने कहा कि वात्सल्य रस परिणति के योग्य है, और ममता वात्सल्य का स्थायी भाव होता है। यह ममता ही स्नेह का पर्याय है।

श्रीकृष्ण कवि ने "मन्दारमरन्दचम्पू"

१- काव्यालंकार सूत्र पृ० ६६- ६७

२- ध्वन्यालंकार, तृतीय उपाध पृ० ३१५

३- शृंगारः करुणः शान्ति रौद्रीवीरोद्भुत स्तथा ।

हास्यो भयानवश्चैव वीमत्सवेति ते नवः ।

रस मंजरी, भानुदत्त पृ० ४

४- शृंगारः करुणः शान्ति रौद्री वीरोद्भुतस्था ।

हास्यो भयानवश्चैव वीमत्सवेतिते नवः ॥

रसगीताधार - पृ० जगन्नाथ पृ० २६

५- असम्प्रयोगविषयासैव प्रीतिर्निगम्यते ॥

- कवि कर्णभूर, अलंकार कौस्तुभ प्रथम किरण श्लोक ६५



में "करुण" की स्थायी भाव बताते हुए, शिशु की निरीहता का वर्णन करते हुए माता पिता की करुण भावना का चित्रण किया है। किन्तु यह विचार मान्य नहीं हुआ, क्योंकि शिशु की निरीहता करुणा की जन्म नहीं देती, वह तो मन में ममता का संचार करती है, वात्सल्य का उद्गार करती है।

वाचार्य भोजदेव ने वात्सल्य को अमृत रस मानकर उसकी विस्तार से विवेचना की है। उनके अनुसार वात्सल्य को रसवत्ता में संदेह नहीं होना चाहिए क्योंकि इसका माधुर्य भाव वाग्म से भी अधिक होता है। भोज देव के मतानुसार रति एवं वात्सल्य एक दूसरे पर वाग्मि हैं। वाग्मी वात्सल्य को रस परिणति योग्य मानकर उसे रति पर वाग्मि कर दिया है, क्योंकि रति के विकास में ही वात्सल्य का विकास है।

रस का सम्बन्ध चार व्यक्तियों से होता है।

१- बालम्बन २- आश्रय ३- अनुकर्ता ४- नाटक का अभिनेता ) ४- सामाजिक ( दर्शक या पाठक )। प्रायः सभी वाचार्यों ने रस की विवेचना इन्हीं ही आधार रूप में मानकर किया है।

वाचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचारानुसार भारत मुनि ने रस एवं भाव की अत्यन्त व्यापक रूप से विवेचना की है। यद्यपि

१- अन्त्येष्टकरुणास्थायी वात्सल्यं दशमीडेपि,

- श्रीकृष्ण कवि, मन्दारमन्दचम्पू, रम्यबिन्दु पृ० १००

२- रस वदमूर्तं कः सदैहो मधून्या पि नान्यथा ।

मधुरमधिकं चूतस्यापि प्रसन्नरसं फलम् ॥

- भोजदेव, सरस्वती कंठाभरण, पहला परिच्छेद,

श्लोक ११०

काव्य मीमांसाकार ने ब्रह्मा के उपदेश से 'नन्दिकेश्वर' के द्वारा सर्वप्रथम रस निरूपण का औचित्य स्वीकार किया है, किन्तु इसका प्रमाण उपलब्ध नहीं है।<sup>१</sup>

भरतमुनि के रस सम्प्रदाय का मूल सूत्र है :

‘विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।’<sup>२</sup>

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरत मुनि के मूल सूत्र को आधार मानकर पार्वती टीकाकारों ने अपने मत मतान्तरों का प्रचार किया है। भरत के विचारानुसार चार प्रधान रस (शृंगार, वीर, रौद्र और भयानक) एवं चार उपप्रधान रस (हास्य, क्लृप्त, करुण, और भयानक) थे।

भट्ट लोल्लट ने उत्पत्तिवाद में रस की विभावादि का कार्य मानकर इसे विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव से स्वीकृत माना है।

शंकर के अनुमितिवाद में रस का विभावादिकों का सम्बन्ध अनुमाप्ता अनुमाप्य का बताते हुए उससे ही रस की अनुमिति माना है।

भट्टनायक ने सुषितवाद में रस से विभावादिकों का सम्बन्ध भोजक-भोज्य का माना है।

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- रस का व्यावहारिक अर्थ- हिन्दी निबन्धा-

वली पृ० ३३

२- भरतमुनि- नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, आरिका ३१

वामिनवगुप्त ने अभिव्यक्तिवाद में सुशुद्ध स्थायी भाव का विभावादिकों द्वारा अभिव्यक्त होकर आनन्द प्राप्त करते हुए उस प्राप्ति की विवेचना की है। मनोवैज्ञानिक विचारधारा के कारण अलंकारवादियों की यह विवेचना मान्य हुई।

भरत मुनि ने उस के बिना किसी भी अर्थ को प्रतीति की सार्थकता को अस्वीकृत कर दिया है<sup>१</sup> क्योंकि उस विहीन काव्य निष्प्राण होता है तथा उस साहित्य का अस्तित्व ही नहीं होता।

पंडितराज जगन्नाथ ने भी उस को काव्य की आत्मा माना है। वाचायं विश्वनाथ का विचार है :

‘विभावैनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।

रसतामेति रत्यादिः स्या यिभावः सचेत साम्’॥<sup>२</sup>

वात्सल्य उस को मुख्य रस के रूप में प्रतिष्ठापित करने का श्रेय वाचायं विश्वनाथ को ही है, यद्यपि भामह ने वात्सल्य को उसके मूल अर्थ में ग्रहण करके इस रस को ‘प्रेमस’ नाम से अभिव्यक्त किया था लेकिन भाव की अस्पष्टता के कारण वाचार्यों ने उसे अलंकार ही माना। रुद्रट ने रति और प्रीति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए वात्सल्य को प्रेयान् नाम से सम्बोधित करके उन सभी सम्बन्धों को वात्सल्य के अन्तर्गत समाहित किया जिनमें एक दूसरे के प्रति स्नेह से युक्त सहृदय भाव हो। इसका कारण<sup>३</sup> यह है कि रुद्रट के विचारानुसार वात्सल्य की मनोवृत्ति निर्व्याज होती है।

१- नहिरसाहते कोश्वदशः प्रवर्तते ॥ अग्निपुराण ३२७। २२

२- विद्वत्सूत्रः साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद पृ ४६ श्लोक ॥१॥

३- निर्व्याजमनोवृत्तिः ॥ रुद्रट, काव्यालंकार १५। १५

वाचार्य मुनीन्द्र ने वात्सल्य को एक कला रस माना, जो वाचार्य विश्वनाथ का सहयोग पाकर सभी को मान्य हुआ। वाचार्य विश्वनाथ की विचारधारा थी कि वात्सल्य को एक कला रस के रूप में स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि इसके अन्तर्गत रस का चमत्कार तथा अन्य रसों की भाँति ही आनन्द प्रदान करने की क्षमता है।

वाचार्य विश्वनाथ ने अपनी मृत की पुष्ट करने के लिए स्वयं उसकी रसात्मकता को स्थापित करने के लिए रघु के वचन की विवेचना करते हुए रघु के प्रति दिलीप के वात्सल्य भाव का चित्रण किया है। शिशु राजकुमार ने पिता दिलीप का हृदय प्रसन्नता से भर दिया है। धाँ के द्वारा सिसाये गये माँ शब्द का उच्चारण, उनका तुलना, धाँ की उँगली फँस कर चलना- फिरना तथा धाँ के सिसाने पर बड़े बूढ़ों की प्रणाम करना सभी कुछ दिलीप के हृदय को प्रसन्नता से भर देता है। किन्तु उन्होंने वय मुनीन्द्र सम्प्रतीवत्सलः वीर विदुः कह परम्परा के प्रति मोह स्वयं अपनी शालीनता का परिचय दिया ।

वाचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य रस को प्रति-ष्ठापित किया । भीम ने सर्वप्रथम वात्सल्य को स्वतन्त्र रस मानने वाले वंशज वाचार्यों की ध्वजा देकर पार्वती टोकाकारों का मार्ग प्रशस्त किया । यद्यपि वे स्वयं शृंगार रस के प्रबल समर्थक थे । इसी प्रकार वात्सल्य की रसात्मक अनुभूति, वैयक्तिक मान्यता को आधार मिला । वाचार्य हरिपाल देव की

१- उवाचधात्रया प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयाम वलम्ब्यवागुलिम् ।

अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिवायापितुमुदं तेन ततान सौ भूकः ।।

- का लिदास- रघुवंशम् , तृतीय सर्ग , श्लोक २५

विचारधारा से, जिन्होंने संगीत सुधाकर में स्पष्ट रूप में तरह-तरह रस गिनाया जिसमें वात्सल्य भी है।<sup>१</sup>

वात्सल्य को स्वतन्त्र रस मानने वाले वाचार्यों में चैतन्य के शिष्य वाचार्य रूप गोस्वामी, कवि कर्णभूर गोस्वामी प्रमुख हैं। हिन्दी के वाचार्यों ने भी संस्कृत के वाचार्यों की तरह पदा व्यक्ता विपदा का अनुमीदन किया है। फिर भी हमें कुमार मणि भट्ट के 'रसिक रसात' प्रताप साहि के 'काव्य विलास' शम्भुनाथ मिश्र की 'रस तरंगिणी' वादि रचनाओं में वात्सल्य को दसवाँ रस माना है।

हरिऔध<sup>२</sup> ने चौदह रसों की स्वीकृति देकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

वात्सल्य की चर्चा हरिऔध ने व्यापक रूप से की है। वाचार्य विश्वनाथ के पश्चात् हरिऔध ने ही वात्सल्य पदा पर गम्भीरता से विचार किया है तथा मानवैतर प्राणियों में भी इसकी सत्ता को स्वीकार करते हुए इसी व्यापकता एवं आनन्ददायक अनुभूति की विवेचना की है।

१- शृंगारोहास्यमामा च वीभत्सकरुणस्तथ

वीरो भयानकाह्वनो रौद्राख्योद्भुत संक्रुः

शान्तो ब्राह्म्यनिधः पश्चात् वात्सल्याख्यमतः परम्

संयोगो विप्रलम्भास्यादरसोऽस्वैत त्रयोदशः ॥

- हरिपालदेव- संगीत सुधाकर पृ० १६

२- हरिऔध- रसकलश पृ० ३६६

२- .. पृ० २१५

वाचार्य गुलाबराय ने वात्सल्य रस की रति से पृथक् मानकर चर्चा की है, तथा वात्सल्य की रसात्मकता की स्वाभाविक माना है।<sup>१</sup>

काव्य दर्पणकार पं० रामदहिन मिश्र ने ग्याह रसों की मान्यता प्रदान की है। वात्सल्य रस को वाफो दसवें रस के रूपमें माना है। मिश्र जी की मान्यता के अनुसार देवादि विषयक रति में अन्य रसों की तरह वात्सल्य नहीं होता। मिश्र ने वात्सल्य की भावना का समावेश माता-पिता में समान रूप से माना है। यद्यपि माता में वात्सल्य की भावना की अधिकता होती है।<sup>२</sup>

पं० हरिश्चंद्र शर्मा ने अपने ग्रन्थ 'रस-रत्नाकर' में वात्सल्य रस की रसवत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने वात्सल्य की रति से पृथक् माना है। उन्होंने वात्सल्य के निष्पादक तत्त्वों की चर्चा करते समय रस निष्पत्ति के सन्दर्भ में वात्सल्य के वात्रय एवं वात्सल्य के प्रकार को तीन-तीन भागों में विभाजित कर दिया है। उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि वात्सल्य माता-पिता अपनी संतान के साथ-साथ दूसरों की संतान के प्रति भी वत्सल की भावना रखते हैं। कुछ अपनी ही संतान से प्रेम करने वाले होते हैं, तो कुछ किसी के बच्चे को कम अथवा अधिक प्रेम नहीं करने वाले होते हैं।<sup>३</sup> अन्य कवियों की विचारधारा का प्रतीपादन करते हुए शर्मा जी ने वर्गीकरण करके वात्सल्य के विवेचन का ढाँचा थोड़ा विस्तृत कर दिया है।

१- गुलाबराय - नवरस पृ० ५४४

२- रामदहिन मिश्र- काव्यदर्पण पृ० २२३

३- हरिश्चंद्र शर्मा : रस रत्नाकर पृ० ६१०-६११

डा० भगीरथ मिश्र की विचारधारा के अनुसार  
वात्सल्य चमत्कारिक इस के समझा होता है।

“ इस प्रकार स्पष्ट चमत्कार के कारण  
वात्सल्य इस की इस रूप में प्रतिष्ठा होनी चाहिए। ”

डा० नगेन्द्र ने वात्सल्य रस की मनोवैज्ञानिक महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे रस माना है। उन्होंने वात्सल्य के विस्तृत दायरे की भी विवेचना की है। अपनी विचारों का प्रतिपादन करके वात्सल्य को रस मानते हुए उन्होंने कहा है :

“ वात्सल्य मानव जीवन की बहुत बड़ी भूख है जो तीव्रता और प्रभाव की दृष्टि से केवल काम से ही न्यून कही जा सकती है। इतना ही नहीं डा० नगेन्द्र ने पुत्रेष्णा को जीवन की सबसे बड़ी एषणा मानते हुए कहा है, “ पुत्रेष्णा जीवन की सबसे बड़ी एषणा है जिसका जीवन के दो परम पुरुषार्थों - धर्म और काम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका प्रभाव अत्यन्त स्थायी एवं सार्वभौम तथा इसका अनुभाव अत्यन्त उत्कृष्ट होता है। अतः वात्सल्य के रसत्व का निषेध संभव नहीं।”

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सुप्रसिद्ध विद्वान्  
डा० बी० राघवन , डा० शंभुनाथ पाण्डेय आदि विभिन्न विद्वानों ने वात्सल्य  
रस की सत्ता पृथक् रूप से स्वीकार की है। डा० शंभुनाथ पाण्डेय ने सूर खं

१-छा० मगीरथ मित्र-काव्यशास्त्र पृ० २६

२- डा० नगेन्द्र - रीतिकाव्य की भूमिका पृ० ७२

3- 22

२६६

तुलसी के काव्य में वात्सल्य कीष प्रमुक्ता प्रतिपादन करते हुए कहा है :

“ सूर तुलसी जैसे महाकवियों ने वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक अपनी काव्य में किया है, और पाठक भी उससे पूर्ण रसास्वादन ग्रहण करते हैं- क्तः वात्सल्य रस को रस मानना न्याय संगत है।<sup>१</sup>”

वाधुनिक युग में वात्सल्य रस को मनीषा-निक बाधार देकर पृथक् रस के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। सूर साहित्य के विद्वानों ने समस्त स्वर में वात्सल्य की महत्ता को स्वीकार किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी कृति सूर साहित्य में वात्सल्य रस की विवेचना नहीं की है, किन्तु उन्होंने कृष्ण यशोदा के विषय में सूर के दृष्टि-कोण एवं सूर साहित्य के वर्ण्य विषय में जिस भावना को अपनाया है, वे स्वयं वात्सल्य रस की कोटि में लाते हैं।<sup>२</sup>

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचारों को मानकर वात्सल्य रस के रूप में माना है। डा० दीनदयालु गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “अष्ट-हाप और वल्लभ सम्प्रदाय” में वात्सल्य रस के रूप में प्रतिपादित किया है। मधुर, वात्सल्य, सख्य आदि भावों की विवेचना उन्होंने वात्सल्य रस के अन्तर्गत की है। सूर की वात्सल्यानुभूति की चर्चा करते समय उन्होंने उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया है :

१- डा० शंभुनाथ पाण्डेय- काव्यशास्त्र पृ० ६८

२- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : सूर साहित्य पृ० १६७



“सूर का बाल-भाव चित्रण तो प्रसिद्ध ही है। ऐसा रस पूर्ण तथा मुग्धकारी वर्णन भारतीय भाषाओं के कदाचित् किसी भी कवि की कृति में न मिले।”

वात्सल्य रस की विवेचना करने पर यह ज्ञात होता है कि प्राचीन संस्कृत के आचार्यों ने वात्सल्य को पृथक् रूप से रस का स्थान प्रदान नहीं किया। इसका कारण लक्षण ग्रन्थों का अभाव ही माना जायेगा। उनका मन वत्सल की भावना का प्रतिपादन सदैव करता था यही कारण था उन्होंने वात्सल्य भाव की चर्चा करके उसको मानव मन की कोमल, संवेदनात्मक अनुभूति के रूप में वर्णित किया साथ ही वात्सल्य को “भाव” की कोटि प्रदान की। इतना अवश्य मानना पड़ता है कि प्राचीन काव्यशास्त्रियों के कथन की मनोवैज्ञानिक विवेचना करने पर वात्सल्य स्वयं ही पृथक् सत्ता के रूप में प्रतिपादित हो जाता है।

### निष्कर्ष

इस प्रकार वात्सल्य को रस के रूप में स्पष्ट प्रतिष्ठा चौदहवीं शताब्दी में प्राप्त हुई। वात्सल्य का विस्तृत रूप वैष्णव आचार्यों के साहित्य में उपलब्ध है। इन आचार्यों ने वात्सल्य का सम्बन्ध भक्ति की भावना से जोड़ दिया है। वैष्णव भक्तों ने भक्ति के पाँच रूपों का विवेचन किया है- कान्त, सख्य, वत्सल, दास्य एवं शान्त। मध्यकाल में अष्टादश कवियों की काव्यगत विशेषताओं एवं कृष्ण के लीला सम्बन्धी चित्रों ने वात्सल्य रस को अधिक प्रतिष्ठा दिलाई। तुलसी एवं सूर के काव्य ने एक स्वर से मनोवैज्ञानिक, शास्त्रीय एवं साहित्यिक रूप में वात्सल्य

रस की स्वतन्त्र रूप से स्थापना की, जिसे तत्कालीन एवं परवर्ती काव्य ने सरस अनुमोदन प्रदान किया ।

### वात्सल्य भाव के मूल-तत्त्व

हृदय का सम्बन्ध मनुष्य की मूल प्रवृत्ति से होता है। किसी भी काव्य का विश्लेषण उचित ढंग से वही व्यक्त कर सकता है, जिसकाव्य के भावात्मक स्थलों की परख कर सकने की क्षमता है। इसी प्रकार कवि का हृदय किसी भी विशेष घटना से प्रभावित होकर यथा-शक्ति अपने काव्य में भावात्मक स्थलों को उद्घाटित करता है। इस प्रकार काव्य का मूल तत्त्व भाव होता है। जैसा लक्ष्मीनारायण सुधाशु ने कहा है :

“ प्रत्यय बोध अनुभूति और वेग युक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम ‘भाव’ है। ”

भारतीय परिवेश में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षा को जीवन के चार चरणों के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। इनमें यदि संतान का अभाव है तो व्यक्ति को मोक्षा की प्राप्ति असम्भव है। अतः लौकिक जीवन में धार्मिक विधान के कारण संतान मानव जीवन के एक आवश्यक अंग के रूप में माना जाता है, और अपने जीवन में सामाजिक मान्यताओं को मान कर जीवन व्यतीत करना ही सामाजिक सफलता कही जाती है। संतान के लिए बच्चों की विविध कृद्धियों की देखभाल उत्पन्न भावके विषय में पाश्चात्य

१- लक्ष्मीनारायण सुधाशु - जीवन तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त पृ० १७५

सर्व भारतीय विद्वानों ने अपने अपने विचारों को प्रतिष्ठापित किया है।  
 पाश्चात्य विद्वानों में मैन्डगल की विचारधारा सर्वमान्य हुई है। मैन्डगल ने  
 वात्सल्य का विवेचन करते समय मातृ हृदय की कोमल भावनाओं एवं उसका  
 सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थिर किया है। वात्सल्य भावना के  
 उदय होने पर बालक की रक्षा-प्रवृत्ति मुख्य रूप से माता-पिता के सम्मुख  
 आ जाती है। शिशु की प्रत्येक क्रिया से माता-पिता के हृदय में वात्सल्य का  
 संचार होता है। वे उसकी क्रियाओं को देखकर प्रसन्न होते हैं। विलियम मैन्डगल  
 ने इस बात को इस प्रकार कहा है :

\* The parental sentiment is apt to be not  
 only tender sentiment of Love for the child,  
 but to be complicated by an extension of  
 self-regarding sentiment to him and to all  
 that pertain to him, owing to the parents  
 intellectual identification of the child with onself."<sup>1</sup>

इसी भाव को मैन्डगल ने इस प्रकार भी व्यक्त  
 किया है कि यदि संसार<sup>२</sup> कहें भी शुद्ध त्याग तथा रागात्पक्ता के दर्शन करने  
 हों तो माता-पिता के वात्सल्य प्रण हृदय में देखना चाहिए<sup>३</sup>। इतना ही  
 नहीं मैन्डगल के विचारानुसार वात्सल्य की भावना मनुष्य के अन्दर त्याग की  
 प्रवृत्ति जगाती है। वह अपने स्वभाव पर नियन्त्रण करना जान जाता है।

मैन्डगल की विचारधारा के अनुसार माता-  
 पिता अपने जीवन की अतृप्त लालसाओं को अपनी संतान के द्वारा पूर्ण होती

१- विलियम मैन्डगल - द इन्टेलिजेंस टू सोशल साइकालोजी पृ० ६०

२-

..

..

२३०

देसना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी सम्पत्ति का उपयोग उनकी संतान ही करे। सल्यूगल ने संतान के पालन पोषण में माता पिता वफा जीवन की वपूर्णता की परिपूर्ति भी देसी है।

वेन ने संतान के सान्निध्य की एक अभिव्यक्ति के रूप में देसी का प्रयत्न किया है जो शारीरिक स्पर्श, चुम्बन, वार्त्तिन वदि के द्वारा प्रकट होती है :

" The superficial observer is purely self regarding as the pleasure of wine or of music. Under it we are induced to seek the presence of the beloved objects and to make the requisite sacrifices to gain the end looking all the while at our own pleasure and to nothing beyond. " 1

वात्सल्य भाव, क्रोध, जुगुप्सा, रति, विस्मयादि भावों के सदृश्य प्रभावशाली है। इसलिए डा० नगेन्द्र ने इस मानव जीवन की एक बड़ी भूख के रूप में माना है। उनका विचार है कि :

" वात्सल्य का सम्बन्ध तो जीवन की एक सर्वप्रथम ऐशाना पुत्रैशाना से है। वात्सल्य मानव जीवन की एक बहुत बड़ी भूख है। " २

डा० नगेन्द्र की उर्फुवित परिभाषा हिन्दू

१- रब्जन : इमीशनस एण्ड दी विल पृ० ८०

२- डा० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका पृ० ७२

धर्म के चार सोपान यथा-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को ईगित करके कही गई है।

रस का मूलधार भाव होता है। यही कारण है प्राचीन मुनि भरत ने भाव की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए लिखा है :

“ न भाव हीनो स्ति रसो न भावो रस वर्जितः<sup>१</sup>”

यथा- भाव के बिना रस की सत्ता नहीं होती इसी प्रकार रस रहित कोई भाव नहीं होता । वाचार्य शुक्ल ने रस की महत्ता का प्रतिपादन अपेक्षाकृत मनोवैज्ञानिक ढंग से दी है। वे कहते हैं - जिस प्रकार वात्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है<sup>२</sup>।

पं० राम दहिन मिश्र का विचार है कि किसी वस्तु के प्रति अवस्था विशेष में होने वाली मानसिक स्थिति भाव है<sup>३</sup>। प्राचीन मुनि भरत के विचारानुसार मनोविकार के दो प्रकार होते हैं । स्थायी भाव एवं संचारी भाव । यही दोनों भाव वात्सल्य के प्रमुख तत्त्व माने जा सकते हैं। प्राचीन वाचार्यों ने वात्सल्य को “ संचारी भाव ” के वन्तर्गत रखलिया, क्योंकि संचारी भाव स्वयं एक संवर्णशील मानसिक स्थिति होती है, जिसका उदय “ भाव ” ( स्थायी भाव ) का वाश्रय पाकर होता है। वात्सल्य को सभी विद्वानों ने एक मनोवैग माना है। भावों का वर्गी-

१- भरत नाट्यशास्त्र ६। ३६ , पृ० २६३

२- रामचन्द्र शुक्ल - रसमीमांसा पृ० ५

३- रामदहिन मिश्र - काव्यदर्पण पृ० ४४

करणकालगत स्थिरता पर बाधारित किया गया है। स्थायी भाव उन भावों को कहते हैं जो हमारे हृदय में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। वे संस्कार जो विशेष वातावरण एवं परिस्थिति में हमारी मानसिक स्थितियों का निर्माण करते हैं, स्थायी रूप से हमारे मन में विद्यमान होकर स्थायी भाव बन जाते हैं। स्थायी भाव की परिभाषा देते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है,

‘ अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधानुमत्तमाः ।

वात्सादाकृदन्दी सौ भावः स्थायीति सम्मतः ॥ ’ १

इन्होंने यह भी कहा कि ऐसा भाव जो रसावस्था तक पहुँचता है स्थायी भाव कहलाता है।

‘ रसावस्थः परम्भावः स्थायित्वा प्रतिपत्तिः । ’ २

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थायी भाव अधिक काल तक स्थिर रहते हैं तथा इसका सम्बन्ध सीधा रस से होता है, रसावस्था तक न पहुँचने पर ये भाव मात्र रह जाते हैं। मानव-मन में ये स्थायी भाव किसी भी वासना, चेष्टा अथवा प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान रहते हैं, और क्वसर पाकर परिस्थिति विशेष पर फ़ूट ही जाते हैं। वे अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों में समाप्त नहीं होते। विश्वनाथ ने वात्सल्य को रस के संदर्भ से माना है। अतः स्थायी भाव भी इस ही माने गये हैं। परवर्ती काल में रसों की संख्या बढ़ने के कारण स्थायी भावों की संख्या भी बढ़ती गयी है, क्योंकि विद्वानों के मतानुसार प्रत्येक भावों में रस

१- आचार्य विश्वनाथ - साहित्यदर्पण , तृतीय परिच्छेद श्लोक १७४

२-

..

..

..

१४४

दशा तक पहुँचने की दायता है।

वात्सल्य के स्थायी भाव स्नेह, ममता माने गये हैं। कुछ विद्वान् बालक की असहाय अवस्था एवं उनके पालन-पोषण के कारण पालने वाले व्यक्ति के मन में उत्पन्न ममता की प्रवृत्ति के फलस्वरूप कठुणा की भी वात्सल्य का स्थायी भाव मानते हैं।

संस्कृताचार्य हेमचन्द्र ने वात्सल्य को शृंगार के ढोड़ में रखा है। अतः वे वात्सल्य का स्थायी भाव रति मानते हैं :

‘ उत्तमस्य अनुत्तमरेति वात्सल्यम् । ’ १

कवि कर्णपूर्ण वात्सल्य का स्थायी भाव ‘ ममकार ’ मानते हैं । उनकी विचाराधारा के अनुसार ‘ ममकार ’ अर्थात् ममता अथवा स्नेह वात्सल्य का स्थायी भाव है। विश्वनाथ ने भी वात्सल्य का स्थायी भाव स्नेह ही माना है :

‘ स्थायी वत्सलता स्नेहः ’ २

रूप गौस्वामी जी की भक्ति रस के प्रवर्तक के रूप में माना जाता है। इन्होंने वत्सल भक्ति का स्थायी भाव वात्सल्य माना है। सभी प्रमुख आचार्यों ने वात्सल्य में ममता एवं कठुणा की मात्रा अधिक होने के कारण ममता एवं कठुणा को वात्सल्य के स्थायी भाव के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य विश्वनाथ की मान्यता को सभी ने स्वीकार कर लिया है।

१- हेमचन्द्र - काव्यानुशासन पृ० १०६

२- विश्वनाथ - साहित्यदर्पण पृ० २५१

३- रामदत्त मिश्र - काव्य दर्पण पृ० २१७

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थायी भाव वात्सल्य के मूल तत्त्व है जिसके माध्यम से पिता संतान के प्रति भगवान् भक्त के प्रति भक्त भगवान् के प्रति, गुरु शिष्य के प्रति अपनी माताभावनाओं का परिचय स्नेह युक्त व्यवहार से देता है।

विभाव वात्सल्य का मूल तत्त्व है। विभाव के दो भेद होते हैं :

१- बालम्बन

२- उदीप्त

जैसे दैक्षर चित्त में भाव क्लृप्त होते हैं, वह बालम्बन होते हैं, और जो आश्रय के हृदय में भाव को उदीप्त करते हैं, वे उदीप्त होते हैं।

वात्सल्य भाव को उदीप्त करने में किसी भी बालक की बालीचित चेष्टायें सहायक होती हैं, अतः जहाँ भी कोई बालक मन में वत्सल की भावना के उद्भूत में सहायक होगा वहीं वह बालम्बन बन जावेगा। वत्सल भावना को आश्रय के हृदय में उदीप्त करने वाले बालक, गुरु, पिता अथवा कोई अन्य व्यक्ति भी हो सकता है।

वत्सल भक्ति में कोई भक्त भगवान् की उपासना अपने पुत्र या कोई भी छोटे बालक के समान करता है, कोई भक्त स्वयं को बालक मानकर भगवान् भक्त वत्सल मानकर कर्त्तव्य करता है। तात्पर्य यह है कि वात्सल्य की संरचना का रूप मात्र-मात्र बदल जाता है। भावना में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। जैसे- भागवत में कृष्ण यशोदा के पुत्र के रूप में



चित्रित किये गये हैं, अतः भागवत से प्रभावित साहित्य की सर्जना करने वाले सभी भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के बालरूप वर्णन में अधिक रुचि दिखाई है। इसी प्रकार वैदिक ऋषियों ने स्वयं को बालक माना है। कहने का तात्पर्य यह है कि वात्सल्य भावना के उद्भूत में केवल सम्बन्ध भावना ही मूल रूप से परिवर्तित होती है। वाश्रय एवं बालम्बन के सम्बन्ध में ही परिवर्तन होता है।

वात्सल्य का मूल तत्त्व अनुभाव भी होता है। बालक की विभिन्न चेष्टायें यथा- हँसना, काँप्ना, रोना, हठ करना आदि मनुष्य के हृदय में वत्सल भावना का उद्भूत करती हैं। ये अनुभाव भाव के बाद में उत्पन्न होते हैं। अनुभाव भाव का बोध कराते हैं। अनुभावों को चार भेदों में बाँटा गया है। यथा- कायिक, मानसिक, वाहार्य एवं सात्त्विक। कृत्रिम भ्रमण, कटाक्ष संकेत इत्यादि वर्गों द्वारा प्रदर्शित अनुभावों को कायिक अनुभाव कहा जाता है।

मन के मोद, हर्ष आदि भावों को मानसिक अनुभाव कहते हैं। कृत्रिम वेशभूषा को वाहार्य अनुभाव कहा जाता है। इसी प्रकार वाश्रय के स्वाभाविक जंग विकारों को सात्त्विक अनुभाव कहा गया है, जिनकी संस्था विद्वानों ने वाठ बताई है। वात्सल्य अनुभावों को इन्हीं श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

इस निष्पत्ति के लिए समय-समय पर अस्थिर रूप से फ़ूट होकर और फिर विलीन होकर स्थायी भाव को पुष्ट करने वाले संचारी भाव कहे जाते हैं। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने संचारी भाव की परिभाषा देते हुए कहा है :

‘विशेषादाभिमुख्यं चरणाद् व्यभिचारिणः ।

स्थायिन्युन्मत्तनिमग्नास्त्रस्त्रिशञ्च तदिभदाः । ’ १

इस प्रकार संचारी भावों की संस्था तैतीस मानी गई है। वात्सल्य का संचारी भाव हर्ष, गर्व, अनिष्ट की वांछा इत्यादि है।

डा० श्रीनिवास शर्मा ने वांछा, हर्ष, गर्व, आवेग, पुष्क, स्मृति, विस्मय आदि को वात्सल्य का संचारी भाव माना है।

भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव ये ऐसे तत्त्व हैं जिनके संयोग से मानव-हृदय वात्सल्य का संचार होता है। उदाहरणार्थ सूरदास का यह पद है जो हृदय में वात्सल्य का उद्भव करता है :

‘सीजत जात मासत सात ।

वरुन लीचन, माँहि टढ़ी, बार बार जैमात ।

कबहुँ रुनभुन चलत छुटुनि, धूरि धूसर गात ॥

कबहुँ फुकि कै कल्ल सैचत, नैन जल मरि जात ।

कबहुँ तोतरे बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात ।

सूर हरि की निरखि सोभा, निमिष तजत न मात ॥ ’ ३

कृष्ण को फुंफुलाहट भरे नेत्र, टढ़ी माँहि, क्रोध में केश सीविना, अटपटे शब्दों की बोलना, सभी उदीप्त प्रस्तुत करते हैं, किन्तु उदीप्त विभाव द्वारा रस सृष्टि करने वाले उपरोक्त पद में हर्ष

१- विश्वनाथ - साहित्यदर्पण पृ० १३१

२- डा० श्रीनिवास शर्मा - आधुनिक हिन्दी काव्य में वात्सल्य रस पृ० १७

३- सूरदास - सूरसागर, दशम स्कन्ध पद ७१८

संचारी भाव है। माता यशोदा का कृष्ण का एक टुक मुस देसना अनुभाव की व्यंजना करता है।

उपर्युक्त तत्त्वों के वतिरिक्त हृदय में वात्सल्य भाव का संचार करके उसे इस दशा में पहुँचाने में वे दश दशार्थ भी सहायक होती हैं , जिसके माध्यम से हृदय अपनी सभी भावनाओं को व्यवस्त करने की क्षमता रखता है : यथा- वमिलाणा, विन्ता, स्मरण, गुणकथन., उद्देश, प्रताप, उन्माद , व्याधि , जड़ता, मूर्च्छा वादि ।

### निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वात्सल्य लौकिक एवं पारलौकिक जीवन की तुष्टि का एक माध्यम है, जिसका सम्बन्ध हृदय के मनोवर्गा से होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में मानव मन में उठने वाले मनोभावों की संख्या ४२ बताई है। भरत मुनि के विचारानुसार स्थायी एवं संचारी यह दो प्रकार के भाव होते हैं। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा , विस्मय और निर्वेद ऐसे स्थायी भाव हैं जिन्हें भरत मुनि ने अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट माने हैं। संचारी भावों की संख्या इन्होंने ३३ बताई है , किन्तु वात्सल्य हृदय का मूल भाव होता है। अतः वात्सल्य भाव को न तो स्थायी भाव ही कहा सकता है और न संचारी भाव । स्थायी भाव एवं संचारी भाव वात्सल्य भाव को अधिक पुष्टता प्रदान करते हैं। जिस समय वात्सल्य की भावना हृदय में उठती हो उस समय स्थायी भाव अथवा संचारी उसे दबाने में असमर्थ रहते हैं। कारण यही होता है कि मानव-जीवन के हृदय का मूल भाव होने के कारण वात्सल्य भाव का संबन्ध निश्चित रूप से जीवन की सार्थकता से सम्बन्धित ही जाती है। जीवन का सम्बन्ध मानव जगत् से होता है।

जग के सभी क्रियाकलाप मानव-जीवन को परिवर्तित करनेवाली ऐशाना सर्व मनोभावों से सम्बन्धित हैं। इन मनोभावनाओं का स सम्बन्ध राग से होता है, जिसे मनुष्य की आत्मा का मूल गुण माना जाता है। मनुष्य की सभी आकांक्षाओं, अभिलाषाओं, सर्व वाशाओं का केन्द्र सतान ही होती है। मानव-जीवन में वात्सल्य ही जीवन को प्रेरणा देकर भौतिक अनुभूतियों में लिप्त रहने के लिए लातायित करता है। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि छोटे पद या वायु के व्यक्तियों के प्रति माता, पिता, गुरु आदि के हृदय की स्नेह भावना से वात्सल्य रस की निष्पत्ति होती है। वात्सल्य के मूल तत्त्व स्थायी भाव, आलम्बन, आश्रय एवं उद्दीप्त कहे जा सकते हैं। वात्सल्य भाव का स्थायी भाव स्नेह होता है। स्नेह मानव-मन की वह भावना है जिसका आधार मानवता कहा जाता है। यह हृदय की वह कोमल भावना है जिसके माध्यम से हृदय में वात्सल्य युक्त विचार उमड़ते हैं। आलम्बन वात्सल्य का ऐसा तत्त्व है जिस पर वात्सल्य की सभी भावनाएं आधारित हैं जिसके प्रति स्नेह भावना जाग्रत हो वही आलम्बन वात्सल्य की आधार शिला है। आश्रय का महत्व भी वात्सल्य रस की निष्पत्ति में किसी तरह कम महत्त्व का नहीं है। ऐसा मनुष्य जिसके हृदय में किसी छोटे के प्रति स्नेह, भावना जाग्रत हो वह वात्सल्य का मूल तत्त्व ही कहा जायेगा। स्थायी भाव, आलम्बन एवं आश्रय के अतिरिक्त छोटी-छोटी अवोध स्वाभाविक चेष्टाएँ - हठ करना, तालियाँ बजाना, नाचना, तुलाना, लुठाना आदि की भी वात्सल्य भावनाओं को उद्दीप्त करने में यथेष्ट सहायक हैं। आश्रय की स्नेह सूचक चेष्टाएँ- प्रसन्न होना, रोमांच, अश्रु, गद्गद वाणी, चुम्बन आदि अनुभाव भी वात्सल्य रस के उद्भेद में सहायक होते हैं। संचारी भाव हर्ष, गर्व आदि भी वात्सल्य भाव के उद्भेद करने में सहायक होते हैं।

## तृतीय अध्याय

### मध्ययुगीन भक्ति काव्य का स्वरूप

- (क) मध्ययुगीन भक्ति काव्य का स्वरूप  
(ख) भक्तिकाल की सामान्य परिस्थितियाँ  
राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक,  
साहित्यिक  
(ग) प्रमुख भक्त कवियों का बाल साहित्य  
सूरदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी,  
गोविन्दस्वामी, कुम्भनदास, परमानन्ददास,  
कृष्णदास, रसखान, सूरदास मदनमोहन,  
जनुमणवान, गंगाबाई, तानसेन, रत्नकुँवरि,  
चन्द्रसखी, ब्रजवासीदास, नारायण स्वामी,  
बीरबल, रसिक प्रीतम, तुलसीदास, कृष्णदास,  
केशवदास, हरबल्लभ सिंह, कृपा निवास,  
रामचरणदास । निष्कर्ष ।

- (घ) मध्ययुगीन रीतिकाव्य का स्वरूप  
सामान्य परिस्थिति - राजनीतिक,  
सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक,  
निष्कर्ष

प्रमुख रीतिकालीन कवियों का बाल साहित्य  
बिहारी, केशव, बालम स्वयंसेवक, धनानंद,  
नागरीदास, चाचा हित धृन्दावनदास,  
ब्रजवासीदास, बाबा दीन दयाल गिरि,  
स्वयं बहार अनन्य ।

## क्याय २

### मध्ययुगीन काव्य का स्वरूप

#### (क) मध्ययुगीन भक्ति-काव्य का स्वरूप

मध्ययुगीन भक्ति काव्य का विवेचन करते समय तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक पदार्थों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मध्ययुग में भारतीय जन-मानस के हृदय में परिस्थिति की विषमता से वास्तविक समाज में जिस प्रकार पूजा-स्थलों का निरादर हो रहा था, उससे सामान्य मानव-मन विलस रहा था। ऐसे समय में जिस साहित्य की सर्जना हुई। वह पूर्णरूपेण वास्तविक-मुक्त था, किन्तु उसमें पूरी चेतना नहीं थी। इस युग के साहित्य में श्रीमद्भागवत की भावनाओं से उच्चलित भक्ति-श्रोत धीरे-धीरे बहता हुआ साहित्य को अभिसिंचित कर रहा था। भक्ति-भावना से युक्त भक्त कवियों की परम्परा एवं तत्सम्बन्धी सूचि का ज्ञान तत्कालीन साहित्य से उपलब्ध होता है। मध्ययुगीन भक्त कवियों का परिचय नामादास कृत 'भक्तमाल' गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं ध्रुवदास की 'भक्त-नामावली' से मिलता है। मध्ययुगीन कवियों ने अपने सम्प्रदाय को पुष्ट करने के लिए कीर्तन, भजन, पद तथा अन्य प्रकार के काव्य रूपों की सर्जना की है। मध्ययुग में ऐसे लोक कवि हुए हैं, जिन्होंने उक्त काव्य-रूपों से मुक्त रचनाएँ भी की हैं जैसे-मीरा।

मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य में वाध्यात्मिक भाव की इतनी मधुर सात्विक विवेचना हुई है कि कोई भी सहृदय उसकी दिव्या-नुभूति, महत्ता एवं पावनता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इस दृष्टि

से साहित्यिक संरचना के क्षेत्र में कवि सूर की प्रतिभा के सन्मुख नत मस्तक होना पड़ता है। उनके काव्य में प्रेम-सौन्दर्य एवं त्याग की त्रिवेणी निरन्तर ब्रवाहित होती है, जिससे सांसारिक ताप से मुक्तता हुआ मन शान्ति पा सकता है। इस तथ्य को समर्थ समालोचकों ने समस्त स्वर में स्वीकार किया है।  
वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार -

“ भक्ति के सच्चे उद्गार ने हमारी भाषा की प्रौढ़ता प्रदान की और मानव-जीवन की सरसता दिखाई। सूर और तुलसी के समय हिन्दी कविता की जो समृद्धि दिखाई देती है, उसका कारण शाही दरबार की कद्रदानी नहीं है, बल्कि उस समृद्धि का कारण है सूर-तुलसी। और सूर तुलसी के उत्पादक हैं इस भक्ति काव्य का विकास जिसके अवलम्बन थे राम और कृष्ण।<sup>१</sup>

भवत के सच्चे उद्गार की अभिव्यक्ति भक्ति-साहित्य की धरोहर है। डा० नगेन्द्र ने भक्ति-साहित्य के विषय में अपनी विचार प्रकट करते हुए लिखा है -

“ मध्यकालीन भक्ति-साहित्य का स्वरूप प्रायः पथमय है----- इसके साधन लौकिक अवश्य हैं, किन्तु इसका साध्य ऐसी लौकीकृति अनुभूति है जिससे भक्त के चित्त को शान्ति और आनन्द की उपलब्धि होती है। ”

मध्य युग में वात्सल्य साहित्य का विस्तृत

१- वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल - गोस्वामीतुलसीदास - नागरीप्रचारिणी सभा,  
काशी, पृ० २

२- डा० नगेन्द्र : डा० सुरेश चन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का इतिहास,  
ना० प्र० सभा० प्रथम संस्करण पृ० ६३

विवेचन अष्टछाप कवियों के काव्य में प्राप्त होता है। इनमें भी सुरदास, नन्द दास, एवं परमानन्ददास ने मुख्य रूप में वात्सल्य को ही अपने काव्य का प्रति-पाद्य बनाया। कृष्णकाव्य में मुख्यतया श्री कृष्ण जन्म, नामकरण, अन्नप्राशन, वर्णगांठ, छुटारवाँ चलना, पाँवाँ चलना, बाल हवि वर्णन, कनकदन, चन्द्र प्रताप कलेऊ वर्णन एवं श्रीद्विन को ही वात्सल्य मिला है। विभिन्न प्रकार से कृष्ण की बाल सुलभ लीला को चित्रित करने में अष्टछाप कवियों के अन्तर्गत सुर की प्रतिभा उल्लेखनीय है।

राम काव्य में भी वात्सल्य चित्र यथा- राम जन्म, बाल-हवि-वर्णन, नामकरण, अन्नप्राशन, दुलार, पालना एवं सोहलौ का गया जाना, पाँवाँ चलना तथा राज प्रासाद में श्रीद्वि करना मुख्य रूप से उपलब्ध है। मध्ययुगीन राम एवं कृष्ण काव्य में वर्णित वात्सल्यमयी चैष्टाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है : एक संयोग वात्सल्य तथा दूसरा वियोग वात्सल्य। लीला ला लित्य के अतिरिक्त मध्ययुगीन भक्ति काव्य में लोक-मंगलकारी भावना, नैतिक बोध, सामाजिक सुरदास आदि की भावना को भी जगाया गया है।

निर्गुण भक्त कवियों के काव्य में भक्ति का रूप ज्ञान की छाया से आच्छादित है। ईश्वर की महत्ता, इन भक्त कवियों ने ज्ञान में प्रेममयी व्यंजना को समाहित करके उसे धर्म की कसौटी पर कसने का प्रयास किया है, जिसकी दिशा लोकरजनकारी प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होती है। निर्गुण भक्त कवियों में सूफी मतावलम्बियों ने अपने काव्य में सूफियों के प्रेम तत्त्व को समाहित करके, उस प्रेम को वासनात्मक वृत्ति से अलग करके ईश्वर की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया है। निर्गुण भक्ति



काव्य में ऊँच-नीच की भावना के परित्याग की भावना के साथ-साथ जाँति भेद को नष्ट कर मनुष्य को भक्ति की ओर उन्मुख करने की प्रवृत्ति भी परि-  
लक्षित होती है।

विषय वस्तु की दृष्टि से मध्ययुगीन भक्ति साहित्य में चरित काव्य वर्णनात्मक काव्य, गीतिमूलक काव्य, स्फूर्त काव्य एक पक्षक काव्य मिलते हैं। भक्त कवियों ने समाज कल्याण की भावना को अपने विचारों के द्वारा प्रकट किया है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से मध्ययुगीन भक्त कवियों ने रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, कर्तकार, गुण, वृत्ति आदि का प्रयोग जिस सहजता से किया है उस सहजता का दर्शन रीतिकालीन कवियों के काव्य में भी संभव नहीं है। भक्तिकालीन कवियों की मूल भावना राम, कृष्ण, निर्गुण, ब्रह्म प्रेम मार्गी ब्रह्म की भक्ति में लिप्त होते हुए भी भक्ति काव्य के अन्तर्गत समाहित हो जाती है। जिससे क्लग-क्लग भावनाओं के परिचायक कवियों की विचारधारायें एक ही चौराहे पर जाकर मिलती सी प्रतीत होती है। कलापक्ष की दृष्टि से मध्ययुगीन भक्ति साहित्य में कर्तकारों के सहज सौन्दर्य के साथ-साथ भाव-गहनता एवं भाषा की सजीवता विद्यमान है। सामान्यतः अपनी भावुकता एवं बौद्धिकता के कारण ही मध्य-कालीन कवियों ने अपने काव्य में नाद-सौन्दर्य के साथ-साथ कविता चित्र प्रणाली का अनुकरण किया है। यही कारण है कि भक्तिकालीन काव्य को आज तक अविरल रूप से सामान्य जनमानस का हृदय स्वीकार कर रहा है।

इस विचार को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है। उनका विचार है कि, "चित्र को हम एक ओर से दूसरी ओर दायें से बाएँ जिस प्रकार चाहें देखकर समान आनन्द प्राप्त कर सकते हैं, पर कविता और संगीत में गति आगे की ओर बढ़ती है। इसमें पीछे से आगे और आगे से पीछे बढ़कर एक-सा आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते।"<sup>१</sup>

## भक्तिमूल की सामान्य परिस्थितियाँ

### राजनीतिक परिस्थिति

उत्तर भारत में भक्ति-भावना के प्रसार -  
प्रसार का मूल कारण तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक वराकता ही कही जाती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों ने भी इसी परम्परा का निर्वाह करके भक्ति-आन्दोलन एवं भक्ति-साहित्य की सर्जना का मूल कारण राजनीतिक वस्थिरता ही बताया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार -

“ जब मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज भी न रह गये। इतने भारी राजनीतिक उलट फेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी काबू रही। अपने पीरुणा से हताश जाति के लिए भगवान् की शक्ति और कृपा की ओर ध्यान देने जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था? ”

मध्यकालीन हिन्दी इतिहास का अवलोकन करने पर खिलजी, तुगलक, सेयद, लोदी तथा मुगलवंशों के दो तीन शासकों की छोड़कर अन्य बादशाहों की क्रूरता धर्मान्धता एवं पदापात पूर्ण नीति का भान होता है। जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासविद् डा० ईश्वरी प्रसाद ने कहा है-

“ इस्लाम धर्म का प्रसार भारत वर्ष में उसके सरल सिद्धान्तों के कारण नहीं अपितु इसलिए हुआ कि वह एक राज-शक्ति का धर्म था, जिसका प्रसार विजित प्रजा में बलात् कृपाण और

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, ना० प्र० समा०

संवत् १९६७ पृ० ६०

दण्ड के बाधारे पर किया जाता था ।<sup>१\*\*</sup>

राजनीतिक दुर्व्यवस्था के फलस्वरूप जनता में भी नैतिक बल का अभाव था । इस बात की इतिहासकारों ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है -

“ लोगों में विलासिता का दौर था ।

योग्यता की कोई पूछ नहीं थी, बादशाह की इच्छा ही कानून थी । सुलतान की कृपा दृष्टिसे जिन्हें सम्पत्ति और अधिकार प्राप्त थे, उनमें विलासिता और दुर्व्यसन घर कर गये थे ।<sup>२\*\*</sup>

देश की राजनीतिक परिस्थितियों में सम्राट् अकबर की उदार नीति के कारण हिन्दुओं की कुछ राहत मिली । अकबर एक दूरदर्शी, कला-प्रेमी एवं उदार शासक था । अकबर के शासनकाल में भी हिन्दुओं की राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी, लेकिन उनके मन में इस्लाम के प्रति, पिछली राजसत्ता के प्रति व्याप्त आक्रोश की भावना का विनाश हो गया था । यही कारण था कि हिन्दू राजाओं ने अकबर की राज्य विस्तार की आकांक्षा की पूर्ति में यथाशक्ति सहायता की । इतना ही नहीं हिन्दू राजा अपनी कन्याओं का मुसलमानों से विवाह करने में भी नहीं झुकाये । यद्यपि हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति की भावना में अकबर का अपना स्वार्थ सन्निहित था, फिर भी वह हिन्दुओं में अधिक विश्वसनीय शासक के रूप में विख्यात था । अकबर के शासन में हिन्दुओं ने स्वयं को मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वतन्त्र पाया था । उन्होंने एक लम्बे अवसादपूर्ण अन्तराल के पश्चात् सुख

---

१- डा० ईश्वरी प्रसाद : हिन्दी वाक मेडिक्लि ईडिया पृ० ४६५

२- उपरिक्त

की साँस ली थी ।

### सामाजिक परिस्थिति

सामाजिक मूल्यांकन की दृष्टि से इस युग को शान्तिकारी युग कहा जा सकता है। ऊँच-नीच की भावना समाज में निरन्तर फैलती जा रही थी। शासक वर्ग के द्वारा मुसलमानों के 'स्मृतियों' की प्रोत्साहन मिलता था। उन्हें वार्षिक सहायता भी प्रदान की जाती थी। लेकिन हिन्दुओं के लिए ऐसा विधान नहीं था। फर्मा-प्रथा, बाल-विवाह का प्रचलन इसी युग की देन है। कुछ मुसलमान शासकों की काम-वासना से हिन्दू-वर्ग पीड़ित था। हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार करने वाले शासकों में अलाउद्दीन खिलजी उग्रणी था। हिन्दुओं में ऊँच-नीच की भावना के कारण सामाजिक जीवन याप्त अत्यन्त कठोर हो गया था, मुसलमानों के आगमन से यह भावना अधिक दृढ़ हो गई थी। हिन्दुओं ने अपने सान-पान, विवाह-शादी के बन्धनों को दृढ़ कर लिया था। यही वह समय था जिस समय हिन्दुओं में रुढ़िवादिता, जादूम्बर, बन्धविश्वास अपने चरमोत्कर्ष पर था। चौदहवीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द के प्रयास से भक्ति की जिस लहर ने हिन्दुओं की मनोभावनाओं को उद्देलित किया, उसके कारण समाज का नैतिक उत्थान हुआ। कबोर आदि सन्तों ने सामाजिक स्फुटा की भावना को उद्देलित किया, जिसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक कट्टरता का बन्धन टूटने लगा। इसी समय वल्लभाचार्य की प्रेरणा प्राप्त कर कृष्ण भक्त एवं राम भक्त कवियों ने जाति-गत एवं वर्णगत विभिन्नताओं को दूर करने का प्रयास किया, और इसमें वे कुछ हद तक सफल हुए। इसका उदाहरण कई मुसलमान कवियों द्वारा रचित कृष्ण काव्य है। तुलसीदास कृत 'कवितावली' की निम्नलिखित पंक्तियाँ तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की विवेचना करने में सक्षम हैं :

' स्त्री न किसान को, मिसारी को न भीस बलि,  
 बनिक कौब निज न चाकर कोन् चाकरी ।  
 जीविका विहीन लोग सीधमान सौच बस,  
 कहैं एक स्कन सौं , कहाँ जाई , का करी ? ' १

समाज में चेतना का संचार करने के लिए मध्य-  
 युगीन सभी संतों एवं महात्माओं ने समाज में व्याप्त कृप्याओं को सन्मुख न  
 रखकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया है।

### धार्मिक परिस्थिति

भक्तिकाल के प्रारम्भ में भारतीय समाज  
 में धार्मिक विचारधारा के लोग संघर्षमय जीवन व्यतीत कर रहे थे । संत एवं  
 महात्मा लोग निरन्तर समन्वय की भावना का प्रचार करने के लिए प्रयत्नशील  
 थे । यह व युग था जिसमें वैदिक सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय का विरोधी था  
 एवं नाथ सम्प्रदाय ब्राह्मण धर्म का विरोधी था । बौद्ध धर्म की स्फुटा समाप्त  
 हो चुकी थी । बौद्ध धर्म दो वर्गहीनयान एवं महायान में बंट चुका था । समाज  
 में अन्ध विश्वास की भावना के कारण मंत्र, हठयोग, अभिचार , वशीकरण  
 आदि का प्राबल्य था । इसी प्रकार जैन विचारधारा मायावाद एवं शून्यवाद  
 के अनेक वादम्बरों से जुड़ गई । बुद्धिवादी व्यक्ति भी इन्हीं कुण्ठाओं से घिरा  
 स्वयं को ब्रह्म कहने को हिम्मत करने लगा था ।

मध्यकाल में धार्मिक चेतना को जगाने में  
 वल्लभाचार्य ने प्रमुख भूमिका निभाई । ' भक्ति युग में वैष्णव धर्म ने भक्ति  
 अपना प्रधान साधन बनाकर लोक प्रियता प्राप्त की और उपासना की भक्ति

१- तुलसीदास - कवितावली , गीता प्रेस गोरखपुर, इक्कीसवाँ संस्करण,

उत्तर काण्ड पृ० १६३ पद ६७

का मूल बनाया । भक्ति का यह रूप शुद्ध ज्ञान के सूक्ष्म रूप की तुलना में स्थूल एवं ग्राह्य था । इसमें वैयक्तिक साधना लोक-कल्याण की लक्ष्य बना कर चली । ब्रह्म की उपासना के सगुण एवं निर्गुण दोनों ही रूप प्रचलित हुए ।

मध्ययुगीन वास्तव में काव्य सर्जन का स्वर्ण युग था । भक्त वाचार्यों ने, महात्मा एवं सन्तों ने गरिमामय साहित्य का सर्जन किया जिसके फलस्वरूप मध्ययुगीन मानव के भटकते हृदय की कुछ शान्ति प्राप्त हुई । जैसा कि डा० हजारि प्रसाद द्विवेदी ने कहा भी है :

“ नया साहित्य मनुष्य जीवन के एक निश्चित लक्ष्य और आदर्श को लेकर चला । यह लक्ष्य है भगवद् भक्ति आदर्श है, शुद्ध सात्त्विक जीवन और साधन है प्रेम का निर्मल चरित्र और सरल लीलाओं का गान । इस साहित्य की प्रेरणा देने वाला तात्त्व्य भक्ति है, इसलिए यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से सब प्रकार भिन्न है ।”

संदेह में यदि मध्ययुगीन परिस्थितियों का विवेचन किया जाय तो यही कहा जायेगा कि यह काल सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पतन का काल है। जैसा कि डा० हजारि प्रसाद द्विवेदी ने स्वीकृत किया है :

“ भारतवर्ष के इस कौने से उस कौने तक विदेशी शक्तियाँ अपना आतंक विस्तार कर चुकी थीं—देश में रहने वालों ने अनिच्छापूर्वक विवश होकर यह शासन व्यवस्था स्वीकार कर ली थी—

१- डा० हरबंस लाल शर्मा - सूर और उनका साहित्य पृ० १३६ , भारत प्रकाशन मंदिर, कलिंगद

२- डा० जयकिशन प्रसाद- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ ,

पृ० सं० १४३

भारतवर्ष की असफलता की करुण कहानी से इस युग के इतिहास का अध्याय भरा पड़ा है।<sup>१००</sup>

### साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

मध्ययुग से पहले प्रान्तीय भाषाओं के कवि अपने-अपने अपभ्रंशों का प्रयोग करते हुए मौलिक रचनाओं की सर्जना कर रहे थे, किन्तु उनकी रचनाएँ अपरिष्कृत थीं। भक्ति काव्य की सर्जना के साथ ही काव्य में विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का समावेश हुआ, जिसके कारण भाषा अधिक परिष्कृत हुई। मध्ययुगीन भक्ति काव्य में सर्वप्रथम मानव-समाज की उच्चतम मंगलमय कामना के दर्शन होते हैं। जहाँ समाज में व्याप्त तत्कालीन वाचरण में नैतिकता का पाठ स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' इस बात की पुष्टि का स्पष्ट प्रमाण है। गोस्वामी तुलसीदास ने श्री राम के द्वारा नैतिक वाचरण एवं सामाजिक मूल्यों का प्रतिपादन कराया है। भक्त कवियों ने नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन करते समय तत्कालीन परिस्थितियों में शासक के अनैतिक वाचरण के सन्दर्भ में रावण एवं कंस जैसे पात्रों की भी रचना की है। नैतिकता एवं भक्ति-भावना इस काल के कवियों में इतनी अधिक थी कि इस काल का मनुष्य पौराणिकता, लौकिकता एवं भक्ति काल के कवियों द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था के धरे में घिर कर पूर्णतः परतन्त्र हो गया। मध्ययुगीन मानव के सन्मुख केवल धर्मापन्दी मार्ग ही रह गया। मध्ययुग के साहित्यकार में मनुष्य की कर्तव्य भावना की उजागर करने की प्रवृत्ति पायी जाती है, यद्यपि भक्तों की भावना लौक-परलौक से सम्बन्धित है। उनकी दृष्टि में भद्रतम व्यक्ति भक्त हीता था, और भक्ति जीवन का सर्वोच्च मूल्य।

---

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- सूर साहित्य पृ० ४२, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर  
लि०, अम्बई

मध्यकालीन भक्ति काव्य समसामयिक परि-  
स्थितियों को पूर्णरूपेण अपने साहित्य में समाहित किए हुए है। इन कवियों  
द्वारा प्रतिपादित मूल्य कभी भी नष्ट नहीं हो सकते । इसीलिए मध्यका-  
लीन काव्य को व्यक्त की मानसिक पवित्रता का प्रतीक कहा जा सकता है।  
कवियों ने लोक-कथाओं एवं लोक-गीतों के माध्यम से अपने विचार जनमानस  
पर प्रकट किए हैं। विभिन्न प्रकार के रूपों, दृष्टान्तों, प्रतीकों एवं लोको-  
वित्तियों का प्रयोग भी मध्ययुगीन साहित्य की विशेषता है। भक्तिकाल में,  
लौकिक वातावरण में रचित काव्य केवलरिपित कुछ वीर काव्य, प्रबन्धात्मक  
चरित काव्य, नीति काव्य , ऊँचरी दरबार का काव्य एवं रीति काव्य  
भी प्राप्त होता है। कविगण धार्मिक वातावरण में रहकर भी अपने राजाओं  
का वतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण में प्रवृत्त रहे, यद्यपि इसका कारण आर्थिक लाभ  
था । कुछ कवियों ने अपने दार्शनिक मूल्यों का प्रतिपादन करके अपनी विद्वत्ता  
का परिचय दिया । मध्ययुगीन वैष्णव साहित्य के प्रमुख कवि तुलसीदास ने  
प्रमुखता भक्ति को सर्वोत्कृष्ट माना है, यद्यपि उनके रचित साहित्य में दास्य  
भक्ति का ही प्रतिपादन है। मध्ययुग में जहाँ एक वीर तुलसीदास ने राम का  
मयींदित रूप उजागर किया है, वहाँ सूर एवं अष्टकाप कवियों के द्वारा वात्स-  
ल्य रस के विशाल , समृद्ध साहित्य की सर्जना हुई है। भक्तिकाल के भक्त  
कवियों ने अपनी भावना के प्रदर्शन के लिए भगवान् के उज्ज्वल स्वरूप को उज्ज्वल  
रस के रूप में ग्रहण किया था ।

इस काल के काव्य की वीर ईगित करते हुए  
तथा कवियों ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार प्रयत्न किया ।  
इस विषय में डा० नगेन्द्र का यह मत उल्लेखनीय है :

“ पूर्व मध्य काल का भक्ति काव्य परम्परा-



गत लोकोन्मुखी काव्य के लिए प्रवृत्तियों का वात्रय ग्रहण कर अपने निम्नलिखित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता गया और पार्वती काव्य के लिए उपयुक्त भूमिका तैयार की गई।<sup>१००</sup>

मध्ययुग का साहित्य लौकिक साहित्य की दार्शनिक उमंग, उत्साह एवं विनाश की सरल अभिव्यक्ति नहीं है। भक्ति-युगीन काव्य स्वयं में एक वैचारिक वैशिष्ट्य तथा तारतम्य को लेकर रचा गया है। मध्ययुगीन काव्य में लौकिक परम्परा का वाग्रह भी दृष्टिगोचर नहीं होता। काव्य में सामूहिक पूजन, वर्णना की प्रवृत्ति के कारण भजन, कीर्तन पद अधिक मात्रा में लिखे जाने लगे। इस प्रवृत्ति के कारण मौखिक परम्परा में स्तरीय रचनाओं को भी लिपिबद्ध करके सुरक्षित करने की परम्परा चल पड़ी। इस समय वाचार्यों में 'ग्राम्यदोष' बूढ़ा जाने लगा, यद्यपि युग-चेतना की प्रवृत्ति के कारण उनकी ओर किसी का अपेक्षित ध्यान नहीं गया। मध्यकालीन साहित्य में लोकगीतों एवं लोक-साहित्य को भी यथासम्भव स्थान मिला। उन्हें सम्मानभी प्राप्त हुआ। अपने-अपने क्षेत्र की लोक कथाओं को प्रान्तीय भाषाओं में रच कर जनसाधारण तक पहुँचाना लेखकों का अभीष्ट था। इस प्रकार इस युग में हिन्दी साहित्य की सर्जनात्मक प्रवृत्ति प्रसर हुई। मध्ययुग काव्य का लेखन स्वरूप भी बदला। विभिन्न प्रतीकों, रूपों, दृष्टान्तों एवं लोकोपलक्ष्यों के माध्यम से सूफी कवियों एवं सन्त कवियों ने अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति को सुसंरित किया। साहित्य का सर्जन लोक-कल्याण की भावना को लेकर अपने पथ पर अग्रसर हुआ यद्यपि उसमें भक्ति भावना प्रमुख रूप में विद्यमान थी।

संक्षेपतः मध्ययुगीन भक्ति साहित्य की सर्जना चार प्रमुख धाराओं के कवियों द्वारा की जा रही थी। पहली धारा निर्गुण भक्ति काव्य की धारा थी जो हिन्दी साहित्य में " निर्गुण सम्प्रदाय " के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस काव्य धारा में अपनी मत के प्रचार स्वरूप लोक सम्प्रदाय बन गये थे, जिनमें कबीर पंथ, सेन पंथ, रैदासी सम्प्रदाय, साधु सम्प्रदाय, दादू पंथ, निरंजनी सम्प्रदाय, मल्लूक पंथ आदि लोक सम्प्रदायों के नाम लिए जा सकते हैं।

दूसरी धारा ने सूफी काव्यधारा के रूप में अपना अस्तित्व प्रतिष्ठापित किया। इनके सम्प्रदायों में चिश्तिया, सुहर्वादिया, कादरिया, नवशर्बदिया आदि प्रमुख हैं। निर्गुण संत कवियों एवं सूफी कवियों के साहित्य में मूल रूप से एक ही अन्तर है। ईश्वर की साधना में निर्गुण सन्तों का दृष्टिकोण जहाँ साधनात्मक है वहाँ सूफी कवियों का दृष्टिकोण भावनात्मक है।

मध्ययुगीन भक्ति शाखा में तीसरी काव्य धारा कृष्ण काव्य धारा के नाम से प्रसिद्ध है। कृष्ण साहित्य के कवि सगुणोपासक एवं अवतारवाद के प्रचारक थे। प्रमुखतः इस काव्य धारा के कवियों ने राम एवं कृष्ण की लीलाओं का विवेचन किया। इस प्रकार वैष्णव विचारधारा के कवियों में भी दो शाखाओं का साहित्य मध्ययुगीन साहित्य की धरोहर है, जिसमें हमें राम एवं कृष्ण से सम्बन्धित साव्य-साहित्य प्राप्त होता है। कृष्ण काव्य के प्रचार के लिए लोक सम्प्रदायों की स्थापना हुई जिनमें श्री सम्प्रदाय, हंस सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदाय, रुद्र-

---

१- डा० रामकुमार वर्मा- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १६७

सम्प्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय, सत्सी सम्प्रदाय , राधावल्लभ सम्प्रदाय आदि मुख्य हैं।

मध्ययुगीन साहित्य में चौथी धारा राम काव्यधारा है जिसमें मुख्य रूप से मनुष्य को उदारतापूर्वक भक्ति का अधिकारी माना गया है। राम भक्ति ने भक्ति का द्वार सभी जाति के व्यक्तियों के लिए खोल दिया । रामभक्ति के प्रतिष्ठाक रामानुज के प्रयास से उनकी शिष्य परम्परा ने रामभक्ति की भावना को देश के कोने-कोने में फैलाया । राम भक्ति धारा के कवियों ने उपासना पद्धति को प्रसुखता देते हुए राम का लोक हितकारी एवं लोला विस्तारक रूप प्रतिष्ठापित किया । राम भक्ति साहित्य की मूलता एवं भावनात्मक अभिव्यक्ति , राम भक्त तुलसी के साहित्य का अवलोकन करने पर ही ज्ञात हो जाता है। तुलसी ने राम भक्ति साहित्य को विशद साहित्यिक उपलब्धियों से अर्कृत किया है। इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत इन शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है। यथा-

“ रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ इन्होंने भक्ति शिरोमणि द्वारा संगठित हुआ है जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ हुआ’।”

अतः काव्य शिल्प, काव्यशास्त्र एवं संगीत-शास्त्र की कसौटी पर मध्ययुगीन भक्ति काव्य एवं समृद्धता एवं बौद्धिकता से युक्त भावनाओं का परिचय देता है।

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास , भा० प्र० अभा,  
काशी, सं० १९६७ पृ० १२१

### प्रमुख भक्त कवियों का बाल-सा हित्य

लोक के समस्त प्रेमात्मक सम्बन्ध भक्ति-भावना को उद्घाटित करने में समर्थ होते हैं। भक्ति का स्थायी भाव ही प्रेम होता है। प्रेम के स्थायी भावों को दृष्टिगत करके ही भक्ति-भावना को अनेक कवियों ने दास्य भक्ति, सख्य भक्ति, वात्सल्य भक्ति एवं मधुरा भक्ति के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि आचार्य परम्परा के अनुसार इतिहासकारों ने रामभक्ति शास्त्रा को अष्टछाप कवियों से पूर्व स्थान दिया है, तथापि हमने विषय-विवेचन को अधिक प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से राम भक्त तथा कृष्ण भक्त कवियों के क्रम में परिवर्तन कर दिया है। अष्टछाप कवि हमारी शोध परिधि के अन्तर्गत नहीं आते, अतः उनका केवल सांकेतिक परिचय देकर हमने विषय-प्रस्तुतिकरण को शृंखलाबद्ध करने पर अधिक ध्यान दिया है।

कृष्ण एवं राम भक्ति कवियों के हृदय में प्रवाहित वात्सल्य की भावना का परिचय उनका काव्य स्वमेय है। वात्सल्य मानव-मन की नैसर्गिक प्रवृत्ति है, किन्तु इसका प्रवाह सगुण रूप के प्रतिष्ठा-पक भक्तों के हृदय को ही उद्बलित करता ही ऐसा नहीं, इसकी स्निग्ध धारा से संत निर्गुणवादी संत अथवा सूफी कवियों का मन भी अकृता नहीं रह पाया। अन्तरङ्गता ही है कि जहाँ एक ओर सगुण भक्तों ने ईश्वर को गुणमय, आकार-युक्त भक्त वत्सल के रूप में स्वीकार किया है वहीं निर्गुण भक्त कवियों ने अपनी कोमल भावना का परिचय परीक्षा रूप से ज्ञान, प्रेम अथवा हठ योग का सहारा लेकर व्यक्त किया है। यद्यपि प्रणयान्वादकता के कारण संत एवं सूफी कवियों की भावनाओं में दाम्पत्य रूप अधिकता से व्यक्त हुआ है। संत काव्य का मूल्य-

कन प्रमुख रूप से कबीर के काव्य के माध्यम से किया जाता है। कबीर ने अपनी रचनाओं में वात्सल्य भावना का परिवर्धन माता-पिता, गुरु, पुत्र, पुत्री, शिष्य आदि के संदर्भ से दिया है। संत कबीर के अतिरिक्त ज्ञानाश्रयी शाखा के संत मल्लूदास, दादूदयाल, गरीबदास, दयाबाई एवं सहजीबाई की रचनाओं में सांकेतिक रूप से गुरु को माध्यम बनाकर वात्सल्य भाव का अपरोक्ष रूप से चित्रण किया है।

यद्यपि केवल नाम के प्रयोग मात्र से किसी काव्य में वात्सल्य की सत्ता को सिद्ध नहीं किया जा सकता तथापि इन स्थलों की अवहेलना करना भी न्यायोचित नहीं होगा। निर्गुण काव्य में संत काव्य के न्यून वात्सल्योचित भाव की ही तरह सूफी काव्य में भी वात्सल्य भावना का कहीं-कहीं परिपाक हुआ है। सूफी कवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा प्रतीक पद्धति के माध्यम से दिखाया है। यद्यपि सूफी काव्य में अनुभूति की तीव्रता के युक्त काव्य सौंदर्य के दर्शन होते हैं, किन्तु ऐसे स्थल गिने-चुने ही हैं, पर हैं मार्मिक। मल्लू मुहम्मद जायसी प्रमुख सूफी कवि हैं। उनकी कृति 'फरमावत' में वात्सल्य भावना का चित्रण हुआ है। वात्सल्य भाव का संयोगात्मक रूप फरमावत में अप्राप्य है, वियोगजन्य वात्सल्य ही इस काव्य में पाया जाता है। वियोग की विरहान्ति में ही वात्सल्य की भावना इस के उत्कर्ष को प्राप्त करने में समर्थ है। जायसी के अतिरिक्त सूफी काव्य के कवि मकनन के काव्य 'मधुमालती' में वात्सल्य से युक्त कुछ चित्रों को प्राप्त किया जा सकता है। 'मधुमालती' काव्य में कवि मकनन ने निःस्वार्थ प्रेम की अत्यन्त सुन्दर व्यञ्जना की है। मधुमालती काव्य में भी फरमावत की तरह वियोगजन्य वात्सल्य के चित्र प्राप्य हैं, जिनके माध्यम से कवि ने 'ग्लानि', अभिलाषा, विषाद और मोह को विविध रूप में चित्रित किया है। 'मधुमालती' ग्रन्थ के 'पैरी सपह' में वात्सल्य

भावना का परिपाक हुआ है।

प्रेममार्गी सूफी कवि उसमान के काव्य 'चित्रावली' में जायसी के ग्रन्थ 'फद्मावत' की कथा का अनुकरण किया गया है। कवि ने वात्सल्य रस का परिपाक अपने काव्य में रूप जायसी की प्रतिच्छाया के रूप में किया है। कवि उसमान ने अपनी भावनाओं को चित्रित करने में कल्पना के वतिके का सहारा लिया है।

नूर मोहम्मद कृत 'इन्द्रावती' में भी मुख्य पात्र के बाल्यकाल का चित्र वर्णित करते समय यथा संभव बाल भावनाओं का प्रतिष्ठापन प्राप्त होता है। यद्यपि यह वर्णन भी वात्सल्य भाव का उद्भवन न होकर केवल कथा के प्रवाह में प्रार्संगिक रूप से, संकेत के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथापि यह वर्णन कवि के हृदय में अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित वात्सल्य-भावना का परिचायक है।

मध्यकालीन भक्ति काव्य में वाष्ट्याप कवियों की भावनाओं की अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इनका काव्य में मानव-मन की कोमल भावनाओं की सूक्ष्माभिव्यक्ति का अविरल प्रवाह है। वाष्ट्याप के कवियों ने बल्लभाचार्य की भाव विचारधारा से प्रभावित होकर श्रीकृष्ण के बालरूप की उपासना करते हुए अपनी मन की स्थिति का चित्रण किया है। अपने काव्य में चित्रित कृष्ण के बाल रूप के माध्यम से वाष्ट्याप कवियों ने उनके साथ अपना भावात्मक एवं वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। वाष्ट्याप कवियों के काव्य में कृष्ण के दो रूप परिलक्षित होते हैं। एक रूप में श्रीकृष्ण को लीला उन्हें सामान्य बालक के समकक्ष प्रतिष्ठापित करती है, तो दूसरे रूप में श्रीकृष्ण की लीला उन्हें ईश्वरीय रूप प्रदान करती है।

## सूरदास

वष्टहाप के प्रमुख कवि सूरदास के ग्रन्थ 'सूरसागर' में यद्यपि सभी रसों का संगोपांग चित्रण हुआ है, तथापि वात्सल्य, शान्त, खं शृंगार रस का वर्णन अपनी चरमोत्कर्ष पर प्राप्य है। सूरसागर के नवम स्कन्ध<sup>१</sup> लगभग सोलह पदों में राम के वात्सल्य चित्रों का वर्णन है जिसमें सूरदास ने श्री राम के जन्मीत्सव, बाललीला खं दशरथ तथा कौशल्या के हृदय का वात्सल्य, वनगमन से उत्पन्न व्यथा खं वन से जाने पर पुत्र को देखने की उत्कंठा का अत्यन्त सजीव चित्रण हुआ है। राम के सम्बन्धित चित्रण को आधार बनाकर कवि सूर ने दशम स्कन्ध में कृष्ण से सम्बन्धित बाल्यकाल की अनुभूति का चित्रण किया है। सूरदास के अनुभूत्यात्मक वर्णनों को मुख्यतः दो श्रेणी में विभाजित किया जाता है : प्रथम वह जिसमें रागात्मक भावाभिव्यक्ति है, द्वितीय वह जिसमें कवि की अनुभूतियों से प्रेरित काल्पनिक चित्रों की अधिकता है। आचार्य शुक्ल ने सूर के काव्यों में अनुभूतिजन्य मनोवृत्ति की प्रमुखता को स्वीकार किया है।

“ प्रेम दशा के भीतर की न जाने कितनी मनोवृत्तियों की व्यंजना गीत-गीतियों के वचनों के द्वारा होती है। ”

वात्सलासक्ति खं सख्यासक्ति का कवि सूर ने अपनी काव्य में अत्यन्त मार्मिक चित्रांकन किया है।

## नन्ददास

कलाकार की दृष्टि से नन्ददास कृत 'रास-

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, भा० प्र० सभा, काशी, १९७५

पंचाव्यायी " प्रधान है। इस काव्य में कवि ने उन स्थलों का परित्याग कर दिया है जिनके वर्णन से कवि के अनुभूति पदा की वाधात लगता है। नन्ददास ने भागवत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन नवीनता के साथ किया है। नन्ददास कृत " पदावली " में वत्सल एवं शृंगारपरक पदावली की विवेचना हुई है। कवि ने पदावली में अनेक उपमानों के माध्यम से वत्सल भाव के सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं।

### चतुर्भुजदास

चतुर्भुजदास ने वात्सल्यानुभूतिजन्य चित्रों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने मातृ हृदय के पुत्र रंजित संयोग वात्सल्य का दर्शन अधिक लिप्त भाव से किया है। यशोदा के हृदय में कृष्ण की वियोग जन्य अवस्था के चित्रण में कवि चतुर्भुजदास का मन नहीं रमा है। चतुर्भुजदास के पदों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्णोत्सव पद जिसके अन्तर्गत कवि ने विभिन्न शीर्षकों से पदों की रचना की है। यथा- जन्म-समय, छठी आदि पदों के माध्यम से कवि की रागात्मक प्रवृत्ति का भास होता है। इसके अतिरिक्त कलेऊ , बाल क्रीड़ा, वैष्णुगान, स्वरूप-वर्णन, आवनी, वासवित, गोदोहन, व्याह प्रसंगों में कवि ने राधा एवं कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण किया है।

### कृतिस्वामी

कृति स्वामी के पदों को अनेक भागों में विभाजित किया जा सकता है। उनमें वर्णोत्सव पदों में मंगलाचरण , राधा



ष्टमी बधाई , रास, गो-क्रीड़ा , श्री गुसाई जी की बधाई , वसन्त, धमार, फाग, फूल मण्डनी, छिड़ोरा, पवित्रा एवं रासी नामक शीर्षक हैं। लीला पदों के शीर्षक इस प्रकार हैं : जगावनी, कलेऊ , शृंगार, क्रीड़ा, हाक, भोजन, व्रत, चर्चा, स्वरूप वर्णन आदि ।

### गो विन्दस्वामी

गो विन्दस्वामी के कृतित्व के अन्तर्गत - वर्षोत्सव, मंगलाचरण, जन्माष्टमी, फलना, राधाष्टमी, दान, वामन-जयन्ती, दशहरा, रास , हटरी, गोवर्धन, धारण, भाई दूज, गोपाष्टमी, प्रबोधिनी , श्री गिरधर जी उत्सव, गुसाई जी उत्सव, वसंत, धमार, डोल, फूल-मण्डनी, नामनवमी, श्री महाप्रभु जी उत्सव, वदाय तृतीया, जलक्रीड़ा, स्नान, एवं वर्षा, छिड़ोरा, पवित्रा, रक्षाबन्धन इत्यादि प्रसंग प्रमुख हैं। जगावनी, कलेऊ, मंगला, शृंगार, मयन, हाक, भोजन, राजभोग, भोग, संध्या, व्यास, शयन, मान, पाँदवों, बाल लीला, उराहनी शीर्षकों में कवि ने श्रीकृष्ण की सेवा उपासना प्रस्तुत की है।

### कृष्णदास

कृष्णदास के पदों का वर्ण्य विषय प्रायः गो विन्दस्वामी की ही तरह ही है।

वर्षोत्सव पदों के अन्तर्गत निम्न लिखित शीर्षकों के पद प्राप्त होते हैं :

मंगलाचरण, जन्म, समय, बधाई, फलना, छठी, राधाष्टमी, बधाई, श्याम, सगाई , दान, प्रसंग, दान-लीला ,

दशहरा, रास, धनतेरस, गो क्रीड़ा, दीपमा लिका, गोवर्धन पूजा, गोवर्धनी-  
धारण, श्री गुंसाई जी की बधाई, वसन्त, धमार, फाग, डोल, फूल-मण्डनी,  
श्री महाश्वर जी की बधाई, वषाय तृतीया, रथ यात्रा, वर्षा ऋतु वर्णन,  
हिंदौरा, पवित्रा, रासी ।

लोला के पदों के अन्तर्गत कवि ने निम्नलिखित  
शीर्षकों के माध्यम से पदों की सर्जना की है :

कलेऊ, मास चौरी, ब्रज भक्त, प्रार्थना,  
परस्पर हास्य, वाक्य, मुरली-हरण, श्रु-स्वरूप वर्णन, श्री स्वामिनी -  
स्वरूप-वर्णन, युगल-स्वरूप-वर्णन, काक, भोजन, वावनी, वासवित, वचन  
मान, परस्पर-मिलन, शय्या, सुरतान्त, सण्डिता, विरह ।

### परमानन्ददास

परमानन्द सागर पदों की रचना इन  
शीर्षकों से की गई है। मंगलाचरण, जन्माष्टमी की बधाई, नन्द-महोत्सव,  
कूठी पूजन, फलना के पद, वन्य प्राशन, कनकदन, नामकरण, कखट, भूमि  
पर बैठाने के पद, देहली-उत्सव, ऊस्त के पद, मृत्तिका मण्डण, माता  
की अभिलाषा, बाल लीला, फाग, उड़ायै के पद, मास-चौरी, बलदेव  
जी के पद, भोजन के लिए वाह्वान, दधि मन्थन, गोदीहन, गोचारण,  
उराहने के पद, श्री राधा जी की बधाई, राजा जी के फलना के पद, दान-  
लीला के पद, विजयादशमी के पद, मुरली के पद, रास समय के पद, रूप -  
चतुर्दशी, धनतेरस के पद, गोवर्धन लीला, इन्द्रमान भंग, गोपाष्टमी के पद, देव-  
प्रबोधिनी के पद, व्याह के पद, वसन्त पंचमी, धमार, राम नौमी, श्री वाचार्य

श्री की बधाई, स्वामिनी श्री के आसक्ति वचन, संस्थिता सूक्त पद, स्वामिनी जी की उत्कृष्टता, मानाफीदन, अभिसार, मथुरागमन, मथुरा प्रवेश, नन्द का गोकुल प्रत्यागमन, गोपि के विरह के पद, भ्रमर गीत, ब्रजभाषा, माहात्म्य, आत्म प्रबोध, हिंडोला, होली, फूल-मण्डनी, वन्नकूट, वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्रों की जन्म बधाइयाँ, ब्रज भक्तों की महिमा, यमुना का माहात्म्य, भगवान का माहात्म्य, आत्मदीनता तथा विनय, दीपमा लिका, रामजन्म ।

### कृष्णादास

यद्यपि वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित वत्सल भावनावी का प्रतिपादन इनके काव्य में स्वाभाविक बाल लीलावी से सम्बन्धित है तथापि उनमें अनुभूति की उस तीव्रता एवं स्फूर्ति का अभाव परिलक्षित होता है जो वष्टक्षाप के अन्य कवियों के काव्य में प्राप्त होता है। जन्माष्टमी की बधाई, बाल-लीला, पालना, कनकदन आदि प्रसंगों का वर्णन कृष्णादास ने बड़ी रीचकता से किया है।

वष्टक्षाप कवियों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के बाल-भाव-वर्णन में जिन कवियों के काव्य को अध्ययन के लिए हमने चुना है, उनमें प्रमुख हैं- रसखान, सूरदास, मदनमोहन, जन भगवान, गंगाबाई, तानसेन, चन्द्रसखी, ब्रजवासीदास, गदाधर भट्ट, बीबी रत्न कुँवरि, नारायण स्वामी, बीरबल, रसिक प्रीतिम, तुलसीदास । मध्यकालीन साहित्य में इन प्रमुख कवियों ने कृष्ण के बाल्यकाल के मनोहारी चित्रों का विविध रूपों से चित्रांकन किया है।

मध्ययुगीन कृष्ण-भक्त कवियों में रसखान भावपूर्ण चित्रण के लिए प्रसिद्ध है। "प्रेमवाटिका" एवं "सुखान रसखान" इनकी

दो प्रसिद्ध रचनारं हैं, जिनके माध्यम से रसखान ने अपनी भावनाओं का सूक्ष्म स्वाभाविक तन्मयता-युक्त सरस चित्रण किया है।

सूरदास मदनमोहन का नाम 'सूरध्वज' कहा जाता है। कृष्ण की बालीचित क्रियाओं के सम्बन्ध में इनके पद 'सुहृत् वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की प्रकाशित संग्रह में प्राप्त होते हैं। इनके बाल्यभाव के पद अल्प संख्या में होते हुए भी प्रशंसनीय हैं। इनके पदों में कुछ पद अप्पारशः सूरदास कृत 'सूरसागर' से मिलते हैं। सूरदास मदनमोहन ने श्रीकृष्ण के बालरूप का वर्णन उनके जन्म एवं उनके कलेऊ के माध्यम से किया है।

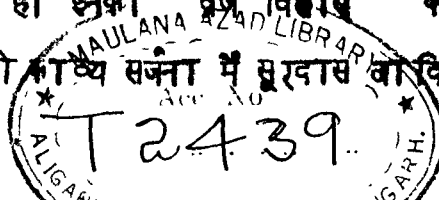
वात्सल्य की भावनाओं का उद्भूत जनुभगवान के सरस पदों में सुलभ है। 'रागकल्पद्रुम' (भाग २) में वर्णित कृष्ण की बाल कृति का वर्णन जनुभगवान की लेखनी के माध्यम से बाल्यभाचार्यों की विचारधारा की अधिक प्राञ्जल रूप प्रदान करती है। रागकल्पद्रुम (भाग २) में ही गंगाबाई ने कृष्ण की बाल-सुलभ कृति से सम्बन्धित पदों की सर्जना की है। गंगाबाई के पद अष्टछाप कवियों की भावाभिव्यक्ति एवं सरसता के सम्पन्न प्रतिष्ठित होते हैं। इनके पदों में कृष्णकी वही स्वाभाविक बाल्यावस्था से सम्बन्धित कथाएँ हैं, जिनका वर्णन अष्टछाप कवियों ने किया है। संगीत सम्राट् तानसेन ने राग-रागिनियों तक ही अपनी प्रतिभा और पहुँच को सीमित नहीं रखा। साहित्य के क्षेत्र में भी उन्हें उच्च कौटि का गौरव प्राप्त है। तानसेन की वात्सल्योचित भावनाओं का परिचय उनके उन कन्दों में प्राप्त होता है, जिनकी सर्जना उन्होंने स्वतन्त्र रूप से फुटकल कन्दों में करके अपनी कलाकार हृदय को तृप्त किया। तानसेन ने अनेक प्रकार से श्रीकृष्ण के धूल-धूसरित तन एवं सहज बाल-सौन्दर्य का चित्रण किया है।

वष्टाफेर कृष्ण-भवत कवयित्रियों में रत्न-कुंवरी सर्व चन्द्रसखी का काव्य भी कृष्ण के बाल वर्णन से समृद्ध है। चन्द्रसखी के पदों में वात्सल्य भावना का परिपाक बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है। बीबी रत्नकुंवरी के पदों में वात्सल्य भावना का चित्रण इस प्रकार हुआ है, मानो तत्कालीन राजनीति के कठोर बन्धनों से मुक्त होकर इनका हृदय श्रीकृष्ण की लीलाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण करके अपनी दबी हुई लालसा को सिंचित कर रहा है।

ब्रजवासीदास ने 'ब्रजविलास' में श्रीकृष्ण जन्म से लेकर भ्रमरगीत प्रसंग तक की घटनाओं को भावात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित कोई भी पदा किंचित् ही इनकी लेखनी से उल्लूता रहा हो। यह हिन्दी का प्रथम कृष्ण काव्य है जिसमें दोहा-चौपाई की प्रबन्ध शैली के माध्यम से कवि ने अपनी हृदयगत भावना को अभिव्यक्त किया है। कृष्ण की बातें इवियाँ वक्त करने के कारण ब्रजवासीदास हमारी शोध परिधि में समाहित किये जा सकते हैं।

गदाधर भट्ट चैतन्य महाप्रभु के एक गण्यमान्य शिष्य थे। यह बड़े भागवत प्रेमी थे। इनका कवि हृदय चैतन्य के रंग में, राधा कृष्ण की मधुर लीला के चित्रण में न उलझकर यशोदा की वत्सल-भावना के प्रवाह में बह गया। अतः वे कृष्ण की विभिन्न लीलाओं से माता यशोदा की मातृ-भावनाओं से सम्बन्धित पदों की ही सर्जना करके अपने कवि हृदय को तृप्त करते रहे। गदाधर भट्ट के सभी पद 'रागकल्पद्रुम' (भाग दो) कीर्ति सङ्घ में प्राप्त होते हैं।

नारायण स्वामी मध्य युग के उत्कृष्ट भावुक कवि माने गये हैं। इनका 'ब्रजविलास' काव्य वात्सल्यभावना से वीर-प्रीत है। इनकी काव्य सर्जना में सुरदास बोधि कवियों की वर्णन पद्धति का



अनुकरण प्रतिभासित होता है। इसमें उत्तर प्रत्युत्तर के माध्यम से कवि ने अनेक मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। कवि ने कृष्ण की सौम्यात्मक बाल-लीलाओं का ही रसपूर्ण चित्रण किया है। इनके काव्य में विरह की वेदना, अश्रुपूर्ण नैत्रों से अविरत जल-प्रवाह आदि का वर्णन अप्राप्य है। अतः यशोदा का वियोग जन्य हृदय काव्य में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। काव्य के सभी पदों का कवि ने विभिन्न राग-रागिनियों में पिरोया है।

बीरबल अकबर दरबार के प्रसिद्ध कवि थे।

इनके विभिन्न कृत्यों में बालक कृष्ण वागिन में खेलते दृष्टिगोचर होते हैं। बीरबल कृष्ण की बाल कवि पर इतने मुग्ध थे कि वे जप-तप को व्यर्थ मानते थे। इनके अनेक कृत्य "अकबरी दरबार के हिन्दी कवि" ग्रंथ में संग्रहीत हैं। बीरबल के वात्सल्य चित्रों में कवि हृदय की कोमलता, स्वाभाविकता एवं रस प्रणता परिब्याप्त है। कहीं-कहीं कवि बीरबल का कथन सौन्दर्य तुलसी की याद दिलाता है।

रसिक प्रीतिम के सभी पदों का सौन्दर्य

"रागकल्पद्रुम" (भाग २) कीर्तन सण्ड में उपलब्ध है। इनके कीर्तनों का अवलीकन करने पर कृष्ण की बाल सुलभ चंचलता एवं उनके सौन्दर्य पर मुग्ध टकटकी लगाये यशोदा में प्रत्येक माता का सहज स्नेही रूप प्रतिबिम्बित होता है।

मध्ययुगीन अष्टाक्षर कृष्ण-भक्ति कवियों

में गौस्वामी तुलसीदास की "कृष्ण गोतावली" प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। यद्यपि तुलसीदास के वाराध्य देव राम थे, तथापि उन्होंने जीवन के सभी वर्गों के साथ-साथ कृष्ण की बाल सुलभ लीलाओं का गान भी किया है। "कृष्ण-

गीतावली में सूर सागर की तरह कृष्णपक्ष वात्सल्य भावना का उतना प्राकृतिक चित्रण नहीं मिलता । कृष्ण की प्राकृतिक बालोचित क्रियाओं के अभाव की ही तरह काव्य में मातृ-हृदय की कोमल अनुभूतियों के नैसर्गिक चित्रों का अभाव भी सटकता है।

इस प्रकार वष्टकाप एवं वष्टकापतर कवियों के वर्ण्य-विषय के प्रासंगिक एवं सांकेतिक उत्प्रेष से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने बालक कृष्ण की लीला कवियों की सहज भावुकता एवं सरसता के साथ प्रस्तुत किया । वष्टकापतर कवियों के बाल-भाव चित्रण की उत्कृष्टता का विवेचन ही प्रस्तुत शोध का लक्ष्य है।

भक्तिकाल की अन्य वैष्णव भक्ति परम्परा में राम भक्तों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा । वष्टकाप में श्याम की सलीली बाल-छटाओं का बड़ी तन्मयता से वर्णन किया , जबकि राम-भक्ति-साहित्य में राम के बाल -रम- लावण्य का चित्रण बड़ी आत्म- विभोरता के साथ किया गया है। कृष्ण भक्त कवियों का हृदय राम के बाल- सौन्दर्य पर मुग्ध हुए बिना न रह सका और दूसरी ओर राम-भक्ति काव्य में कृष्ण की रुचिर बाल-सुषमा के स्फीकारी चित्र भी विरल नहीं हैं। राम-भक्ति शास्त्रा के जिन कवियों को शोधपक्ष अध्ययन के लिए हमने चुना है, उनमें प्रमुख हैं- तुलसीदास, अग्रदास, केशवदास, हरबरस सिंह, कृपा निवास, रामचरणदास ।

स्वामी रामानन्द की धार्मिक विचारधारा का प्रतिपादन देश में उनके विभिन्न शिष्यों के माध्यम से हुआ । इसी परंपरा में तुलसीदास ने अपनी प्रसर चेतना एवं बौद्धिकता के माध्यम से राम-भक्ति का

मर्यादित रूप देश में लोकप्रिय बनाया । विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी जी ने अपनी मधुर वाणी से राम के चरित्र की विभिन्न विशेषताओं के उल्लेख करते हुए उनकी बाल अवस्था का वर्णन किया है। भावात्मकता की दृष्टि से उनके प्रमुख ग्रन्थ 'रामचरित मानस', 'गीतावली' एवं 'कवितावली' हैं । इन तीन ग्रन्थों के अतिरिक्त राम चरित वर्णन के लिए कवि तुलसी ने रामलला नहछू, बरख रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, पार्वती मंगल, वैराग्य सँदीपनी, जानकी मंगल, विनय पत्रिका के माध्यम से राम के विविध मर्यादित रूपों का चित्रण किया है। राम के चरित्र के अतिरिक्त तुलसीदास ने सुर साहित्य से प्रभावित होकर अधिष्ठा गीतावली की सर्जना की थी ।

'रामचरित मानस' में कवि तुलसीदास ने नवीं रसों की अभिव्यक्ति की है। वात्सल्य रस का परिपाक बालकाण्ड एवं वयोव्याकाण्ड में विशेष रूप से प्राप्त होता है। राम के प्रति कौशल्या, दशरथ एवं वयोव्यावासियों का वत्सल भाव तुलसी के हृदय की ही वत्सल-कृतभूति का परिचरक है। तुलसीदास ने राम चरित मानस की सर्जना में राम का मर्यादित रूप प्रमुख रूप से चित्रित किया है। अतः यह कहना न्यायपूर्ण ही होगा कि वे वात्सल्य वर्णन की उन गहराइयों को छूने में उतने सफल नहीं हैं जितने सुरदास ।

सुरदास के कृष्ण लीला सम्बन्धी ग्रन्थ सुर सागर से प्रभावित होकर ही संभवतः तुलसीदास ने गीतावली की सर्जना की । रामचरित के कोमल वृत्तान्तों के चित्र गीतावली में अधिक तल्लीनता से तुलसी ने चित्रित किये हैं। राम का बाल वर्णन गीतावली में अधिक किया है। इनके अन्य ग्रन्थों में बाल वर्णन संक्षेप में प्राप्त होता है।

'कवितावली' के प्रारम्भिक 'बालकाण्ड' में ही कवि ने राम के वात्सल्य रूप का चित्रण किया है। इन तीन ग्रन्थों के अति-



रिक्त तुलसी की वात्सल्य भावना का परिचय उनके अन्यग्रन्थों में अत्यन्त न्यून मात्रा में मिलता है। राम काव्य में वात्सल्य की अभिव्यक्ति उनके सौंदर्य मयी रूप के माध्यम से करने में अग्रदास अग्रणी है। वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी चार पुस्तकों को प्रामाणिक माना है :

- १ - हितोपदेश उपसर्गाँ बावनी
- २ - ध्यान मंजरी
- ३ - रामध्यान मंजरी
- ४ - कुँहलियाँ

‘ ध्यान मंजरी ’ के अन्तर्गत ६६ पद हैं, जिनके माध्यम से कवि अग्रदास ने राम एवं उनके भाइयों के सौंदर्य के परिप्रेष्य में अपनी कोमल भावनाओं का परिचय दिया है। अग्रदास की तरह केशवदास ने अपने काव्य में राम के प्रति वत्सल भाव का परिचय दिया है। केशवदास के सात प्रसिद्ध ग्रन्थ माने गये हैं - ‘विज्ञानगीता’, ‘रामचन्द्रिका’, ‘रत्नबावनी’, ‘जहाँगीर’ जस चन्द्रिका’, ‘बोरसिंह देव चरित्र’, ‘रसिक प्रिया’ एवं ‘कवि प्रिया’। रामचन्द्रिका महाकाव्य में वाचार्य केशव ने राम के चरित्र का विविध रूपों में विश्लेषण किया है। वात्सल्य भाव के वर्णन में कवि केशव ने वियोगजन्य दुःख की विवेचना अधिक की है। वात्सल्य के संयोगात्मक पक्ष के वर्णन में भाव सौंदर्य के स्थान पर इतिवृत्तात्मकता का रूप प्राप्त होता है जिसके फल-स्वरूप ‘रामचन्द्रिका’ मानस की भाँति लोकप्रिय नहीं हो सकी।

हरबल्ल सिंह ने दो रचनाओं की सज्जा की।  
यथा-‘रामायण शतक’ एवं ‘राम रत्नावली’। ‘राम रत्नावली’ ग्रन्थ में

कवि ने रामचन्द्र की बाल्यावस्था, उनके खाने पीने एवं रहन सहन का चित्रांकन किया है। उनकी रचना की मौढ़ता के फलस्वरूप इन्हें सरस, प्रौढ़ एवं सफल कवि माना जाता है। राम के पाँचवें रूप का दर्शन हमें बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचन्द्रोदय' में प्राप्त होता है। पाँचवें अवस्था, वात्सल्य एवं जीवन की मध्य ऐसा होती है। 'रामचन्द्रोदय' काव्य में कवि ने केशव कृत 'रामचन्द्रिका' की शैली का अनुकरण किया है। यह ब्रज भाषा का महाकाव्य है जिसमें रामचन्द्र की किशोरावस्था का चरित चित्रांकित है। रामचन्द्र के विवाह प्रसंग के वर्णन के पश्चात् यह काव्य समाप्त हो जाता है। राम के बाल जीवन से सम्बन्धित कुरु पद कृपानिवास कृत 'समय प्रबन्ध' में भी प्राप्त होता है। कवि ने राम की बाँठ पहर की लीलाओं के चित्रण के संदर्भ में राम की बाललीला का मनोहारी चित्र खींचा है। बाल भाव की अभिव्यक्ति की अपनी लेखनी के माध्यम से रामचरण दास ने भी अभिव्यक्ति किया है। उनकी रचना 'कवितावली रामायण' में राम की बाल भावनाओं का संयोजन है।

### निष्कर्ष

मध्यकाल में दक्षिण से भक्ति लहर के फलस्वरूप विभिन्न सम्प्रदायों के माध्यम से भक्ति की दो धारयाँ- निर्गुण एवं सगुण प्रवाहित हुईं। निर्गुण कवि शिरोमणि कबीर ने ईश्वर के प्रति मानवोपेय सम्बन्धों को व्यक्त करते हुए यदा-कदा वत्सल भावनाओं को व्यक्त किया। इनका ही अनुकरण अन्य निर्गुण कवियों ने किया। मध्ययुगीन सूफी काव्य में वात्सल्य-भावना का प्रतिपादन विशेष पारिवारिक परिवेश में हुआ है। उदाहरणतः पद्मावती ईश्वर का रूप प्रतीति होते हुए भी वात्सल्यगत, मानव-

सुलभ अनुभूति से युक्त दिखाई देती है। सगुण भक्ति काव्य धारा के राम भक्त कवियों ने राम की पर्यायित जीवन के विविध गुणों से परिपूर्ण दिखाकर समाज की जादृश स्वं सदाचार की ओर प्रेरित किया । कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में कृष्ण का वह रूप प्रतिपादित हुआ, जिसमें ईश्वर का बाल-रूप अपने ही अग्न में स्तना परिलक्षित हुआ । कृष्ण के इस रूप की प्रतिष्ठा-पति करने का श्रेय मध्यकालीन अष्टकाप स्वं अष्टकाफर कवियों के काव्य को दिया जाता है।

...

### (स) मध्ययुगीन रीतिकाव्य का स्वरूप

जब मध्यकाल में रीतिकालीन काव्य की प्रतिष्ठा हो रही थी, उस समय भारतवर्ष में विदेशी शासन पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो चुका था । जनमानस बाह्य रूप से जितना शान्त था, अन्तर्में उतना ही कलान्त स्वं उद्विग्न था । जनता मानसिक शान्ति के लिए मटक रही थी । ऐसी स्थिति में तत्कालीन कवियों ने जनमानस की वृत्ति का लाभ उठाया । पुरुष के नैराश्य को अपने काव्य का माध्यम बनाकर उनमें स्फूर्ति का जागरण करने का प्रयत्न किया । उन्होंने नारी को भी साधन के रूप में ग्रहण करके शृंगारक काव्य की सर्जना की । रीतिकालीन कवियों में सामाजिक समन्वय की भावना का अभाव था । इसलिए इन कवियों के काव्य में इस प्रकार की चेतना का प्रायः अभाव है। रीतिकाव्य प्रायः साहित्यशास्त्रपर आधारित

है। यही कारण है रीतिकाव्य<sup>में</sup> उस सर्व कर्तार का प्रयोग अत्यधिक हुआ है। साहित्यशास्त्र का गहन अध्ययन करने वाला व्यक्ति ही रीतिकालीन काव्य का आनन्द लेने में समर्थ हो सकता है।

हिन्दी साहित्य<sup>में</sup> मध्ययुग में साहित्य की दो धारें प्रवाहित हो रही थीं। एक शृंगार रस से परिपूर्ण साहित्य, दूसरा भक्ति-भावना से वीतप्रीत सर्व प्रवाह साहित्य। स्वच्छन्द वृत्ति के कवि भी अपनी भावनाओं के अनुरूप साहित्य की सर्जना कर रहे थे। भक्ति-भावना से वीतप्रीत कवियों के हृदय की ईश्वरीन्मुख कोमल भावनाएँ रीतिकालीन कवियों के काव्य में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती हैं। यद्यपि परिस्थितियों के कारण अपने वाग्दत्ताओं की भावनाओं के अनुरूप काव्य-सर्जना रीतिकालीन कवियों की नियति थी। मुख्यतः इसका यह कारण था कि इन कवियों की जीविकोपार्जन की समस्या का हल तत्कालीन राजाओं के वाग्दत्त से ही मिलता था।

रीतिकालीन काव्य में काव्यानुभूति के तीन पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। वे हैं- बुद्धि, भावना एवं कल्पना। कुछ काव्यशास्त्रियों ने काव्यानुभूति की बुद्धि तथा हृदय इन दो कोटियों में विभाजित किया है। पाश्चात्य विचारकों ने बुद्धि-तत्त्व की प्रथम तथा भाव-तत्त्व की द्वितीय स्थान प्रदान किया है।

मध्यकालीन कवियों में, रीतिकालीन कवियों के वात्सल्य युक्त काव्य का मूल्यांकन करें तो ज्ञात होता है कि उन कवियों की सर्जनात्मक शक्ति कभी बुद्धि-तत्त्व को लेकर सर्जना की ओर उन्मुख हुई

है तो कभी भाव-तत्त्व की ओर। अतः उनके काव्य में इन दोनों तत्त्वों का समावेश प्रायः प्राप्य है। वास्तव में काव्य में भाव-तत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। भाव-तत्त्व की महत्ता का सम्बन्ध कवि के हृदय की कोमल नैसर्गिक भावना से होता है। काव्य में अभिव्यक्त सभी भाव कवि के हृदयगत भाव ही होते हैं। कवि अपनी हृदयगत भावनाओं को कहीं स्वानुभूति के द्वारा और कहीं कल्पना अथवा यथार्थ वस्तुओं, व्यक्तियों के माध्यम से चित्रित करता है। किसी भी काव्य का मूल्यकर्म कवि द्वारा अभिव्यक्त भावों की गहनता, व्यापकता तथा सघनता से ही किया जा सकता है, क्योंकि कवि के भावों की अभिव्यक्त साहित्य में सौन्दर्य का समावेश करती है। कवि का हृदय कब, किस समय, कहाँ, किस वस्तु अथवा व्यक्ति से प्रेरणा पाकर भावुक हो जायेगा, इसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह तो कवि विशेष की मनावृत्ति पर निर्भर करता है। कहीं एक वातावरण किसी पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव डीढ़ता है तो वहीं दूसरे व्यक्ति पर भिन्न प्रकार का। यही कारण है रीति काल में एक ही वातावरण में रहते हुए भी कृष्णापासक कवियों में चाचा हितवृन्दावनदास, ब्रजवासीदास तथा रीतिपुत्र कवियों में बालम, धनानन्द आदि कवियों ने कृष्ण के बाल्यकाल को फलट कर देखने का प्रयास किया है। यद्यपि रीतिकालीन कवियों की मनःस्थिति भक्तिकालीन कवियों के समान नहीं थी जहाँ वे 'भवतन को कहा सकिरी सों काम' कह कर भोगपक्ष प्रवृत्ति के प्रति अपनी उदासीनता का परिचय देते। फिर भी भारतीय परिवेश, संस्कृति की छाया कवियों में स्वाभाविक रूप में विद्यमान थी, अतः कामुकता से युक्त वातावरण में भी इन कवियों ने ऊब कर कभी-कभी ईश्वर का स्मरण भी कर ही लिया है। इसका कारण था रीतिकालीन कवियों के अचेतन मन में भक्ति का भाव। इस भक्ति के भाव से प्रभावित होकर कुछ रीतिकाल के कवियों ने बालकृष्ण का रूप याद किया था, जिसकी प्रसर धारा

वविरल रूप में भक्ति काल से ही बहती आ रही थी। भक्ति का सम्बन्ध वास्था से होता है। यही वास्था कभी-कभी रीतिकालीन कवियों को हंश्वर के बाल-रूप के प्रस्तुतीकरण के लिए प्रेरित करती थी, और उस वातावरण में भी अपनी भक्ति की लालसा की उपेक्षा तत्कालीन कवि नहीं पोता था। वात्सल्य की विकीर्ण करने वाली भावना पायल की हनभुन में ही विलीन हो रही थी। कवि अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने में असमर्थ था। भक्ति-काल के कृष्ण इस युग में आकर कवियों के वर्णन का बहाना मात्र बन गये थे।

वात्सल्य मीवैज्ञानिकों की दृष्टि में एक सिंग है वात्सल्य को जीवन का सर्वव्याप्त व्यक्तित्व अनुभव भी कहा जाता है।

रीतिकाल में शृंगार भावना सर्व शास्त्रीय चर्चा अपने उत्कर्ष पर थी, फिर भी हमें चाचा हितवृन्दाबनदास, ब्रजवासी दास, घनानन्द सर्व आलम का उफार मानना चाहिए, जिनकी लेखनी से बालक कृष्ण का ललित रूप वर्णित हुआ, जिससे संतप्त हृदय को किंचित् शीतलता की अनुभूति हुई। रीतिकाल का कवि भावुक, सहृदय सर्व निपुण था, किन्तु सामयिक परिस्थिति से वशीभूत होकर कवि गण लाचारी की अवस्था में शृंगार पर काव्य की सर्जना कर रहे थे। उपवाद स्वरूप जिन कवियों ने रीतिकाल में वात्सल्य मात्र से युक्त काव्य की सर्जना की है, वह उनकी जन्मजात प्रवृत्ति का ही फल है, जो अनेक विरोध के होते हुए भी स्वतन्त्र रूप से अवश्य प्रस्फुटित होती है। उन प्रवृत्तियों को रोकना असंभव है। इन कवियों में कृष्ण को बाल-म्हन मानकर अपने काव्य की सर्जना की है।

रीतिकाव्य में वात्सल्य के दो रूप प्राप्त होते हैं। कहीं इसे स्वतन्त्र रूप में, कहीं शृंगार के ढाँढ़ में। रीतिकालीन नायिका

नायक के मुख चुम्बन की वृत्ति शिशु-मुख-चुम्बन में आरोपित करके नायक के सन्मुख अपनी मनोभावनाओं को स्पष्ट करती है। बिहारी का यह दोहा भी नायक के कंधर उस पान को लालायित नायिका का मुख-मुख-चुम्बन एक बहाना मात्र ही है :

“बिहंसि बुलाइ बिलोकि उत, प्रौढ़ तिया उस घूमि ।  
फुलकि फसीजति पूत कौ, पिय चूम्यो सुहँ चूमि ॥” १

रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य में जब भी वात्सल्य से युक्त चित्र खींचा है, वहाँ उनकी कामोदीप्ता मनोवृत्ति, चैष्टायें किसी न किसी रूप में कहीं- न - कहीं सूक्ष्म रूप से ही सही, पर स्पष्टतः परिलक्षित हुई हैं। रीतिकालीन कवियों की भक्तिकालीन काव्य की निर्मल धारा में भाव- व्यञ्जकता, भाषा- सौष्ठव तथा गीतात्मक प्रणाली एक धरोहर के रूप में प्राप्त हुई थी, पर उस धरोहर का प्रयोग रीतिकालीन कवियों ने अपने ही ढंग से किया है। भक्तिकाल की यशोदा भी मातृत्व में लीन कृष्ण का मुख चूमती है, पर उन्हें इस मुख्य चुम्बन के लिए अन्य शृंगारिक संयोग का सहारा नहीं लेना पड़ता था। माता यशोदा का मुख स्वाभाविक रूप से श्रीकृष्ण की ओर बढ़ जाता है, यथा-

“मोहन हौं तुम पर वारी ।

कंठ लगाइ लिए, मुख चूमति, सुन्दर श्याम बिहारी ॥” २

रीतिकालीन कवि शैल और वालम का काव्य इस प्रकार के शृंगार का वर्णन करने में अफ़स है। शैल एवं वालम के काव्य में

१- बिहारी : बिहारी रत्नाकर दोहा ६१७

२- सुरदास : सुरसागर , पराग सन्ध पृष्ठ १००६

भारतीय सामाजिक जीवन की सम्मिश्रित भाँकी द्रष्टव्य है। नैतिक उच्चैःस्थता में डूबे रीति युग को चुनौती देते हुए इस कवि दम्पत्ति ने विवाह करके अपने प्रेम का संसार कृष्ण और राम के संसार में डूबी दिया है।

मध्ययुगीन रीतिकालीन काव्य में भाषा का स्वरूप निसरा हुआ पाया जाता है। काव्य में भाषा के प्रति कवियों की सज-गता निरन्तर दिखाई पड़ती है। रीतिकाव्य में ऊहात्मकता एवं अतिशयोक्ति-पूर्ण कथनों का बाहुल्य है। इस युग का काव्य मूलतः सौष्ठववादी तथा शिल्प प्रधान है। हम डा० भगीरथ मिश्र के इस कथन से सहमत हैं कि :

“ इस युग के काव्य में कवि का मूल उद्देश्य अपनी उचित की चमत्कार पूर्ण और प्रभावशाली बनाना था । ”

रीतिकालीन काव्य में संस्कृत , प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। रीतिकालीन कवियों ने बुदेलसण्डी , अवधी तथा पूर्वी शब्दों को भी प्रयोग किया है।

इस युग के कवियों ने अपने काव्य में उत्कृष्टों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। शृंगार रस का प्रयोग इस काल के काव्य में चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है। ब्रजभाषा एवं अवधी का प्रयोग कवियों ने अपनी इच्छानुसार किया, अतः सुव्यवस्थित वाक्य-रचना का इस युग के साहित्य में अभाव पाया जाता है। मध्ययुग के रीतिकाव्य में वीर काव्य एवं शृंगार काव्य की ही सर्जना हुई। भक्ति से भरे जिस साहित्य का अवलोकन हम इस युग के परिप्रिय में करते हैं, वह कवि की दार्शनिक मायुकता का और



मात्र कहा जा सकता है। डा० नगेन्द्र का इस काल के काव्य के विषय में यह मत उचित ही है कि :

“ रीतिकाल के कवियों की भक्ति भी उनकी शृंगारिता का वंग थी। जीवन की वतिशय रसिकता से जब यह लोग घबड़ा उठते हैं तो राधा कृष्ण का यही कुराग उनके धर्म भीरु मन की आश्वासन देता होगा। इस प्रकार भक्ति एक और सामाजिक कवच और दूसरी ओर मान-सिद्धि शरण-भूमि के रूप में उनकी रक्षा करती थी। ”

अतः रीतिकालीन कवियों ने भक्ति का सहारा मनोवैज्ञानिक रूप से तृप्त होने के लिए लिया था।

#### सामान्य परिस्थितियाँ

जिस साहित्य को शृंगार काव्य अथवा रीति-काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है, वह साहित्य तत्कालीन समाज की दर्पण के रूप में प्रतिबिम्बित करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का समय १७००- १६०० संवत् तक माना है। यह वह समय था जब मुगलों का वैभव फतनान्मुख था, वह अपनी राजसी जीजस्विता खो चुका था, तथा विनाश की ओर क्रमशः बढ़ रहा था। साहित्य की सर्जना में प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ प्रत्येक तत्त्व के रूप में कवि अथवा साहित्यकार को योग देती हैं। ये तत्कालीन परिस्थितियाँ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक होती हैं।

#### राजनीतिक परिस्थिति

इस काल से पहले मुगल साम्राज्य अपनी वैभव

१- डा० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता

के नरमीत्कर्ण पर था। कला, साहित्य एवं संगीत के क्षेत्रों में जो कलात्मक रचनाएँ देश समृद्ध थी। इस काल में मुगल राज्य का पतन हो रहा था। देश में जो छोटे-छोटे राजवाड़े फैले हुए थे। शाहजहाँ के पश्चात् इस युग में केन्द्रीय शासन निर्बल हो गया। औरंगजेब की धर्मान्धता ने मुगलकाल की अधिक निर्बल बनाया। अतः जिस अवधिकाल में राजनीतिक दासता का शिकार होते हुए भी भारतीय जनमानस की वाध्यात्मिकता की लौ मन्द नहीं हुई वही इस युग में प्रायः लुप्त हो गई। नादिरशाह और बहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों ने जनजीवन को मानसिक रूप से निर्बल कर दिया था। उसमें नैतिकता का ह्रास हुआ। छोटे-छोटे राजवाड़ों एवं नवाबों की स्वतन्त्रता के कारण मुगलदरबार में वैभव पूर्ण विलासिता का समावेश हुआ। फलस्वरूप विलासिता का वातावरण सम्पूर्ण भारत में फैल गया। सुरा और सुन्दरी की प्रसुता के कारण साहित्य-सर्जना में भी उनकी प्रविष्टि हुई, अतः अविकृत काल के वे कवि जो कृतियाँ में रचकर सत् की प्राप्ति के लिए कविता लिख रहे थे, वे उन राजाओं के आश्रय में रचकर उनकी प्रशंसा करके, मनोरंजन भावों से युक्त कविता की सर्जना करके अधिक से अधिक धन प्राप्त करने का उद्योग करने लगे।

### सामाजिक परिस्थिति

राजनीतिक उथल-पुथल का प्रभाव समाज पर अवश्यभावी होता है। इस काल में औरंगजेब की धार्मिक सहिष्णुता के कारण हिन्दू-मुसलमानों में वैमनस्य की भावना जा गई थी। दोनों ही जातियाँ जर्जर हो रही थीं। सारे समाज में अराजकता का वातावरण था। हिन्दू पादाक्रान्त होने के कारण एवं मुसलमान विलासी जीवन व्यतीत करने के कारण मानसिक रूप से पतित हो चुके थे। रुढ़ियों एवं अशिष्टा का साम्राज्य था।

बाल-विवाह , बहु- विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी । धनी लोगों के नैतिक पतन तथा ग्राम्य-जीवन की शोचनीय अवस्था ने भी शृंगार युक्त कविता की सर्जना में योगदान किया ।

### धार्मिक परिस्थिति

इस काल में धर्म के बाह्य विधानों की प्रशुक्ता थी । धर्म का तात्त्विक विकास अग्रद्व हो गया था । इसीलिए भक्ति काल की धारा ने भी शृंगार का रुस अपनाया । नैसर्गिक प्रतिभा से युक्त कृष्ण भक्त कवियों की शृंगारमयी कविता को राजा- महाराजा के साथ-साथ जनता ने भी पसन्द किया । भक्तिकालीन भगवान् इस काल में सामान्य नायक-नायिका बन गये थे ।

### साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

उत्तर मध्य युग में ब्रजभाषा का चरम एवं समृद्धिशाली रूप प्राप्त होता है। साहित्य के निर्माण के क्षेत्र में इस युग में ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी एवं खड़ी बोली का प्रयोग भी होने लगा । हिन्दी काव्य इस युग में पूर्ण रूपेण परिपक्वता की स्थिति में था । ब्रज-भाषा में ब्रज क्षेत्र से बाहर के लोगों की रुचि के फलस्वरूप विभिन्न भाषाओं का प्रयोग भी होने लगा था । संस्कृत के शब्दों का प्रयोग भी इस युग की साहित्यिक प्रवृत्ति है, तत्सम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। ऐतिहासिक काव्य की शृंगार-भावना की अभिव्यक्ति पर फारसी काव्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। मुगल दरबार एवं मुसलमानों के सम्पर्क के फल-स्वरूप ऐतिहासिक काव्यमें अरबी एवं फारसी शब्दों का प्रयोग बहुतायत से

मिलता है। कवियों ने लोकोचितियाँ एवं मुहावरों के प्रयोग में अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित की है। इस प्रकार एक ओर रीतिकालीन काव्य का परिनिष्ठित रूप दृष्टिगोचर होता है, दूसरी ओर कुछ कवियों की भाषा अत्यन्त दोष-पूर्ण भी है। कुछ कवियों ने शब्दों को मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा है जिसमें भ्रूषण एवं देव कानाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है।

रीतिकालीन काव्य, शैली की दृष्टि से तीन रूप में रचा गया है। इस काल में मुक्तक, गेय एवं प्रबन्ध काव्य मिलते हैं। मुक्तक शैली का अत्यन्त सुन्दर रूप इस युग की विशेषता है। इसका मात्र कारण यह भी था कि इस युग का कवि राज दरबार में इस प्रकार चमत्कारिक ढंग से बात को कहना चाहता था कि लोग 'वाह-वाह' कह उठें।

रीतिकाल में मुख्य रूप से दो प्रकार की रचनाओं की सर्जना हुई - एक रीतिबद्ध दूसरा रीति मुक्त। रीतिबद्ध काव्य में वासना की अत्यन्त विषमता है। रीतिबद्ध काव्य के प्रमुख कवियों में बिहारी, जेव, मतिराम का नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों को रसिक कहा जा सकता है प्रेमी नहीं। रीति मुक्त काव्य में वासना रहित सौन्दर्य विकीर्ण है, जहाँ भक्तिकालीन काव्य के समान उन्मुक्तके दर्शन होते हैं। रीतिबद्ध काव्य में जहाँ राधा-कृष्ण के सुमिरन के बहाने का आवरण है, वहाँ रीतिमुक्त काव्य में जब भी कवि को राधा कृष्ण की स्मृति हुई है, वे बिना इस आवरण के कृष्ण लोला के गायक बन गये हैं। ठाकुर, बीधा, धनानन्द, शैल, बालम आदि कवियों को उपर्युक्त श्रेणियों में रखा जाता है, जिनके काव्य में विरह का विशद एवं मार्मिक चित्रण सूरदास की गोपियाँ की याद दिला देता है।

रीतिकालीन साहित्य में कवि ने रस को काव्य की वात्सा मानकर सर्जना के क्षेत्र में रस की प्रधानता को स्थापित किया। रस को काव्य का मुख्य ंग मानने के फलस्वरूप रीति-ग्रन्थों के मातृक कवियों के काव्य में कर्तारों का सरस एवं हृदयग्राही स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। रीतिकालीन साहित्य में रस के वैभव का रसमय रूप नायिका भेद में समाहित है। रीतिकालीन साहित्य में कर्तार, रस एवं नायिका पर ध्यान केन्द्रित होने से साहित्य के विकास में व्यवधान के फलस्वरूप इसका क्षेत्र संकुचित हो गया। रीतिकालीन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति राधा-कृष्ण की शृंगारमयी लीला का चित्राकन है। साहित्य में लौकिक शृंगार का चरम उत्कर्ष करके इस काल के कवियों ने अपनी कृत्स्न भावनाओं को ही व्यक्त किया है। उन्होंने नारी के ंग-प्रत्यंग का चित्रण करके अपने वाग्जयाताओं एवं अपनी अवृत्त वासना की तुष्टि की। रीतिकालीन कविता जीविकोपार्जन का साधन बन गई थी। डा० नगेन्द्र की विचारधारा अनुसार -

“ शृंगारिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सौपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता एक निष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पदा भी उनकी दृष्टि में बहुत कम वा पाये हैं।<sup>१</sup>”

इस काल के मभित साहित्य का पर्यावलोकन करने पर हमें यत्र-तत्र कवि हृदय की मभित-भावना भी प्राप्त होती है, किन्तु परिस्थितियों के मँफावात में कैसे इन कवियों के सन्मुख अपने वाग्जयाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा ही इनकी नियति थी। नायिका के नख-शिर-वर्णन

-----

१- डा० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास , अष्ट भाग, पृ० १८७

के माध्यमसे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए रीतिकालीन कवियों ने  
 अनेक ग्रन्थों की सर्जना की। यही नहीं शृंगार की भावना को उद्दीप्त करने के  
 लिए रीतिकालीन कवियों ने विस्तार से षट् क्तु वर्णन करके अपने हृदय को  
 तृप्त किया। विरह-भावना को अभिव्यक्त करने के लिए 'बारहमासे' भी  
 इस युग के काव्य में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रीतिकाल में एक सीमित लेखन  
 के फलस्वरूप कवि का ध्यान प्रकृति की अनेक रूपा, जगत् की विभिन्न रहस्या-  
 त्मकता एवं जीवन के अनेक चिन्तन युक्त रहस्यों की ओर से हट गया। कवि  
 को अपनी प्रतिभा के लिए चतुर्मुखी विकास का अवसर कथवा अभिव्यक्ति का  
 माध्यम न मिल सका। इस युग के काव्य में व्याकरणिक दोष भी प्राप्त  
 होते हैं। भाषा में ब्रज एवं अवधी के विभिन्न शब्दों का प्रयोग कवि अपनी  
 इच्छानुसार करते थे, अतः इस युग की भाषा किसी प्रेक्षक विशेष की विश-  
 षता नहीं बताती। भक्ति काल के सदृश कुछ फारसी शब्दों के प्रयोग की  
 प्रवृत्ति भी इस युग के काव्य में दृष्टिगोचर होती है। रीतिकालीन कवियों ने  
 हृन्द, कवित्त एवं सर्वया में ही अपने काव्य की सर्जना की है।

निष्कर्ष

इस युग के साहित्य में शृंगार से युक्त रचनाएँ  
 ही अधिकता से प्राप्त होती हैं। भक्ति की भावना को उद्घाटित करने को  
 यद्यपि कवियों ने 'हरि', 'राधा' इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है, तथापि  
 वे नायक-नायिका को ही हंगित करके लेखनीबद्ध किये गये हैं। इसका एक मात्र  
 कारण तत्कालीन वातावरण एवं आश्रयदाताओं की प्रसन्न करके अपनी जीवि-  
 कोपाजें की प्रवृत्ति कही जा सकती है। रीतिमुक्त काव्य में प्रेम भाव का प्रकटन

वासना रहित शब्दों में बद्ध है। रीति युक्त कवि ने बुद्धि के साथ-साथ हृदय की प्रकाश भी सुनी है। उनकी लेखनी से भक्ति-धारा कठे के कवियों की प्रकाश प्रभावित हुई है। उन्होंने कृष्ण के अलौकिक रूप के उपासक बनकर अपनी काव्य में उनके मोहिनी रूप को चित्रित किया है। इस काल में कुछ कवियों ने काव्यशास्त्र के लक्षणों को पथबद्ध करके उसे लक्ष्य रूप में अपनी रचना में प्रस्तुत किया। कुछ कवियों ने अपनी काव्य सृजना रीति की परिपाटी से ही किया। अतः इस काल में लक्षण एवं लक्ष्य दोनों ही प्रकार के काव्य ग्रंथों की सृजना हुई। शृंगार काव्य के अतिरिक्त इस काल में कुछ उत्कृष्ट वीर काव्य भी प्राप्त होते हैं, जिनमें कवियों ने हिन्दू वीरों की वीरता के सम्बन्ध में सृजना करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया किन्तु अधिकता शृंगार एवं शृंगार से युक्त नारी की मोहिनी मूर्ति की है। प्रसिद्ध विद्वान् डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने इस युग के साहित्य की प्रवृत्ति की ओर इंगित करते हुए लिखा है :

“ नारी की विशेषता उनकी दृष्टि में कुछ नहीं है, वह केवल पुरुष के आकर्षण का केन्द्र मर है।<sup>१</sup>”

...

---

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० ३००

### प्रमुख रीतिकालीन कवियों का बाल- साहित्य

रीतिकालीन साहित्य में प्रमुखतया दो प्रकार का साहित्य उपलब्ध है। आचार्यत्व से परिपूर्ण साहित्य में प्रायः शास्त्र सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। शृंगारिक भावना से युक्त साहित्य रीति काल का प्रमुख आधार है। शृंगारिक भावना की ओर में कवियों ने अपनी जिस प्रवृत्ति का परिचय दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। रीति ग्रन्थकारों के भावुक हृदय की ओर ईंगित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है :

“ रीति ग्रन्थों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे । उसका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगी का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना, अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों ( विशेषतः शृंगार रस ) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए । ”

शृंगार रस से परिपूर्ण हृदय की कोमलता, भावुकता एवं सहृदयता की वात्सल्य के परिप्रेक्ष्य में देखने पर ज्ञात होता है कि इन कवियों की सभी अभिव्यक्ति जीवन की स्फूर्तिगिता नारी और उसके बहिरंग रूप में ही समाहित हो गई थी । वात्सल्य की सुख अनुभूति, जो जीवन में स्थिरता का प्रतिपादन करती है, इनकी लेखनी से यथासंभव अङ्गूठी रही है । बालक की तौतली वाणी सुने का अवसर जहाँ राज दरबारी परिवेश में



असंभव था, वहाँ माता के हृदय की ममतामयी अनुभूति को जानने का प्रयत्न किसी कवि ने नहीं किया। इसका कारण तत्कालीन परिवेश के रंग में रंगी मनोवृत्ति ही कही जा सकती है। रीतिकालीन काव्य में यद्यपि मानव-मन की सभी कोमल भावनाओं का प्रायः अभाव है, तथापि कतिपय उदाहरण प्राप्त होते हैं। यहाँ कहीं कवि हृदय ने वात्सल्य की अभिव्यक्ति शृंगार पर आरोपित करके, और कहीं नैसर्गिक रूप में चित्रित किया है। इन उन्मुख कवियों ने रीति-युग के कुंठित वातावरण में मुक्त भाव से श्रीकृष्ण की बालीचित लीला का चित्रण करके, अपनी भक्ति-युक्त-सात्त्विक मनोवृत्ति का परिचय बढ़ा दिया है।

रीतिकालीन काव्य में जिन कवियों के हृदय में वात्सल्य भावना का उद्वेलन हो रहा था, एवं जिन कवियों के काव्य को हमने शोध का विषय माना है उनमें प्रमुख हैं- बिहारी, केशव, आलम खं शस, धनानंद, नागरीदास, चाचा हित वृन्दावनदास, ब्रजवासीदास, , , , बाबा दीनदयाल गिरि एवं अक्षर अनन्य। इस काल में कुछ ऐसे कवि भी हुए हैं जिनके काव्य में सीधी सरल भाषा में साकेतिक रूप से वात्सल्य भावना का यत्र-तत्र परिपाक हुआ है। इनमें कृपाराम खं गिरिधर कविराज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बिहारी के काव्य में नायिका के हृदय में जब वात्सल्य भावना का उद्रेक होता है, वह अपनी संतान को माध्यम बनाकर नायक के प्रति अपनी वासनात्मक अभिव्यक्ति प्रदर्शित करती है। वह सुत-मुस-चुम्बन का सहारा लेकर अपनी शृंगार भावना को व्यक्त करती है।

आचार्य कवि केशवदास ने काव्य के सभी

शास्त्रीय पद्यों की व्याख्या की है। अपनी प्रसिद्ध रचना "रामचन्द्रिका" महाकाव्य में कवि केशव ने अपनी वात्सल्यजन्य भावनाओं को कहीं स्थलों पर प्रकट किया है। वाल्मर्क स्वर्ग शंस का काव्य रीति युग की मादकता एवं शौली के वातावरण से दूर कृष्ण की बालोचित लीलाओं से परिपूर्ण है। इनके काव्य में माता यशोदा के ममत्व से युक्त हृदय का स्वाभाविक चित्रण भी प्राप्त होता है। धनानंद के काव्य का अवलोकन करने पर कवि की रागात्मक अनुभूति एवं वात्सल्य भावना का चित्र यत्र-तत्र बिसरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। इनके काव्य में अंगन एवं श्रीकृष्ण की तौतली वाणी अत्यन्त स्वाभाविक रूप से चित्रित हुई है।

नागरीदास की रचनाओं में वात्सल्य भावनाओं का परिपाक प्रयत्नवश नहीं बल्कि अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ अभिव्यंजित हुआ है। रीतिकालीन परिवेश में रहते हुए भी नागरीदास ने श्रीकृष्ण की बालोचित लीलाओं का इस प्रकार वर्णन किया है मानो उनका हृदय समसामयिकता की अवहेलना करके भक्ति के भव्य अतीत में मग्न हो गया हो।

बाबा हित वृन्दावन दास जी राधा के अनन्य भक्त थे। इनके काव्य में वात्सल्य भाव का उल्लेख यशोदा के कृष्ण विरह युक्त चित्रों के द्वारा हुआ है। इनके काव्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि भावनाएँ कभी सीमाबद्ध नहीं की जा सकती। उनका नैसर्गिक प्रवाह किसी भी रूप में प्रवादित हो सकता है। इस बात का प्रमाण इनके काव्य में चित्रित यशोदा का हृदय है। ब्रजवासी दास को वात्सल्य भावना का परिचय इनकी रचना "ब्रज-विलास" से प्राप्त होती है। हमने इनके कुछ पद्यों की विवेचना "भक्तिकाल"

के काव्य में भी की है। इतिहासकार ब्रजवाहीदास को रीतिकालीन कवि ही मानते हैं। उनके काव्य पर सुरदास के काव्य की गहन छाप दृष्टिगोचर होती है, अतः भावनात्मक रूप में इनकी विवेचना हमने भक्त कवियों के साथ करते हुए कलात्मक रूप में रीतियुगीन कवियों के काव्य के सम्बन्ध ही उनके काव्य को अपनी शोध का विषय माना है।

कवि मैचित के काव्य 'सुरभी-दानलीला' में कृष्ण की बात लोला के चित्र उपलब्ध होते हैं।

रीतिकालीन कवि ललकदास कृत 'सत्योपा-  
स्थान' में श्री रामचन्द्र जी के बाल्यकाल की सभी घटनाओं का विस्तार-  
पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है।

रीतिकालीन वातावरण में जिस प्रकार कुछ कवियों ने अपनी वात्सल्यपूर्ण भावनाओं को सृष्टि अपने काव्य में की, उसी प्रकार का वात्सल्ययुक्त विवेचन दीनदयाल की कृति 'सुराज-बाग' में प्राप्त होती है। यद्यपि उसमें भावों की गहनता एवं स्वाभाविकता की अपेक्षाकृत अभाव है।

कवि वदर जनन्य ने अपनी कृति 'प्रेम-  
दोफ़ा' के माध्यम से अपनी वात्सल्य भावना को उजागर किया है। वदर  
जनन्य ने भागवत की कथा के आधार पर कृष्ण का बाल-वर्णन किया है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त रीतिकालीन  
कृष्टतियों में सांकेतिक रूप से वात्सल्य भाव का उल्लेख भी मिलता है।

इस प्रकार वात्सल्य भावना के परिप्रेक्ष्य

में रीतियुगीन काव्य का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि कुछ कवियों ने विलासी वातावरण में भी किसी न किसी रूप में वात्सल्य की नैसर्गिक भावनाओं को यत्र-तत्र व्यक्त किया था। रीतिबद्ध कवियों ने जहाँ अपनी भावनाओं को शृंगार के ढाँचे में परिसीमित रखा वहीं रीतिमुक्त कवियों ने वात्सल्य को अभिव्यक्ति की अधिक क्रियाशील और स्वाभाविक रूप प्रदान किया है।

## चतुर्थ अध्याय

### निर्गुण भक्ति-काव्य में बाल-भाव का साहित्यिक

#### अध्ययन

#### भावपदा एवं कला पदा

#### ज्ञान मार्ग ( सत काव्य )

- अ- वात्सल्य के शुद्ध स्वरूप का रूपान्तरण
- आ- वात्सल्य-भावना के परिपाक से वात्सल्य की महत्ता का प्रतिपादन
- इ- बाल-भाव के माध्यम से सत्संग की महिमा का गान
- ई- वात्सल्य के माध्यम से सिद्धान्तों की स्थापना एवं कृषिस्कारों की शुद्धि
- उ- सत-काव्य में बाल-भाव के अन्तर्गत पशु- प्रेम
- ऊ- उलटबांसियों में वात्सल्य-भाव
- ए- वात्सल्य तुष्टि के लिए वात्सल्यपत्र भावना का संकेत

निष्कर्ष

## क्याव ४

### (क) निर्गुण पवित्र काव्य में वात- भाव का साहित्यिक व्ययक्त

#### ज्ञानमार्ग ( सैतकाव्य )

सैतार में मानवतावादी दृष्टिकोण के विकास के साथ-साथ सैतों की विचारधारा का आविर्भाव हुआ है। कव्य-कालीन संपूर्ण पवित्र साहित्य को सैत काव्य के नाम से अभिहित करना उपयुक्त होता है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट एवं एवं उसके स्वरूप में निहित विचारधारा के कतस्वरूप निर्गुण काव्य की आनामयी साक्षा के प्रति-पादक कवियों को सैत के नाम से अभिहित किया जाता है। सैत काव्य में ज्ञान की महत्ता के प्रचार एवं प्रसार के लिए विभिन्न रूप वस्तु जैसे कबीर की, बाबू की, निर्गुणी सम्प्रदाय एवं बाबरी के बादि । कव्यकाल में आनामयी कवियों की विचारधारा से प्रभावित होकर नाक दारा सैत सम्प्रदाय का उद्भव हुआ, जिसके माध्यम से उनके विचारों एवं उनकी बातों का देश में प्रचार किया गया ।

सैत काव्य के द्वारा देश में इस विचारधारा की जनसाधारण तक पहुँचाया गया कि ब्रह्म एक है, ब्रह्म की प्राप्त करने के मार्ग ज्ञान की प्राप्ति के बिना असंभव है। स्वैच्छावादी भावना में प्रेम के गुण को पिताकर सैत कवियों ने अपने काव्य में ब्रह्मी काव्य की दाम्पत्य

भावना का निर्वाह किया। संत कवियों ने भारतीय उपनिषदिक भावना को मानकर ईश्वर को पुरुष माना और मनुष्य को स्त्री। ज्ञानात्रयी शास्त्र ने संत कवियों ने स्वयं को राम की बहिरा मानकर ईश्वर के प्रेम की साधना की है। इस प्रकार जहाँ सगुण भक्त कवियों ने विष्णु, हरि, नारायण और राम के स्वरूप की स्थापना की, वहीं शैतानि उनकी स्थापना निर्गुण रूप में बर्णन ही दे दी। संत काव्य में कबीरदास, बाहू, सुन्दरदास, नामदेव, नानक साहब की विचारधारा को बर्णन में समेटे हुए हैं। प्रस्तुत लोच के तृतीय अध्याय में निर्गुण पथित काव्य की ज्ञानात्रयी शास्त्र के शैतानि की विचारधारा का विश्लेषण करते समय हमने यह उल्लेख किया है कि संत कवियों का निर्गुण ब्रह्म कर्तारिक तेषोमय, कथीम वन्तवर्गिणी एवं सर्वव्यापी है। उनकी साधना की चरम परिणति में पथित का वन्त साधुज्य मात्र हो जाता है। भक्त ब्रह्म में स्थापना ही जाता है। यही मूल संत का तथ्य होता है। शैतानि ने अपने काव्य में ज्ञान से युक्त अनेक विचारों का प्रतिपादन किया है। मानवतावादी दृष्टिकोण के उद्घाटन में प्रत्येक मानव हृदय मन की भावनाओं को उद्भूत करता है। मन की कोमल भावनाएँ भी इनसे व्यूथी नहीं रहती। संत अपने ही घर गृहस्थों के त्याग का विमायती रहा है। कतः स्त्री, पति, पिता, पुत्र सभी सम्बन्ध उनकी दृष्टि में ईश्वर की प्राप्ति में बाधक है। मन की भावना की काव्य का माध्यम बताते समय संत की वाणी में जीवन रूप से ही कहीं-कहीं वात्सल्य की भावना का प्रतिफलन ही गया है। संत काव्य में सगुण कवियों की तरह यद्यपि ईश्वर के वात्सल्य रूप का वर्णन अप्राप्य है, तथापि इस नैसर्गिक, कोमल भावना का संवर्णन उनके काव्य में स्वयंसे ही गया है। मध्यकालीन निर्गुण संत काव्य में प्राप्त वात्सल्य का सांकेतिक परिवर्तन हम दे ही चुके हैं। इस अध्याय में हमने संत काव्य में प्राप्त वात्सल्यवन्त विचारधारा की विस्तृत विवेचना उनकी प्रकृति की माध्यम बनाकर करने का यथा संभव प्रयास किया है। संत काव्य में प्राप्त वात्सल्य साहित्य का विश्लेषण निम्न

प्रकार से किया जा सकता है ।

### (ब) वात्सल्य के शुद्ध स्वरूप का स्पष्टीकरण

संत काव्य में बल्लभ भावना , ममता आदि के बन्धन की सीमा को अस्वीकार करके ही परम ब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है। संत काव्य का मुख्य निरीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि संतों ने स्वयं ही अपने काव्य में वात्सल्य की भावना का स्पष्टीकरण किया है। ज्ञानाश्रमी शास्त्र के प्रमुख संत कबीर ने पिन्व-पिन्व प्रकार से सांसारिक मोह बाध में कैसे दूर व्यक्त की मूर्च्छना की है । इनके उदाहरण देते समय उन्होंने जीवन का में प्राप्त वात्सल्य की स्वाभाविक प्रतीति से प्रेरित होकर ब्रह्म-पिता, पिता, पुत्र आदि ममत्व युक्त शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरणतया-

‘तात मात सुत लोग कूटन में, कृत्यो फिरत बना ।

कहे कबीर राम मणि बोरे, शाहि सकल भ्रमना ॥’ १

कबीरदास जी ने सभी भ्रमों को छोड़कर राम भक्त को और मनुष्य को उन्मुख किया है, क्योंकि उनका विचार है कि यह माया अपने जन्म देने वाली पिता मनु से ही विरोध कर रही है :

‘बाप साव को करे तराई, माया सब मलाली ।’ २

हंसार को पिता मानते हुए कबीर अपने विचारों को उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि हंसार सभी स्वामी पुत्रहीन

१- श्री० पुष्पपाल सिंह : कबीर ग्रन्थावली खंडक पृष्ठ ३६६, पृ० ५१७

२- उपरिष्ठ

२३०, पृ० ४२०



है, कतः उसका जगिन भूता है, वह ममत्व के बन्धन में नहीं पड़ता । और वह माया किधी भी व्यक्तित को प्रभु का पुत्र नहीं माने देती । यथा-

‘सबम निजुती जगिणि भूती, धंजा न देहं तेज ।’ १

शैत कबीरदास जी ने यद्यपि माया पर दोषाहारीषण किया है कि वह माया प्रभु की कृपा को प्राप्त करने में बाधक है तथापि उनका यह भी विचार है पुत्र को ज्ञान प्राप्त करता बाहिर । ज्ञान से प्रसन्न की प्राप्ति होती है। कतः निज कृत में पुत्र ज्ञान सम्पन्न नहीं हुआ, उसकी माँ उसे बन्धन देने से पुत्र ही विधवा क्यों नहीं होनहं । इस प्रकार की उक्ति कह कर कबीरदास जी ने वात्सल्य का रूपान्तर के माध्यम से ममत्व का प्रतिपादन किया है, कबीर ने अपनी भावना को इन शब्दों में व्यक्त किया है :

‘विधि कृति पुत्र न ग्यान विहारी ,

बाकी विधवा काहे न मई महतारी ।।’ २

कबीर की ही तरह शैत कवि गुताल बाबु ने भी अपनी वात्सल्य बन्ध मायों को व्यक्त करते हुए कहा है कि माता, पिता, पुत्र , माई एवं स्त्री सबकी माया के मोह में तू मत रम, अन्यथा तेरा नाश ही होना । उदाहरणतया-

‘मात पिता पुत बन्धु नारी, कृत कृत्य परिवार ।

माया कि कर्षि बंधिमत हूये, दिन में डोहू बीमार ।।’ ३

१- कबीर ग्रन्थावली- प्रो० पुष्पपात सिंह- पृष्ठ ८९ पृ० ३३७

२- उपरिषतु १२५ पृ० ३६०

३- भारतीय काव्य में नारी - प्रो० गजानन तर्मा पृ० ६

गुलाब साहब का कबीरवाद भी की ही तरह विचार है कि धन, पुत्र आदि के मोह में ही फँस रह गये तो कात बबानक ही बाकर मार ले जायेगा । साथ ही इनमें से कोई भी नहीं जायेगा । गुलाब साहब ने अपनी विचारधारा को इन शब्दों में व्यक्त किया है। क्या-

‘धन दारा सुत देति है, काहे बीराई हो ।

कात बबानक मारि है, कौठ संग न जाइ हो ॥’<sup>१</sup>

इस प्रकार कबीर के विचारों के समान ही गुलाब साहब की विचारधारा ब्रह्म के निर्गुण रूप का प्रतिपादन करती है । बाकी बानियाँ का संग्रह विभिन्न ग्रन्थों में फुटकर रूप में प्राप्त होता है। इनके काव्य में यद्यपि वसित सर्व भ्रम की महिमा का प्रतिपादन हुआ है तथापि वात्सानुभव के फल में वात्सल्य की भावना का सहज उद्रेक हुआ है। ईत धरनी बाब के काव्य में भी वात्सल्य भावना के साथ-साथ आध्यात्मिकता की दृष्टि है। इनके काव्य में अन्य, ईत कवियों की अपेक्षा कीमत् भावों का सहज उद्रेक का परिपाक अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। इनके काव्य में वात्सल्य भावना का परिपाक कबीर साहब सर्व गुलाब साहब के सदृश ही हुआ है। इनके विचारानुसार भी माता, पिता, बन्धु आदि माया हैं, मिया हैं। इनका साथ नार दिन ही रहता है। बन्ध में शरीर के साथ ही सब कुछ टूट जाता है, किन्तु मनुष्य मोह के बन्धन में पड़ कर ईश्वर की कृपा ली देता है। उदाहरणतया-

(१) ‘बननी फिनु बन्धु सुता सुत संपति,

मीत महासित सैतत बीरई ॥’

बाबत से न सेन सिधावत,

कॉस मया परि नाक लीहें ॥' १

(२) 'सुत बसि बन्धु नारी, ल सेन दिना बारी ॥' २

(३) 'नहिं नातु पिता परिवारा

नहिं बन्धु सुता सुत पारा ।

वै ली छट छट रहत समाना

धनि लीहें बीता कह बाना ॥' ३

धस्तीदास जी का बिचार है कि ईश्वर

सब स्थान पर विद्यमान रहता है।

निर्गुण काव्य की ज्ञानमयी साक्षा के

संत कवियों ने वात्सल्य भावनानाहीं की ज्ञान पुष्ट चिन्तन के द्वारा उद्-  
घाटित किया है ।

(आ) वात्सल्य भावना के परिपाक से वैराग्य की महत्ता का प्रतिपादन

संत कवियों ने घर संसार को त्यागकर

ईश्वर भक्ति की प्रेरणा दी है। संत धस्तीदास जी वैराग्य की जीर मनुष्य  
को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए पहले उनसे  
नाता तोड़ना चाहिए, बिके प्रति मनुष्य के हृदय में कोमल भावनानाहीं का

१- धस्तीदास - कल्याण संत बाणी की, पृ० २३६

२- गणेशप्रसाद द्विवेदी - धस्तीदास , हिन्दी काव्य संग्रह, पृ० १६२

३- धस्तीदास- कल्याण संत बाणी की, पृ० २३६

संवरण होता है। सेंट धरनीदास की बल्लभ भावना स्वयं उस तपस्व की स्वीकार करती हुई कहती है कि भरे हृदय की धन, सुत रत्न पुत्र नहीं पाते, इसलिए वे मनुष्य में स्वयं वैराग्य की बीर भावना हुई। यथा-

‘ धनि सुत बन धन भवन न पावत,  
धावत मन वैराग्य ॥’ १

कहीं नहीं जब तन की कलत हुए सारा  
संसार देखता है और भी गुवा बनता है उसे कीजा सा जाता है। कैस-

‘ जो तन बरे लहै का देखी,  
गुन निकारत काग रे ।  
पात फिता परिवार सुता सुत,  
बन्धु प्रिया रस त्याग रे ॥’ २

बाबा धरनीदास की की भावाभिप्रेक्षित  
की कृष्णर बानियाँ में प्राप्त होती है। उनकी बानियाँ में साहित्यिकता  
का आवरण होते हुए भी कीमत् भावना के साथ-साथ रहत भावना का रूप  
दृष्टिगोचर होता है।

ज्ञानाश्रयी साक्षा की सेंट परम्परा में दया-  
बाहं का नाम उल्लेखनीय है, जिनके मन्त्र भरे फल अपनी बाल्यस्थ भावना  
के तिर प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सेंट काव्य धारा से प्रभावित होकर निर्गुण ब्रह्म  
की उपासना की है। कहीं-कहीं शृंगार पदाँ की भी अभिव्यक्ति की है। दया-

१- गणेशप्रसाद द्विवेदी- हिन्दी सेंट काव्य संग्रह , धरनीदास पृ० १६२

२- धरनीदास : कल्याण सेंट वाणी के, पृ० २२८

बाहें ने निर्गुण साक्षा के कविर्वा के समान वैराग्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनका विचार है कि जब संसार में सब कुछ नश्वर है। ईश्वर कभी फिटा ही परमा बाज्य है। वे अपने ही अन्तःपन से कहती है कि हे मा तुम्हें माता, पिता सभी छोड़कर चले गये, अब तुम भीजाने की तैयार हो जाओ, क्योंकि जब वा कत ही तुम्हारी भी जाने की बारी है। अतः हे बच्चा तुम ही तैयार हो जाओ। इन परिस्थितियों में ईश्वर बच्चा बाहें ने मोह माया से विलग रहने की विचारधारा का प्रतिपादन किया है तथा जीव को माया से अतिष्ठ रहने के लिए सावधान किया है। यथा-

सात पात तुम्हारे गये, तुम भी बचे बहार।

जाय कास्त में तुम बली, बचा होहु हृदियार ॥ १

बच्चा बाहें की इस उक्ति की पुष्टि ईश्वर बचाना भी के लोक दोहे में प्राप्त होती है। ईश्वर बचाना ईश काव्य धारा के कवि है। उनकी वाणियों में वैराग्य एवं संसार की अपारता से युक्त विमर्श पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। वास्तव्य भाव के माध्यम से उन्होंने यह बताया है कि वास्तविक ज्ञान का प्रथम शोषण होता है। व्यक्ति वास्तविक में कभी भी नहीं सोचता कि उसका यह सुतमय समय अस्थिर और अनित्य है। वास्तविक की ज्ञान अवस्था व्यतीत होने पर, सुखावस्था के भीत जाने पर जब बुरा अवस्था कुछ दिताई पड़ने लगती है। तब अनुभव चेतता है और सोचता है कि अब उसकी जीवन ज्योति तुमने वासी है। अतः अब ईश्वर का स्मरण अपिहित है। यथा-

‘बातापन है बाटही, बूझावा लगबीठ।

कहि बचनना बाबी हरी, प्यारा बलता सुके बीनीया ।।' १

(इ) बाल-भाव के माध्यम से सत्येन की महिला का गान

---

निर्गुण काव्य धारा के प्रतिपादक सैतों ने सत्येनति एवं बाधु रीति का महत्त्व प्रतिपादित किया है। सैत कवियों की विचारधारा के अनुसार बच्ची रीति में रहने से ही मनुष्य का मन पवित्रता की ओर उन्मुख हो जाता है। सत्येन की महिला का गान करते समय बने सैतों ने बाल्यस्य की भावना का उद्घाटन किया है। सत्येन के प्रभाव से बाल्यस्य के मायिक प्रभाव एवं मोह पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है, ऐसा मध्यकालीन सैत कवियों का विचार था। ज्ञानाभयी शास्त्र में सैत सुन्दरदास का स्मृत स्थान है। यद्यपि ज्ञानमार्गी सैतों की परम्परा में बाप कबीर के पश्चात्पत्नी थे तथापि वफे प्रतिमज्ञान तथा परहित्यपूर्ण काव्य रचना के लिए वरुणी कहे जा सकते हैं। यही ऐसे एक मात्र सैत बाधक थे जिन्होंने वफे विपुल साहित्य के माध्यम से वफे प्रसिद्ध निष्कानिष्ठ विचारों एवं भावनाओं को व्यक्त किया। सुन्दरदास जी की बानिबाँ फुटकर काव्य श्रृंखला के रूप में प्राप्त होती हैं। सुन्दरदास का विचार है कि माता, पिता भवई बलन सभी कुछ इस संसार में प्राप्य है, किन्तु सत्येन बल्यन्त कठिनाई से भिस्तता है। यथा-

‘माता पिता सबही मिले, भइया बंधु प्रसंग ।

सुन्दर सुत बारा, दुस्म है सत्येन ।।' २

---

१- बियीनीहरि : सैत सुधा सार पृ. ५, पृ. ५४२

२- उपरिबत्

३. पृ. ६४७

उस संगति की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए सुन्दरदास ने वात्सल्य के ईश्वरीयभूत सात्त्विक रूप का प्रतिपादन किया है। जहाँ स्वयं सुन्दरदास की ईर्ष्या की सेवा करने पर भगवान् की कृपा प्राप्त होगई। सुन्दरदास को ऐसी मान्यता है कि ईश्वर की कृपा प्राप्त होने पर उन्हें यह ज्ञान हो गया कि पुत्र का साधु करने पर उससे स्नेह करने पर उसका पिता स्वयं प्रसन्न हो जाता है, क्योंकि स्वयं ईश की सुन्दरदास ने पुत्र माना है और ईश्वर को पिता। उदाहरण-

‘संतति की सेवा किये, सुन्दर रीति वाप ।  
बाकी पुत्र लहाइये, वति सुत पावे वाप ॥’ १

सुन्दरदास की तरह सहजीवाई की विचार-धारा सभी बात को धृष्ट करती है कि ईश की संगति ही सब तरह से सुत-दायक है। सहजीवाई की बानियाँ में भावनात्मक विघ्नों का बाहुल्य है। अपनी भावों को अभिव्यक्त करने के लिए सहजीवाई ने अनेक कोमल कान्त पदावलिओं की रचना की है। उनकी एकमात्र ग्रन्थ ‘सहज प्रकाश’ ही प्राप्त है, कुछ कुटकर पर ईश बानी संग्रह में भी प्राप्त होती हैं। सहजीवाई ने अपनी बानियों में अल्प निर्गुण सन्तों की तरह गुरु भक्ति के साथ-साथ ईश संगति को प्रसूता की है। सहजीवाई का विचार है कि ईश अपना साधु की तृष्णा बादि रोगों का नाश होने पर सुख प्राप्त होता है। कैस-

‘ना सुत बारा सुत, मस्त, ना सुत भूप भये ।  
बाध सुती सहजी कहे, तृप्ता रोग गये ॥’ २

१- वियोगी हरि - ईश सुधाधार दोहा १० पृ० ६४८

२- .. .. ६ पृ० १८५

संत कवियों ने गुरु की महिमा का गान  
 सर्व पक्षों के पक्ष पर गुरु की महत्ता को अपनी काव्य में प्रसृत रूप से वर्णित  
 किया है। संत कबीर ने गुरु बिहीन मनुष्य की स्थिति बैरया पुत्र के समान  
 बताया है। उनका विचार है कि गुरु के बिना इस संसार में रक्षा कौन है बिना  
 साथ रहा जा सके, क्योंकि बिना गुरु के कोई साथी नहीं। बिना गुरु के  
 मनुष्य की स्थिति जामधारी पिता के पुत्र के समान ही जाती है :

‘गुरु बिना इहि जग कौन परोसा,  
 काके संनि ह्वै रहिये ।  
 गनिका के घर भेटा जाया,  
 पिता नाहि किंच कहिये ॥’ १

इन पंक्तियों में कबीर ने गुरु बिहीन  
 व्यक्ति की तुलना जाम धारी पिता से इसलिये की है, क्योंकि जिस बालक  
 को पिता का नाम ही नहीं प्राप्त होगा, वह पितृ वात्सल्य का, पितृ  
 स्नेह का अधिकारी कैसे हो सकता है। कबीर का तात्पर्य यह है कि कबीर  
 ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बातलकी समाज में सामान्य  
 जीवन-यापन करने के लिए पिता का वात्सल्य भाव अपेक्षित है, अन्यथा उसका  
 जीवन निश्चिन्त जीवन नहीं रह पाता। समाज में उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं  
 हो पाती।

संत काव्य में दादू दयाल के काव्य का विशेष  
 दृष्टि से मूल्यांकन किया जाता है। बाकी काव्य में अन्य निर्गुण सन्त कवियों  
 की ही विचारधारा का प्रतिफल प्राप्त होता है। संत कवियों की ही भाँति



बापों भी सतगुरु की महिमा का वसण्ड मान किया है। बाबू दयाल का विचार है कि यदि माता-पिता न हो तो गुरु का पिता तुल्य वात्सल्य प्राप्त हो जाय तो इस विचार में जीव<sup>की</sup> कल्याण ही जायेगा। बाबू के काव्य में गुरु वात्सल्य का उत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है, जिसमें माता-पिता के काल में गुरु के साथ जीवन व्यतीत करने की इतनी मनीषा का उद्घोष है :

बैजू के माता पिता, हुआ नाहीं कोइ ।

बाबू निरखे पाव सौं, सतगुरु के बटि होइ ॥ १

( ई ) वात्सल्य के माध्यम से सिद्धान्तों की स्थापना एवं सु-संस्कारों

की शुद्धि :

निर्गुण काव्य की ज्ञानाभ्युपेक्षा के सत कवियों ने अपनी सिद्धान्तों की विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से प्रदर्शित किया है। इसके लिए कभी उन्होंने वैराग्य की भावना को माध्यम बनाया है और कभी सांसारिक माया के बन्धन का उदाहरण दिया है। वात्सल्य माय की लीकितता जीवन से सम्बन्धित है, जो जीवन की लीकितता संस्कारी-न्मुक्त हो जाती है, और वह भक्ति का विषय बन जाती है। यह भी सर्व-विदित सत्य है कि जिस हृदय ने संस्वर मिलन में किसी भी प्रकार के रागात्मक सम्बन्धों का त्याग निश्चित रूप से माना हो, वहाँ वात्सल्य की अनुभूति का प्रश्न व्यपक्षित नहीं। वहाँ तो रागात्मक अनुभूतियों के दमन एवं दमन की अपरोक्ष साक्षितिकता होती है। भक्ति के मार्ग पर अपनी भावनाओं के दमन की जाकांक्षा कोई भी भक्त नहीं करता। वह संस्वर के प्रति अपनी भक्ति युक्त भावनाओं के प्रदर्शन के द्वारा ही उस परम सत्ता के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय देता है। ईत काव्य में निर्गुण ब्रह्म की उपासना के फल-

स्वरूप वात्सल्य की भावना का प्रणि स्तुति-भाव प्रेरणा के रूप में उद्घाटित होता है। सेंट कवियों ने पिता, पुत्र के कोमल एवं नैतिक सम्बन्धों की व्यक्ति-कृत सम्बन्धों की व्याख्या अपने हृदय में उठती वस्तु भावना का परिचय दिया है। यथा-

‘मात पिता हुबती भुत बाध,  
सागत है सई वति प्यारी ।  
लोक हुट्ठ्य तरी बित रास्त,  
होइ नहीं बर्तौ कहु न्यारी ॥’ १

सेंट काव्य में नारी के उपात-रूप की वन्दना प्रायः सर्वत्र मिलती है। कुछ स्थलों पर यद्यपि माता के साथ न देने वाली के रूप में व्यक्ति-कृत किया गया है तथापि सेंट हृदय माता के सम्मुख सदैव प्रवृत्त रहा है। उनके हृदय में माता के प्रति सहज, सरल भावना सदैव परिलक्षित होती है। सेंट हुन्दरदास ने सेंटों द्वारा प्रस्तुत उपदेशों की तुलना माता के कोमलपूर्ण सम्बन्ध से की है। उनका विचार है कि सेंटों के उपदेश उस कड़वी बीजाधि के सदृश होते हैं जो कि माता अपने रोगी पुत्रों की मृत्ता के साथ बसता-फुलता कर बीरोग और स्वस्थ करने के लिए देती है। जैसे-

‘ज्याँ बासक के रोग हूँ, बीजाध कटुक न सात ।  
मीठक वस्तु दिताह के, बीजाध प्यावे मात ॥’ २

लेकिन ईश्वर मन्त्र में सेंट हुन्दरदास माता की ममता की बाध मानते हैं। उनके विचारानुसार उन कड़वी त्याग देना

१- गणेश प्रसाद द्विवेदी- हिन्दी सेंट काव्य संग्रह, पृ० १७७

२- डा० गजानन शर्मा- भारतीय काव्य में नारी, पृ० ६३

बाहिए, क्योंकि यह किसी के नहीं होते। माया के बन्धन में जड़ना ही नहीं बाहिए। जब मनुष्य इस नश्वर शरीर को त्याग देता है, तब उसकी जानी मोहान्ध होकर उसे फुहार-फुहार कर, शती पोट-बीट कर रीती है। इस विचारधारा के सुन्दरदास ने इन शब्दों में व्यक्त किया है। उदाहरणतः

‘माता ती फुहार शति, कूटि कूटि रीपती है।

बापू कहत मेरी नंद कहा गयी ॥’ १

उपर्युक्त पद में संत सुन्दरदास जी ने माता-पिता के वात्सल्य की तीव्र व्यंजना की है। माता-पिता पुत्र के विरह में व्याकुल हृदय से रो-रो कर यह कहते हैं कि ‘मेरी नंद कहा गयी’। जबकि वे स्वयं इस तथ्य को जानते हैं कि यह शरीर नश्वर है। वात्सल्य की भावना का हृदय की व्याकुलता का मार्मिक अभिव्यंजन सुन्दरदास के पदों की विशेषता है।

संत कबीर जानाब्रयी ताता के प्रसुप्त स्तम्भ हैं। इनके काव्य में, भक्ति में, भावनाओं के उन्मथन के स्थान पर उनका समस्त उच्छेदन दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि प्रसंग की अनुकूलता के फलस्वरूप भी कबीर हृदय की उन गहराइयों तक नहीं पहुँच सके हैं। जहाँ सगुण भक्त कवियों की भावनाएँ पहुँची हैं तथापि कतिपय पदों में कबीर हृदय की उन नैसर्गिक अनुभूतियों को रोकने में असमर्थ से प्रतीत होते हैं। यही कारण है वे माँ का सहारा लेकर स्वयं को पुत्र के रूप में मानकर परम ब्रह्म की भक्ति का सहारा लेते हैं। वे चाहते हैं कि भगवान् उनके हृदय के दुःख को माता के समान दूर करें :

१- सुन्दरदास - कल्याण संत बाणी की, पृ० २५२

‘हरि जननी में बालक तेरा ।  
 काहे न जीगुण कह्यु मेरा ।  
 कृत अपराध करे दिन केते, जननी के चित् रहै न तेते ।  
 करि गहि कैस करे जो धाता, तज न हेत उतारै माता ।  
 कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी मस्तारी।’

क्यांतु हे ईश्वर आप मेरी माता हैं, मैं आपका  
 वबोध बालक हूँ । आपमेरे सभी अंगुणों की माता के समान ही क्यों नहीं  
 जामा कर देते । बालक दिन में कभी अपराध करता है, किन्तु माता के क्रोध  
 पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ता । बालक माता के कभी केत फड़ता है, कभी  
 हाथ फड़ कर लीजता है। माता अपनी स्नेह भरी गोद से उसे तब भी नहीं  
 उतारती । अपनी बल्लभ भावना की कोमलता की व्यक्त करते हुए कबीरदास  
 जी कहते हैं कि बुद्धि से विचार कर मैं इस बात को कहता हूँ कि यदि बालक  
 दुःखी होता है तो माँ भी बालक के दुःख को देखकर दुःखित रहती है। कबीर  
 जी विचारधारा का विराम स्थल यह नहीं हैं। वे कहते हैं कि माँ के उदर में  
 रहकर यह मानव बार बार दुःख सहता है, किन्तु अपना घिसार के प्रति लीक  
 नष्ट नहीं होता । यथा-

‘जननी बडर बड्वा दुख भारी ,  
 सौ सन्या तहीं गई हमारी ॥ २’

समाज में विषयान वर्ग भेद की लार्छ की  
 बीर ध्यान बाधित करते हुए अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए कबीर-

-----

१- पुष्पपास सिंह- कबीर ग्रन्थावली क १११ पृ० ३५३

२-                   ..                   ..                   २३२ पृ० ४१७

दास जी माँ की ईशित करते हुए कहते हैं कि हमको एक ही तथित मूर्ति जननी ने बन्म दिया है फिर भी वह कौन सा ज्ञान है जिसने वर्ग भेद की लार्ह की उत्पन्न किया है :

‘ एक जननी बन्मा संसार,

कौन ज्ञान ये भये नितारा ॥ १’

इस बात की स्पष्ट करने के परवात् कबीर दास जी उपदेश देते हुए अपनी भावना की प्रकट करते हैं कि मनुष्य तो वास्तव रूप में बन्म धारण करके मातृ गर्भ से बाहर आया है, किन्तु जी मुक्त मीणी है, उन्हें फिर वह क्यों कृत्रिम करने का साहस करता है। उदाहरणतया-

‘ वास्तव हूँ भाग दारे जाया, भग सुगताम हूँ कृटिण

कहाव ॥ २’

कबीरदास जी संसार की मायावी मनीषित्व से दुःखिता हो कर कहते हैं कि हे प्रभु बाप या तो निर्मल पुत्र को पूर्ण रूपण निर्मल कर दे, या फिर सुके मार डालें, क्योंकि मैं तो कलियुग की विनाश वासना के रस से सता हुआ हूँ :

‘ निरक्त भूत त्यों कोरा,

राम मोहि मात्किनि विना कोरा ॥ ३’

कबीर ने माता के प्रति ही अपनी बल्लत भावना का परिचय दिया हो ऐसा नहीं, उन्होंने पिता के प्रति भी अपनी

१- श्री० पुष्पपात सिंह - कबीर ग्रन्थावली पृ० ४१७ पं २३२

२- उपरिखत

५५७ रमणी ४४

३- उपरिखत

५५७ रमणी ४५

वात्सल्यानुभूति का परिचय दिया है। कबीर ने अपनी पत्नी में भगवान् की पिता के समान सद्गुणों का प्रदान करने वाला बताया है। अतः कबीर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि पिता समान ईश्वर हमारी रक्षा करिये। क्या-

‘कहे कबीर बाप राम राया ,  
दुखमति राखहु मेरी ॥ १

• •

‘कहे कबीर बाप री राया ,  
बखई सरनि तुम्हारी जाया ॥ २

कबीरदास जी का विचार है कि वात्सल्य भावना के कारण पिता अपनी पुत्र की सभी छोटों से रक्षा करता है। समाज में एक दूसरे की निन्दा करने वालों की तुलना कबीर ने माँ- पिता से किया है। कबीरदास जी कहते हैं कि निन्दा में माता पिता के समान हैं, जो बन्धु बन्धान्तर के पापों को दूर करने में सहायता करते हैं। निन्दा की निन्दा सुन सुन कर कबीर सोचते हैं कि उनके सभी अवगुणों का नाश हो जायगा, वे सम्पन्न की ओर हगि। कबीरदास ने अपनी वात्सल्यपूर्ण भावना को व्यक्त करते हुए भगवान् के लिए कहाँ ‘पिता हमारे बड़ गोसाईं बीर कहाँ बाप राम सुनि बिनती मोरी’ आदि वाक्यों का प्रयोग किया है।

संत कवि मल्लदास ने अपनी वात्सल्य भावना का परिचय ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना को व्यक्त करके दिया है। उन्होंने ईश्वर को माता रूप में माना है, पिता के समान शिकारी माना है, साथ ही बन्धु के समान प्रिय माना है। संत मल्लदास का विश्वास था

१- प्रो० पुष्पनाथ सिंह - कबीर प्रभावती का २६१ पृ० ४३८

२-

..

..

२५० पृ० ४६३

कि बिना ईश्वर के क्या ईश्वर में भुन्ध ही भुन्ध है :

‘तु ही मात तुहि पिता । तुही हितु बन्धु है ।  
कहा मल्लबास । बिना तुम लुंघ है ॥ १’

संत मल्ल बास जी से मनुष्य की ईश्वर के  
संयुक्त के रूप में देखने का प्रयास किया है। वे कहते हैं कि वही व्यक्ति ईश्वर  
का संयुक्त है जो उसकी भक्ति की कृपय में बसाता है। उदाहरणतया -

‘बाहें पुत संयुक्त है, जो भक्ति कर भित लाय । २

मध्यकालीन संत सखीबाहें के विचारानुसार  
ईश्वर जारी माता के समान हर पाण रत्नाती करतो हैं। जो प्रत्येक दिन अपनी  
गोदी में रत्नकर स्पर्श उधर की बाहें बताती रहती हैं । जैसे-

‘हम कलक तुम मात हमारी । फल फल माहि करी रत्नारी ।  
निसदिन गोदी ही में राखी । हत भित्त बदन भितावन माखी ॥३’

वाल्म रक्षण की भावना से प्रेरित होकर  
सखीबाहें का कहना है कि हमअधीन बालक हैं। वात्सल्य भावना से प्रेरित  
होकर तुम्हारे पालने भिरुक्ने पर भी हम कहीं न जाकर छोटे बालक के समान  
सरक सरक कर तुम्हारे ही पास बाँके :

‘मारी भिरुकी ली नहि बाँके ।  
सरक सरक तुमही पे बाँके ॥ ४’

१- कल्याण : संत बाणी की पृ० २३८

२- कल्याण : संत बाणी की पृ० २३८

३- बियोगी हरि - संत सुधा सार पृ० १६६ चौपाई ७

‘बलदास है सुखी दासी ।

हो रसाक प्रसन्न बचिनासी ॥ ' ९

सहजीवाहं की सब विचारधारा के पीछे एक वात्सल्य भाव है जो उन्हें माता, पिता , बंधु एवं पुत्र गोत्र के रूप में संस्कार में प्राप्त होती है, जो उनकी रक्षा करता है :

‘तू ही मात वीर पिता बन्धु तूही ।

तु ही कृष्ण जात है नील मेरा ।

सुखी धन धाम और भीम हल देह का ।

कैरे बिना कीर कृपा न कैरा ॥ २'

इश्वर मैं अपनी आप्रय की बाकरीता के वसि-  
रित्त सबकोबाहें ने अपनी सात्रक हृदय की बात- सुलभ सब्ब पवित्रता की वीर  
हीगित करते हुट कहा है कि नन्हा बालक यदि राजा के अन्तिः महत्त मैं भी  
बसा जाता है तो कीहें भी स्त्री उधसे परदा नहीं करती । उध बालक की  
लेकर स्त्रियाँ गीद मैं सिताती हैं। जैसे-

‘सहयो नमहा बालका । महसु भूप के बाय ।

नारी पक्ष ना करे । गौदहि गौद स्त्राय ॥'३

सहस्रनाई की विचारों का प्रतिपादन सैत  
 दया बाई के काव्य में प्रतिबिम्बित होता हुआ है। वे बात भाव के सुन्दर रूप  
 निरुद्ध हृदय की स्वांप्सि की रूप में स्वयं की ईश्वर के प्रति समर्पित करना

१- वियोगी हरि : सीता सुधा सार , सक्तीबाई चौधरी ७ पृ० १६६

२-                      "                      "                      पृष्ठ ८ पृष्ठ १६

३- कल्याण : संत वाणी कें, सहजीबाई पृ० २७३



बाहती है। वे उद्बोधना करती है कि पुत्र बाहे कितनी भी छटियाँ करे,  
माता उसका परिचय नहीं करती। उससे कभी विमुख नहीं होती, बैसे-

‘ तास बूझ सुत से परे ।  
सो कहूँ तबि नहिँ देख ।  
पीछा बहुत से गीद मैं ।  
दिन दिन डूनीं देख ॥ १ ’

संत दयाबाई की इस विचारधारा का समर्थन  
संत कर्तुनदास की बानियाँ में प्राप्य है। उदाहरणतः

बालक विरधि न बाणीए निरुपसु तिस दरबार । २

हंस्वर के प्रति कान्धव भाव स्वीकार करने की  
दृष्टि से संत कवि हंस्वर के प्रति कोई न कोई प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित करने  
में सर्वत्र सचेष्ट दिशाई पाते हैं। संसार के वास्तव्यपरक जितने भी सम्बन्ध हैं,  
सभी को माध्यम बनाकर संत कवि हंस्वर को उसी प्रकार प्रसन्न करना चाहता  
है, जिस प्रकार <sup>बालक</sup> अपने विभिन्न क्रिया कलापों से माता पिता को प्रसन्न करता  
है। बालक माता को प्रसन्न करने के लिए माता का कहना माना जाता है। वह  
बात सुनन वजान से माता से कहता है, तुम मेरी सब कुछ हो, मेरा कुछ नहीं।  
वही वजान कर्तुनदास ने अपनी बाणी में उद्धृत किया है। बैसे-

‘ तू मेरा पिता तू है मेरी माता ।  
तू मेरे बीय प्राण सुखदाता ।  
पूत पीणि जिउ बीजिन माता ।

१- डा० गजानन शर्मा- भारतीय काव्य में नारी - दयाबाई पृ० ६३

२- वियोगी हरि - संत सुधा सार संत कर्तुनदास पृ० १३ पृ० ३४६

बीति पीति ननु हिर पिउ नाता ॥ १

मर्यादाहीन संत कवियों में नामदेव की बातियाँ बहुत ही बाहर की दृष्टि से देखी जाती हैं। संत नामदेव का विचार है कि भक्त एवं भगवान् से ऐसा ही स्नेह कुल नाता होता है, जैसा माता का पुत्र से और पुत्र का माता से। यथा-

‘ बेबी प्रीति बालक बहू नाता ।

देवी हरि संतो मम राता ॥ २ ’

इसी प्रकार वे कहते हैं कि वे भगवान् तु मेरा पिता हैं, रक्षक हैं। तुने तो गव के प्राणों की रक्षा पिता के समान की थी। उसे बचाते के लिए तु बँकूण्ड से बाया पा। जैसे-

‘ मेरी बाप माथी तु धन कैसे,

सावलिवा बीहु तराई । २

बँकूण्ड ते बायो तू रे, गव के प्राण उधार्यो ॥ ३

नाम देव माता पिता की ईतान की रक्षा के लिए आवश्यक मानते हैं। उनका कहना है कि माँ नहीं होती, बाप नहीं होता तो हम ही कहाँ से इस शरीर को धारण करते। उदाहरण-

‘ माई न होती बापु न होता, करम न होती काया ।

हम नहि होती, तुम नहि होती, कवन कहाँ ते बाया ॥ ४

१- वियोगी हरि - संत सुधा सार पृ १४ पृ० ३५०

२- “ “ “ “ पृ० ४६ नामदेव

३- “ “ “ “ पृ० ५० नामदेव

४- “ “ “ “ पृ० ६६ बापूदयाल

मन्त्रकाशीन शैत कवियों ने यद्यपि भिन्न भिन्न शब्दों में अपनी कुवलयत वात्सल्य भावना का परिचय दिया है तथापि भाव की दृष्टि से प्रायः सभी ने एक ही विचारधारा का प्रतिपादन किया है और वह है ईश्वर की माता तपसा पिता के रूप में बन्धना । शैत दादू दयाल ने ईश्वर की बप्ता स्वामी तथा स्वयं की उनका केवक माना है। उनकी सम्बन्ध बाँकापा केवल सभी सम्बन्ध से तृप्त नहीं होती । इस सम्बन्ध की अधिक भुङ्गुद बनाने के लिए वे ईश्वर की माता पिता मानकर उसे सभी प्रकार से सहायता करने वाले के रूप में प्रतिष्ठापित करते हैं :

‘माई बाप तू बाँधिब मेरा ,  
भगति हीन मैं केवक तेरा ।  
माता पिता तू कंधा भाई ,  
तुम ही मेरे सजन सहाई ॥’ १

शैत दादू दयाल ने नारी की माता के रूप में जगत का पोषण करने वाली के रूप में चित्रित किया है, जो बालक के रुदन करने पर भी हर तरह से उसे बहला फुसला कर रक्ती है। यदि माता बालक को दूध न दे ती वह किस प्रकार पी रह सकता है और यदि वह दूध नहीं पी सकता है तो बीबित कैसे रह सकता है। जैसे-

‘माता बालक दूध न देवै ,  
सो कैसे कहि पीवै ।  
नृधन का घर जल भुलाना,  
सो कैसे करि जीवै ॥’ २

१- परहराम चतुर्वेदी- दादूदयाल ग्रन्थावली पद १० पृ० ३५०

२- .. .. पद ३ पृ० ३६६

दादू दयाल ने भी अन्य सैत कवियों की तरह माता की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनका विचार है कि माता पुत्र के अपराधी होने पर भी बल्लभ भावना नहीं त्यागती। उदाहरणतया-

‘ माता बहूँ बालक सबै, पुत्र अपराधी होय ।  
कबहुन न होइ बीवतै, मति दूज पावै सोइ ॥ १ ’

सैत दादू दयाल की बानी की प्रतिष्ठाया सैत रणबल की बानियाँ में प्राप्त होती है। सैत रणबल ने भक्ति के प्रभाव सम्बन्धी का वर्णन माता, पिता के वात्सल्य अन्य सम्बन्धी को प्रकट करके विद्वित किया है :

‘ माता भरी सकत , वे बननी बनि बाह ।  
बा रणबल बननी सदै, कासु विचार्य कहाह ॥ २ ’

सैत दरिया साहब के विचार में <sup>नारी</sup> माता-पिता के रूप में पीजण करने वाली है, फिर भी कुछ मुक्त रेश हैं जिन्होंने उसकी दोष लगाया है। जैसे-

‘ नारी बननी जगत की, पास पीस वे पीज ।  
मुरत राम विचार कर ताहि लगावे पीज ॥ ३ ’

उपसृत सैत कवियों के अतिरिक्त सैत बचनना भी ने बल्लभ भावना की दृष्टि में अपनी विचारधारा का परिचय दिया है।

१- परशुराम चतुर्वेदी- दादू दयाल के प्रतिष्ठावली पृष्ठ ३ पृष्ठ ३६६

२- वियोगी हरि : सैत सुधा धार -रणबल की० ३३ पृष्ठ ५२७

३- .. .. दरिया साहब वाली ४ पृष्ठ ११३

उदाहरण-

‘माता पिता का नाम नहीं, तहाँ कियाँ बीर ।  
सो गुण धारा राम बी, बचने लिखा शरीर ॥ १’

(उ) ईतकाव्य में बात- भाव के अन्तर्गत पक्ष- प्रेम

अन्तर्गत में अपनी वात्सल्य भाव का परिपाक पक्ष प्रेम के माध्यम से हुआ है। ईत कबीर ने कहीं कहीं गाय का दृष्टान्त लेकर सीधे की प्रकृति की ओर इंगित किया है। गाय बास लाकर दूध देती है, कि उसका बच्चा पी सके किन्तु बड़हा गाय के पस की धिर मार मार कर दूधता है जिसके फलस्वरूप गाय उसे बलन कर देती है। फिर पशुपुत्र उस दूध को स्वयं निकास कर पी लेता है। यह यह नहीं सोचता कि यह दूध हमारे लिए नहीं है, बल्कि वात्सल्य की भावना का लोप अपने स्वार्थ के लिए कर दिया जाता है। उदाहरण-

‘तिण जरि सुर ही उदित न पीया ,  
मारे दूध बहूँ दीया ।  
बहा बूँत उधो न गया, बंधा बाँधि बिहीही मया ।  
ताका दूध आप हुसि पीया, ग्यानि बिहार कहूँ नहिँ कीया ॥ २’

कबीर के इन बिचारों की मक्ता के परि-  
प्रेम में मल्लकदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि जहाँ गाय जाती है, जहाँ जहाँ उसका बड़हा फिरता है, वही प्रकार जहाँ जहाँ ईत जन होते हैं वही हैं उनमें रमने के लिए जाता हूँ। यथा-

१- वियोगी हरि : ईत सुधा सार- बचाना बी ६० २२ पृ० ५३६

२- पुष्पवात सिंह - कबीर ग्रन्थावली , रमणी ४६ पृ० ५५७

‘वहाँ वहाँ बच्चा फिरे, तहाँ तहाँ फिरे नाय ।

कह फुल बरै सैत कन, तहाँ रमैया जाय’ ॥ १

इतना ही नहीं सबको ने स्वयं को नन्ही  
करी के रूप में देता है, वो संसार को प्यार करती है। यथा-

‘सबको नन्ही बाकरी, प्यार करे संसार’ ॥ २

नामदेव ने पशु के संदर्भ से अपनी कोमल  
भावना का परिचय इन शब्दों में दिया है :

‘नीहि लागति ताता बेती ।

बहरा बिनु गार्हं जीती’ ।

०                      ०

‘पैरे गार का बाझा छूटता ।

का भीलता मात्त छूटता ॥’ ३

#### (ऊ ) उत्कटबाधियों में वात्सल्य भाव

संत काव्य की उत्कटबाधियों में वात्सल्य  
परक शब्दों की प्रयोग दिताई पड़ता है। संतों के काव्य में शब्दों की कहीं  
कहीं कुछ विरोधभूतक शब्दों में व्यवहार किया गया है, जिसके फलस्वरूप  
उनकी उत्कटबाधियों में वात्सल्य की अनुप्राति के स्थान पर रहस्यमय कौतुक  
की भावना बाधित होती है, जैसे कबीर दास जी ने अपनी बानी में कहा है :

‘एक कमम्भा देवारी माई, ठाढ़ा सिंह बरावे गार्ह ।

१- गणेश प्रसाद द्विवेदी- हिन्दी संत काव्य संग्रह पृ० २३८

२- कल्याण - संत बाणी के पृ० २७३

३- वियोगी हरि : संत सुधा सार पृ० ५१

पति पुत पीछे पड़ पाई, बेता के गुरु लागे पाई ॥ १

इसी प्रकार इन उक्तियों की छिन्न वृत्ति-

‘बलि बाई पति उफसी बाई नगर में बाप ।

एक लक्ष्मी देखिया, बिटिया बायीं बाप ॥’ २

कथा

‘बाप का पुत बाप कि जाया, कि पतिव्रत<sup>३</sup> बहिया ॥

कबीर की इन बानियाँ में कहीं कहीं वात्सल्य

सूक्त समूह रहस्यानुभूति के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं ।

(ए) वात्सल्य दृष्टि के लिए वात्सल्यपरक भावना का संकेत

संत काव्य में बाल भाव सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग वात्सल्य दृष्टि के लिए भी किया गया है जिसे संत सूचित कह सकते हैं, जैसे- कबीर ने कहा है कि यदि घर का बेटा ही लोटा और हुस्वरिअ ही बाप तो फिर उसके साथ चतुर व्यक्तित्व भी ठीक नहीं रह सकता । अतः दुर्जन से दूर ही रहना चाहिए । उदाहरण-

घर का पुत ने होइ बायना, ताके संग बड़ी जाइ सियाना ॥४

इसी प्रकार सुन्दरदास जी ने कहा है कि

१- पुष्पपाल सिंह - कबीर ग्रन्थावली पद ११ पृ० २६३

२-        “                               “                               पद १३ पृ० २६२

३-        “                               “                               पद १५८ पृ० ३८८

४-        “                               “                               रमणी ३१ पृ० ५५०

वाल्यावस्था ज्ञान की कस्या होती है। उसमें वात्स कुछ नहीं सीखता और  
उसी तरह बाल्य भीत जाता है। ज्ञानी भी यों ही बीतती है कि लड़ापा  
जा जाता है। धीरे धीरे बीफ़ इसी तरीर कुभ जाता है। जैसे-

‘बाल्य भीतयो पय, जोवन लग्यो है बाहं ,  
जोवन हू बीत , झूठी डोकरे दिसात है ,  
सुन्दर कस्त रेशे दस्त ही बुझि गयो  
तैत घटि गये जैसे बीफ़ बुझात है ॥’<sup>१</sup>

उपसृत पंक्ति में बाल्य की ज्ञान भावना  
का परिपाक है ।

शंत दादू बयात ने नमता के परिप्रेष्य में पुन  
शब्द का प्रारंभिक प्रयोग किया है। उन्होंने नारी के वाञ्छनामय रूप से बचने  
के लिए यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि स्त्री को पत्नी के रूप न  
देकर माता के रूप में देखा जाहिए- यथा

‘माता नारी पुरिष को, पुरिष नारी को पूत ।  
दादू ग्यान बिलारि करि, झाडि गये ज्वधूत ॥’<sup>२</sup>

निष्कर्ष

उपसृत विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता  
है कि मध्ययुगीन निर्गुणवादी संत कवियों ने बाल भाव की परम सात्विक

१- गणेश प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी संत काव्य संग्रह पृ० २५२

२- डा० गजानन शर्मा- पञ्चतन्त्र काव्य में नारी पृ० ६३



एवं साधना पुन विचारधारा के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया है। सन्तों की भाव धारा सर्वत्र बाध तोड़कर बहती दिशाहँ देती है। उन्होंने अपने भावावेग को वात्सल्य की विस्तृत धूमि पर भी प्रकाशित किया है। वे भाव सेतु बांधने में उतना विश्वास नहीं करते थे , जितना कि भाव धारा को सहज मोड़ देने में । कभीतिर छंद काव्य में वास भाव अर्थात् वात्सल्य की उपर्युक्त विविध कोटियों में विभक्त करके अविवक्षित भक्ति का प्रतिपादन किया गया है । ऐसा प्रतीत होता है मानों संतों का निर्गुण ब्रह्म सगुणवादी अष्टशाय कवियों के सदृश फल में आगया है। ब्रह्म के प्रति वास भाव के धरातल पर संतों का आत्म-निवेदन समस्त भाव विभोर कर देता है।

...

(स) सूफी-काव्य

प्रेममार्गी शाखा

व- दिव्य बाल-जन्म के परिप्रेक्ष्य में वात्सल्यानुभूति

वा- वात्सल्य प्रसूत विरह भावना

इ- अभावजन्य आकुलता एवं विकलता

ई- भारतीय संस्कृति एवं लोक कथाओं से प्रेरित

पुत्र अथवा पुत्री की कामना

उ- दिव्य प्रेरणा से वात्सल्य-भाव की चुनौती

ऊ- वात्सल्य-भाव से मुक्त उपदेशात्मक निषेध

ए- अतीत की स्मृतियों में वात्सल्य-भाव का उद्भेद

ऐ- पुत्री की स्नेहानुभूति से प्रेरित वात्सल्य-भाव

### सूफी काव्य

कृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य के हृदय में यह प्रश्न उठता रहा है कि हमारी क्यातु दुरयमान जनतु किसे अनुभूत तपित के द्वारा ईषा तित है। तुन- तुन से मानव हृदय इस रहस्य का उद्घाटन करने के लिए प्रयत्नशील है। इस रहस्य की विज्ञाता का उद्गम स्वतः सूफी मत है जिसका प्रतिष्ठापक ईसा की बारहवीं सताब्दी में हुआ । भारतीय मुनि, महर्षि की भाँति ही सूफी फकीर बरन, बंरान एवं निज बादि देशों में भी प्रकृति की वास्तव्यजनक रहस्यात्फ प्रकृति की देखर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जनतु प्रसमय है। ' एवं तत्त्वैर्द प्रत ' तथा मनुष्य उल्ले मिन्न नहीं है। जब तक मनुष्य की स्वयं अनुभूति नहीं होती, वह प्रकृति के विभिन्न रूपों तथा - धूमि, चन्द्र और वायु की देखर वास्तव्य करता है और इन्हीं की पूजा करने करता है । ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य की वास्या प्रकृति के उपादनों से बटकर प्रत में ही जातो है। वह समदर्शी हो जाता है। वह स्वात्मवाद में विश्वास करने लगता है। परमात्मा के विरह से कभी उसका हृदय व्याकृत हो जाता है और कभी दिव्य मित्तन के उस्तासमय बातावरण में प्रफुल्ल हो जाता है। सांसारिक वस्तुयें उसे नीरस प्रतीत होती हैं। इस समय वह प्रत के प्रेम रस में डूबकर लोक- वस्तोक से विरक्त होकर मन एवं वात्मा दोनों से संन्यास ले लेता है। <sup>दे</sup>दुखों की प्रेरित करता है कि तुम अपने को पहचान कर विषय- वासना को त्याग कर उज्ज्वल रूप धारण करो । इसके लिए तुम साधना करो, साधक बनो । साधक बनने के लिए किसी गुरु का सहारा लो । सूफी काव्य का यही रूप है, जिसका उद्घाटन सूफी कवियों ने अपने काव्य में स्पष्टतः किया है। निर्गुण काव्य धारा के प्रेम मार्ग साहित्य की सूफी काव्य के नाम से अभिहित किया गया है। सभी



सूफी काव्य की कहानियाँ भारतीय परिवेश में बनीं या ऐसी कहानियों की प्रतिष्ठाया होते हुए भी ईश्वरी-मुक्ती हैं। वे मनुष्य के निर्गुण ब्रह्म की भावित की प्रेरणा देती हैं। सूफी काव्य में वर्णित नायिका ईश्वर का रूप है। ईश्वर की प्राप्ति करने का प्रयत्न करने वाला नायक साधक कहा जाता है, जो अपनी प्रेरिका की प्राप्ति करने का निरन्तर प्रयास करता है और अन्त में सफल हो जाता है। सूफी काव्य <sup>अर्थपूर्ण</sup> सरल लोक कथाओं की ईश्वरी-मुक्त भावना ने भारतीय जन मानस के हृदय को प्रभावित कर दिया ; क्योंकि सूफी कवियों के सभी कथा-वृत्त पर वेदान्त का भी गहरा प्रभाव था । वैसाकि डा० रामकुमार वर्मा का विचार है :

“ जब सूफी मत भारत भूमि पर आया तब वह यहाँ की वेदान्त सम्बन्धी विचारधारा से प्रभावित हुआ । उस प्रभाव की सूफी धर्म के सभी समर्थक स्वीकार करते हैं । ”

हिन्दी एवं हिन्दीतिर वात्स्यानक सूफी काव्य पर स्पष्टतः स्त्री पुरुष प्रेम का गहरा रंग दिखाई देता है। वहाँ प्रेम पथ की बाधाओं, बाधुताओं तथा विरक्तताओं के मार्मिक चित्र पाठक अपना प्रीति के मन में निरन्तर टीसते रहते हैं। सूफी काव्य की कहानियों में वात्सल्य भाव का परिपाक भौतिक एवं पारिवारिक परिवेश में हुआ है । यद्यपि कारखी पद्धति में वर्णित इन कहानियों में रागात्मक क्षुब्धतियों से उत्पन्न वेदना का कोई महत्त्व नहीं है तथापि लौकिक कथाओं के आधार पर रचित होने से इनका अत्यधिक महत्त्व है। सूफी काव्य में वात्सल्य चित्रण में संयोग पदा के स्थान पर वियोग की तदुपमा चित्रण में संयोग पदा के स्थान पर वियोग की तदुपमा के अधिक चित्र परिलक्षित होते हैं। कहानी का नायक भी किसी माता

१- डा० राम कुमार वर्मा- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

का पुत्र है। जीवन के पीछे सुखों का उन्मीलन उसकी दैनिक परिचर्या है। अतः जब माँ उसकी कन्यात्म के कठोर मार्ग पर अग्रसर होता देखती है तो उसका मातृ-हृदय ही नहीं, सभी परिवारका का हृदय अन्वयन करता है।

सूफी काव्य की सर्वोच्च शक्ति पद्यति पर हुई। अतः पारिवारिक जीवन में वात्सल्य का परिपाक जीवन की अनुप्राणित करने में सफल नहीं है। सूफी काव्य में वात्सल्य की नैसर्गिकता, तीव्रता तथा अनुप्राणितव्यता के दर्शन कतिपय स्थलों पर ही प्राप्त होते हैं। प्रकृति की प्रत्यक्ष-वैतना प्रकटन की क्रिया ही हमारे भारतीय परिवेश में कन्या की अन्तर्गत नहीं मानते हैं। हमारी मान्यताओं में कन्या की दूसरे घर की लीला के रूप में स्वीकार करती हैं। उसे पत्नीय सम्पत्ति मानते हैं। पुत्र के जन्म को अपने परिवार की परम्परा को आगे बढ़ाने वाला माना जाता है। सूफी काव्य में कन्या ईश्वर के रूप में प्रस्तुत है। अतः सूफी काव्य के कथानकों में राजा के गृह में कन्या के जन्म की कहानी अधिक वर्णित हैं।

#### (ब) दिव्य वात्सल्य के परिशिष्ट में वात्सल्य की अनुप्राणित

जायसी का काव्य 'फद्मावत' सूफी भावना का अमृत ग्रन्थ है। इस काव्य में सर्वप्रथम जायसी ने बालिका फद्मावती के जन्म के समय का वातावरण चित्रित करके बालिका का दिव्य रूप वर्णित किया है, जिसे कवि की ईश्वर के प्रति वात्सल्यपूर्ण दृष्टि भी कही जा सकती है, जो निर्गुण होते हुए भी लौकिक कला तक का आधार लेकर फद्मावती के जन्म के माध्यम से चित्रित की गई है। कवि की दृष्टि में कन्या के जन्म के समय ऐसा प्रतीत होता था मानों सूर्य की किरणें फाट ही गई हों। यथा-

‘कहीं रूप भये कन्या जेहि सरि हूव न कोई ।  
धनि सो देख रूपता वहाँ काम अस होई ॥’ १

बायसी के हृदय की वात्सल्य भावना हर्ष के संवरण संचारी मात्र से परिपूर्ण है। उनके हृदय में हर्ष का बलिदान है कि ऐसा देश जिसकी कथा <sup>मेरे</sup> कही है वहाँ एक दिव्य लौकिक रूप सम्पन्न कन्या का जन्म हुआ है।

जायसी की तरह सुफी कवि नूर सुहम्पद ने 'इन्द्रावतों' महाकाव्य में पुत्र जन्म के समय पिता के हृदय की सहज वात्सल्य भावना का सटीक वर्णन किया है। नूर सुहम्पद की विचारधारा के अनुसार पुत्र जन्म होने पर घर में उजाला ही जाता है। धन स्वर्ग सभी की प्यार होती है। सभी व्यक्ति इन दोनों की कामना करते हैं। काहिलजर के राजकुमार राज-कुंवर के जन्म के शुभ अवसर पर गानों की मंगल गान गूंज उठते हैं। राजा के हृदय में भी उस समय सुख का संचार ही रहा है :

तैहि पर पुत्र सीन्ह क्वतारा । दीफ सोभा पर लंबियारा ॥

[illegible]

१- डा० पाता प्रसाद गुप्त- फरमावत - बन्धु सण्ड की० ५१ पृ० ४४





की तीव्र अभिव्यंजना उपलब्ध है। उनके हृदय की तड़प सामान्य माता वधवा पिता के हृदय के ही सदृश है जिसका बालक गृह को त्याग कर सदैव के लिए ही विदेश जा रहा हो। सुखी काव्य<sup>में</sup> माता के हृदय की तड़प साधनात्मक लक्ष्य की प्राप्ति में समाहित है।

#### (ब) वात्सल्य प्रभूत विरह भावना

वायसी कृत 'पद्मावती' में पुत्र के विहीन की कसम माता के हृदय को विह्वल कर देती है। रतनसेन साधक पद्मावती हंस्वर के रूप का वर्णन हीरामन तौते ( सद्गुरु ) से सुनकर उसके प्रेम में इतना अधिक विह्वल हो जाता है कि सभी भौतिक सुखों को त्याग करने देता है। पुत्र के द्वारा सभी स्नेह सम्बन्ध, भौतिक सुखों को त्यागकर जाने के निश्चय की घुमना जब रतनसेन की माता को प्राप्त होती है तब उसका हृदय पुत्र वियोग की तड़प से कराह उठता है। मातृ-हृदय की वात्सल्य भावना का परिपाक सैनारी भावों एवं अनुभावों के माध्यम से योगी लण्ड में हुआ है। पुत्र के भविष्य की विपत्तियों की आशंका, उस आशंका से उत्पन्न विचार एवं चिंता आदि सैनारी भाव माता के हृदय में पुत्र के प्रति पक्का का संवर्णन करते हैं। वह सोचने लगती है कि उसका झलतीला पुत्र जिसका जीवन सुख, वैभव, एवं परिवार के स्नेह सम्बन्धियों के बीच गुजरा है, वह किस प्रकार योगी बनकर जगत के कष्टप्रद जीवन की जीर्णोद्धार करेगा, किस तरह भटकता रहेगा। पुत्र के कष्ट का अनुभव करके माता का हृदय पुत्र से कह उठता है कि वह कष्टप्रद मार्ग का अनुसरण न करे। यथा-

<sup>6</sup> बैरसह नव तस सन्धि पिहारी ।

राज झंझि बनि होहु पितारी ।।

नित बँदन लागे जेहि देहा ।

सो तन देहु मरव जव लेहा ॥ १

माता का हृदय बालक रत्नलेन की बाल्यकास की उन सभी बातों की याद करता है। वह सोचने लगती है कि पुत्र को पालने में उसने कितने ममत्व भरे साधनों की गम्भीर साधना की है। वेदना के बाधिये के फलस्वरूप माता के हृदय में चिन्ता एवं स्मृति का दि सँवारी भावों का प्रवाह उठता है। वह विकसत होकर पुत्र से कहने लगती है कि तुम्हें सदैव राजसी भोग ही भोगे हैं, अतः तुम किस प्रकार तप तथा योग साधना करोगे। तुम किसी प्रकार बिना ज्ञाया के रक्कर धूप की सहाये और कैसे तुम्हें कुम्भी पर नौद बाधेगी। किस तरह तुम कपली बीडोगे और किस तरह तुम रुता भूता कृष्टा लावोगे। तुम्हारे ही प्रकाश से यह राज पाट, सैन्यदल तुम्हीं से प्रकाशमान है। तुम यहाँ रक्कर भोग का वानन्द करो। यथा-

सब दिन रहैउ करत तुम भोगू ।

सो कैसे साधव तप जोगू ।

कैसे धूप सहव बिनु झाडाँ ।

कैसे नौद परिहि भुईं माहाँ ।

कैसे बीडव काविरि कथा ।

कैसे पाउँ नलव तुम्ह पैया ॥

कैसे सहव स्निहि स्नि भुता ।

कैसे सारव कृष्टा रुता ।

राजपाट दर परि गह सब तुम्ह सौं उजियार ॥

बैठि भोग रस मानहु कै न नलहु बीधियार ॥ २

१- डा० माता प्रसाद गुप्त- फरमावत - बीसी तण्ड पु० ११६

२-उपरिबत्

पु० ११६

‘पद्मावत’ में चित्रित मातृ विरह साधारण माता के हृदय की फाँकी है। रावमाता तो क्या गरीब माता भी पुत्र की विपत्ति की भावी वार्त्ता से परमाहत हो जाती है। उसका हृदय पुत्र की कुल-तता की कामना प्रतिपादित करता है। माता अपनी हृदय की आकांक्षाओं की परिपूर्ति अपनी संतान में देखती है। वह माता की वृद्धावस्था का सहारा होता है। जब सहारा दृष्टिपथ से हटा हो जाय तो माता ही नहीं किसी भी पारिवारिक अथवा जातीय-जन का हृदय विचलित हो जायेगा। उपर्युक्त औपाद्यों में उत्कर्ष योजना के अभाव में भी मातृ हृदय की वात्सल्योचित भाव के परिप्रेष्य में, जायसी ने नारी की संपूर्णता को चित्रित किया है। जायसी ने माता के द्वारा पुत्र की विभिन्न संकटों में संचित करते हुए मनोवैज्ञानिक रूप से मातृ हृदय की सुन्दर फाँकी प्रस्तुत की है जिसमें पुत्र के कल्याण की भावना बलीकृत हो रही है।

#### (४) अनावश्यक आकृता एवं विकृता

विरह भावना की अभिव्यक्ति मीरन की कृति ‘मधु मातली’ में अत्यन्त विकृत रूप से वर्णित है। ‘पद्मावत’ में जहाँ रतनसेन की माता पुत्र के भावी कष्ट साध्य जीवन से विकृत है, वहाँ पेंडी तण्ड में मधुमातली की माता रूप मीररी पुत्री की निर्लज्जता के कारण क्रोध में आकर तप देकर उसने पेंडी का दिया है और उसके पश्चात् स्वयं पश्चाताप की अग्नि में जलती हुई, ग्लानि से मरी घर-घर घूमती है। मीरन ने इस विकृता का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूप में किया है। पुत्री की अनुपस्थिति में माता के हृदयगत सैगरी भाव, विन्नाद, ग्लानि तथा कु म्पित कर मातृ हृदय की वात्सल्य भावना का परिचय देते हैं। यथा-

‘स्र नम उठि बेंत धाई , पैरी रूप पैत नहि पाई ।

पीनहु जाहि बधिक उहि भागी, बहुत किया हाथ न लाई ।

रूप मैजरी म पस्तानी, कहसि कहा मैं कीन्हा सयानो ।

‘माता फिता तेहि पुत्री कात, रोइ रोइ भये जैत ।

पुत्री नैन जो कार तोहि किनु, रोइ रोइ कीन्हा सेत ॥१

‘मधुमास्तुती ’ में पुत्री के अभाव से उत्पन्न

विकसता के वर्णन में जहाँ परमात्मा की भावना का समावेश है, वहाँ सुफली  
 के वि उद्यमान कृत ‘चित्रावली ’ में चन्द्र के अभाव की व्यंजना प्राकृतिक रूप  
 में प्राप्य है। ‘चित्रावली ’ काव्य का धनीधर पैर निःसंतान है। नेपाल  
 नरेश राजा लक्ष्मी की उन पर अाध कृपा है। सभी नीतिक सुर्तों के होते हुए  
 भी पुत्र के अभाव से उनका हृदय व्यथित है। वे प्रत्येक क्षण इस अभाव की  
 हृदयंगम करते हैं। उन्हें पुत्र के अभाव में लक्ष्मी का सुत भी गौण प्रतीत होता  
 है। वे कहते हैं कि एक संतान के बिना उनको राज भवन में अंधारा दृष्टिगोचर  
 होता है। चिन्ता के फलस्वरूप राजा का राजकाज में मन नहीं लगता । वे  
 सोचने लगते हैं कि यह जग पानी के बुलबुले के सदृश है, जो एक बार इस जग  
 से गया वह फिर नहीं आता । कल जब यह शरीर नष्ट हो जायेगा तो कोई  
 भरा नाम भी नहीं लेने वाला नहीं होगा । इस प्रकार अभावजन्य दुःख से इस  
 दुःख में राजा का हृदय इतना डूबित हो जाता है कि वे अपना राज पाट  
 सब कुछ छोड़ने को तत्पर हो जाते हैं। उदाहरण-

‘अधम हैम जो लक्ष्मी, पैत जोइ वपार ।

एक दीप जैति बिना, राज भवन बंधियार ॥

०

०

‘सुत चिन्ता राजा नित माहीं । राज काज फा भावें नाहीं ।’ १

०

०

‘यह काज फा चानी कर धावा । जो कहुना सो बहुरि न वावा ।  
काल्हि यह तन होई कारा । कोऊ नाडि नहिं लैवहारा ।’ २

०

०

‘राज पाठ धन देस सुत, सुत कितु कौन काज ।  
जब सब लहे राज तुम, लेतु वहाँ शिवराज ।।’ ३

राजा के हृदय में जिस आवबन्धन्य चिन्ता एवं वाकृतता के दर्शन होते हैं। उससे वात्सल्य एवं चिन्ता वादि सैगरी भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इन्हीं स्थायी भावों की उपस्थिति में राजा के हृदय में वात्सल्य ग्लानि उत्पन्न होती है, जिसके फलस्वरूप निर्विद स्थायी भाव भी उत्पन्न होता है और राजा वैराग्य की स्थिति की स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाता ।

(ई) भारतीय संस्कृति एवं लोक कथाओं से प्रेरित पुत्र जन्मा पुत्री की कामना

भारतीय संस्कृति में मोक्ष की प्राप्ति पुत्र के द्वारा ही संभव है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि पुत्र की पुत्र नामक नरक से ब्राह्मण देने वाला समझा गया है और कन्या की उसके विपरीत भारतीय समाज में संतान की फल प्रतिष्ठा नहीं मिली है। वस्तुतः कन्या दुसरे गृह की समृद्धि की बीतक है जबकि पुत्र अपने परिवार की समृद्धि को बढ़ाने वाला है ।

१- उसमान - निद्रावली सुजान सण्ड दी० १ पृ० ६

२- .. .. २ पृ० १०

३- .. .. २ पृ० १०

क्तः वह परिवार का वांछा केन्द्र माना जाता है। भारतीयता की कथाओं में  
 उनके प्रकार से इस उचित की चित्रित किया गया है। सुफी कवि भी भारतीय  
 जनमानस की मानसिक प्रकृति से जुड़े हुए थे। भारतीय संस्कृति उनके कथानकों  
 का एक केंद्र थी। लोक कथाओं में लोक भारतीय राजाओं द्वारा संतान प्राप्ति  
 के लिए भगवान् शंकर की तपस्या का वर्णन चित्रित है। यदि पुत्र न हो तो राजा  
 पुत्री की ही आकांक्षा करता है, किन्तु वह निःसंतान न रह सके। कम से कम  
 कन्या दान का ही पुण्य जीवन की सुख प्रदान कर सकने में सक्षम हो सके। यह  
 वात्सल्यमयी उदार भावना का पूर्वाभास कहा जायेगा। भारतीय संस्कृति में  
 आर्य विवाह क्या आदर्श विवाह पद्धति के अन्तर्गत कन्यादान का विशिष्ट  
 महत्त्व है। नूर मुहम्मद ने राजा की उच्च भावना का संकेत करके भारतीय समाज  
 एवं संस्कृति की उज्ज्वल भावों की प्रस्तुत की है। 'हन्त्रावती' कथानक में नूर  
 मुहम्मद ने संतान के अभाव से उत्पन्न विकलता से बर्हीभूत राजा का चित्र चित्रित  
 किया है। राजा संतान की प्राप्ति के लिए भगवान् शंकर की आराधना करते  
 हैं। प्रसन्न होने पर शंकर जी राजा को बताते हैं कि उनके भान्य में संतान सुयोग  
 नहीं है किन्तु क्योंकि उन्होंने भगवान् की आराधना की है। क्तः उन्हें कन्या  
 प्राप्त होगी। यथा-

‘ बालक स्त्री सिला त राजा । देह न बालक अपचित काजा ।  
 राजे कहा पुत्र जी ताहीं । होइ सुता तो मम अदाही ।  
 जातनजा जो होत है, होत सदन उँवियार ।  
 कन्यादान दिहे लो, होत सुकृत हमार ॥’<sup>१</sup>

राजा की तपस्या पर प्रसन्न होकर भगवान्  
 शंकर ने उन्हें आशीर्वाद दिया :

१- नूर मुहम्मद- मधुमात्सी- संपा० श्यामसुन्दर दास - स्वप्न तण्ड पृ० १६

‘होइ रतन सौं कन्या, यह फल है मोर ।  
राज सदन बंधिया रो, तासौं होइ कैमोर ॥’<sup>१</sup>

इसी प्रकार भगवान की वाराणा र्ष कठिन  
ज्ञात करने पर उसमान कृत ‘निद्रावली’ के राजा को पुत्र ‘सुजान’ नामक  
पुत्रप्राप्त हुआ । पुत्र को प्राप्त करने में भारतीय परिवेश में चित्रित सत्य की  
महत्ता का प्रतिपादन भी उसमान के लोक कथाओं से उद्धृत किया है। कैस-

‘संतति वास जाय जिउ दीयि । धर्म नसाइ लीम पुनि कीयि ।  
सुत को जान पाइ किन पाई । जानि बुझे के सत्य नसाई ।  
सत्य समान पुत जग नाहीं । सत सौं रहै नाउं जग माहीं ।  
कोरिष पुत एक देस गहाना । सत्य पुत चारों लह जाना ॥’<sup>२</sup>

भारतीय लोक कथाओं में लोक राजाओं की  
कथा नियाँ उपलब्ध हैं, जिसमें सत्य की विषय दिग्दर्शित की गई हैं। उसमान ने  
भी संस्कृति र्ष वास्था के आधार पर ‘निद्रावली’ काव्य की सज्जा की  
है :

‘सत्त तोर जस जलत फारा । सत्त भयी तोहि सुत देनिहारा ।

०

०

तेहि के देत न लकी लागी । ये तोहि लागि पुत अब पागी ॥’<sup>३</sup>

रक्षक जी की कृपा के फलस्वरूप राजा के  
हृदय में संतोष की अविरत धारा प्रवाहित होने लगती है। वे सोचने लगते

१- संपा० सत्यजीवन वर्मा- निद्रावली दोहा २४ पृ० १७ स्वप्न स्रष्ट

२- वही

पृ० १३

३- वही

पृ० १३

है कि जब जीवन का परम आनन्द उन्हें प्राप्त होगा । जैसे-

‘पुनि सुत संतति लच्छमी, राज पाट सुत भोग ।

जब बिय रहस आनन्द करु, जनि मानसि कहू सोग ॥’ १

उपर्युक्त पैक्तियों में कवि उसमान ने मानव मन की नैसर्गिक उपलब्धि के लिए किए गए विभिन्न प्रयासों को चित्रित किया है, जिससे अन्तर हर्ष संतारी भाव प्रसृत रूप से वात्सल्य की भावना के उद्गार में सहयोगी है।

भारतीय लोक कथाओं में वर्णित सभी कहानियों को क्लृप्तिक रूप में प्रस्तुत करना यद्यपि सूफी कवियों का अभीष्ट था तथापि कथा की स्वाभाविकता के लिए कवि ने सीधे सरल ढंग से कथानक को बागे बढ़ाया है। जिस प्रकार सगुण भक्तों ने भगवान् कृष्ण कथना राम के जन्म से लगे उनके माता पिता के हृदय में उद्बुद्ध परम संतोष का वर्णन किया है, उसी प्रकार सूफी कवि उसमान ने राजा के घर कन्या के उत्पन्न होने पर राजा, प्रजा के हृदय के संतोष का उल्लेख किया है। जैसे-

‘सुत सुनि राजा मन भयी, रोम रोम संतोष ।

रानी रहसी देखि सुत, महँ संप्रान कोण ॥’ २

०

०

‘तेहि पाहे पुनि जन्म मरु, सुत संपति सुत देखि ।

राज पाट पुहुमी जस, अस कहू लगन विधि ति ॥’ ३

१- विद्यावती- संपा० सत्य जीवन वर्मा बी० १० पृ० १३

२- वही

दीहा ११-१२

३- वही

दीहा १३-१४



पुत्र जन्म से ही राजा के हृदय में सीता-च नही होता । वे उचित रूप से पुत्र का पोषण-पोषण करते हैं और जब सुजान पंच वर्ष का हो जाता है तब पिता उसे योग्य गुरु को सौंप कर निश्चिन्त हो जाते हैं । यथा-

‘जई सई पिता तुम्ह पढ़ी, जी जिय मा सीता-च ।  
बाप सुत सम जानि कै, पैत न ताएहु बीच ॥’<sup>१</sup>

(उ) दिव्य प्रेरणा से वात्सल्य भाव की सुनीती

सूफी काव्य का समस्त वात्स्यान एक ईश्वर सत्य पर आधारित है, जिसमें ईश्वर की प्राप्ति के लिए वात्सल्य भाव की सुनीती दी गई है। जिस प्रकार वात्सल्य की भावना माता के हृदय में अपने पुत्र के लिए होती है। इसी प्रकार पुत्र के हृदय में माता के लिए भी स्नेह, प्रेम का भाव जाग्रत होता है। जायसी कृत ‘फरमावत’ में नायक ( साधक ) जब योग के कठिन मार्ग पर अग्रसर होता है तब उसकी माँ विभिन्न प्रकार से बाधारीं डालती है, जिससे उसका पुत्र भौतिक सुखों का त्याग करके कष्टपूर्ण जीवन यापन न करे । माता की बाधियाँ को सुनकर पुत्र माता की लौकिक वस्तु से परे अलौकिक वस्तु के स्वामी ईश्वर की प्राप्ति में बाधा डालने के लिए मना करता है। वह कहता है कि योग- विज्ञान से परिपोषण करके ईश्वर के प्रीति की कान सहेगा । यथा-

‘मोहि यह लीम सुनाउ त माया ।  
काकर सुत काकरि यह काया ॥’

१- सम्पादक सत्यजीवन वर्मा : चित्रावती दीहा १३ पृ० १४ सुजानरुण्ड

जो निश्चयन तन होइहि झारा ।  
माटी पीति मेरे को भारा ॥' १

माता रीती रह जाती है पर बालक ( रत्नसेन ) अपने साधना मार्ग से विमुक्त नहीं होता है । रत्नसेन की उचितियों का मातृ हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता । माता एक ही बात सोचती रह जाती है कि मेरा रत्न क्या गया और ( मेरे लिए ) सबार किरा हो गया । यथा-

'रीति माता न बहुरे झारा ।  
रत्नसेन का मा अधियारा ॥  
बार मोर रबिया उरिरता ।  
सो ले जाता सुना पखता ॥' २

उपर्युक्त उचितियों में माता के हृदय की तीव्र वात्सल्य भावना को आवेग, पीह, रंज एवं विचारद इत्यादि संनारी भाव पुष्ट करते हैं। जायसी कृत 'फुमावत' में रत्नसेन की माता के हृदय की वात्सल्य जनित भावना के अतिरिक्त बादल को कुछ में जाते हुए देखकर बादल की माता के हृदय का क्रन्दन भी वर्णित है। माता अत्यधिक चकड़ाष्ट के कारण अपने पुत्र बादल का पैर ही पकड़ लेती है और कुछ में जाने के लिए विभिन्न प्रकार से मना करती है। जैसे-

'बादल के रि जसो वे पाया ।  
बाह गइ बादल के पाया ।

१- माता प्रसाद गुप्त - फुमावत दोहा १३० पृ० ११६

२- उपरिष्ठत .. पृ० ११६

बादल राम मोर तू बारा ।

का जनसि कस होइ सुभारा ।

०

०

जहाँ दत्तपति दत्त फलहिं, तहाँ तोर का बीग ।

बाज गवन तोर आवै मँदित, मानु सुख पीग ॥' १

माता के समझाने पर भी, भीतिक सुर्तों का लीम देने पर भी बादल रत्नसेन की ही तरह बाने की तत्पर रहता है, वह भी रत्नसेन की ही तरह माँ की उत्तर देता है। यद्यपि वह उत्तर योग की भावना से युक्त न होकर वीरता की भावना से प्रेरित है। वह कहता है यदि तुम माता को यहीदा हो, तो अपने इस कन्हेया की बालक मत समझी।  
वेहे-

माता न जानसि बालक वादी ।

हौं बादला सिंह खादी ।

सुनि गज बूह अधिक जित तपा ।

सिंह की जाति रहे नहिं डपा ॥

०

०

जो तुम मात कसीवै कान्ह न जानहु बार ॥' २

(ऊ) वात्सल्य भाव से युक्त उपदेशात्मक निबोध

सुफी काव्य में वात्सल्य भाव का वर्णन  
मैकन कृत 'मधुमासती' के पैरी तण्ड, मौन तण्ड एवं सम्पदन तण्ड में हुआ

१- डा० माताप्रसाद गुप्त - फरमावत दोहा ६१३ पृ० ५०४

२- डा० माताप्रसाद गुप्त - फरमावत दोहा ६१४ पृ० ५०५

है। इन तीनों सप्यों में कवि ने माता-पिता के हृदय की सख्त वात्सल्या-  
 अनुभूति का चित्रण विरह की तीव्र अभिव्यक्ति से किया है। पुत्री के ज्वाव  
 में मातृ हृदय की विकसतता का वर्णन हम कर ही सके हैं। विवाहोपरान्त मधु-  
 मालती जब पति गृह के लिए विदा होती है, उस समय माता के हृदय में  
 वत्सल भावना उदेलित होती है। भारतीय परिवेश में केवल अपनी छोटी सम्बन्धी  
 ही विदा के समय क्लृपात नहीं करते वरन् पास पड़ोसी भी वियोग की अनु-  
 भूति से द्रवित हो जाते हैं और वातावरण में एक व्यापक क्लृप्ता प्लूत जाती  
 है। कन्या की बाल सुलभ चंचल प्रकृति का अतीत चलचित्र की भाँति सभी के  
 नेत्रों के समक्ष घूम जाता है। ऐसे समय में माता का हृदय यही कामना करता  
 है कि पति गृह में कन्या को सब प्रकार का सुख एवं सुतार प्राप्त हो। मंगल  
 ने विदा के समय माता के द्वारा पुत्री को दी गये शिक्षा के अन्तर्गत समाज  
 की एक संदेश सा दिया है। मातृ उपदेश की ऐतिहासिक परम्परा आज भी भार-  
 तीय समाज में विद्यमान है। वास्तव में सभी एवं शाश्वत अनुभूतियाँ काल के  
 प्रभाव से कभी भी धूमित नहीं पड़ती। आधुनिक युग में भी लड़कियों की विदा  
 के समय माता सख्त नेत्रों से कुछ उपदेश अवश्य देती है। यह उपदेश मातावर्णी  
 अनुभवगम्यता के फलस्वरूप देती है जिससे पारिवारिक जीवन में आगे विपत्ति  
 के समय भी माता द्वारा अदृष्ट उपदेशों को प्राप्त करके लड़की चुली रहे।  
 कन्या के विदा के क्षणों का क्लृप्ता दृश्य एवं वात्सल्य भाव का उद्रेक जन-  
 साधारण को ही नहीं कवि सुनियों को विचलित कर देता है। कव्य कवि  
 ने जिस क्षण पर शृङ्खलता की विदा किया था, उस समय उनके हृदय में किस  
 प्रकार की वेदना एवं विह्वलता का संसार हो रहा था, इस दृश्य का वर्णन  
 कवि कालिदास ने अत्यन्त मार्मिकता से किया है, जिसके फलस्वरूप यह प्रसंग  
 विश्व-साहित्य का एक जगत् प्रसंग बन गया है। प्रेम की गम्भीर अनुभूति के

कारण कण्व कणि यह कहने लगते हैं कि जब मैं कणि होकर भी कन्या के विशीर से कतना दुःखित हूँ तो गृहस्थ सींग कन्या वियोग से पीड़ित क्यों नहीं होते होंगे । यथा-

‘यास्यत्ययं शकुन्तले हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया ।

कण्ठः स्तम्भित वाच्य वृत्तिः कतुषाश्चिन्तामर्दं दर्शनम् ।

वैकल्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्याकसः

पीडयन्ते गृहिणः कथं न तनया विश्लेषादुःस्वेन वैः’ ॥ १

कवि कालिदास के दोहे के प्रत्येक शब्दों

में फिरो हृदय की स्निग्ध वत्सल धारा कन्या के विशीर की क्लृप्ति के वर्णन में अभिव्यजित हो उठे है जिसने कणि कण्व की सांसारिक गृहस्थ पिता के समान ही कन्या विदा का क्लृप्ति करा दिया है। यह प्राकृतिक वत्सल प्रवाह किसी कणि के ही नहीं सभी जन साधारण के हृदय में नैसर्गिक रूप में विद्यमान रहता है। ‘मधुमात्तो’ की माता यह जानती है कि जीवन के संयोग एवं वियोग दो पक्ष होते हैं। कन्या सदैव पराये घर की सीमा होती है फिर भी विदा के समाचार मात्र से उसके हृदय में स्मरण, मोह, दुःख कादि संवारी भावों का उद्रेक होता है। वात्सल्य भाव का जागरण उसके हृदय में बात्निका से विशीर की संभावित वेदना से जाग्रत होती है और वह पृथ्वी पर जलित होकर गिर पड़ती है। मधुमात्तो के पिता हर तरह से समझाते हैं कि कन्या का निर्वाह सदैव ससुराल में ही होता है। रूपसी<sup>राजल</sup> नेत्रों से पुत्री के पास जाती है। यथा-

सुनि कुंवर कर गीन ववादा ।

भी द्विय दूनी घर विस मादा ॥

सुनतहि बात रूप मँजरी ,  
 मी क्वैत मुरझा गत परी ।  
 विक्रमराय वैधि अनुकूलै ,  
 धी के रहै कस नैहर पावै ॥  
 सचरै धीकर हो निखाहा ,  
 पैके काज न धीकर जाहा ।  
 नैन मी जल बित उदासा ,  
 गी रानी मधुमासती पासा ॥ १

रूपमती वत्सल भाव से विह्वल होकर, विज्ञोह  
 से द्रवित होकर कहती है कि जब तो मधुमासती का संदेश मिलना अभी तक संभव  
 नहीं। उदाहरण-

'तोहि नाह तहाँ से जाइहि ।  
 जहाँ संदेश न कोइ ताइहि ।  
 जहाँ केर न पाइव संदेश ।  
 बलिहि नाह तोहि ते बिदेश ॥  
 कौन माँति हम राख , तुह बिहुरत जे पीउ ।  
 अब जो देवस हूँ चारि मी, नै गीतहि तुह पीउ ॥ २

माता व्याकृत होकर सोचती है कि पुत्री  
 जा हो रही है। इसे कुछ उपदेश देना संगत है, जिससे यह अपना जीवन सुत  
 पूर्वक व्यतीत कर सके। रूपमँजरी, हृदय की वत्सल भावना को संयत करके

- 
- १- मँजन- मधुमासती - संपा० शिव प्रसाद गुप्त, <sup>जौन २०६३,</sup> पृ० १५१  
 २- वही पृ० १५१

कर्त्तव्य का निर्वाह करती है :

साँहं सेवा करन नित साये,  
 जानि डोसैं बित दल्लि बयि ॥  
 मर्या हुस्ट जो पुरस क जाती ,  
 बित परस्त रहने दिन राती ।  
 कहहु सेवादि न वावेहु बैस,  
 सगरी रेनि गोठ चायस बैस ।  
 जो धे बाँह उलारे संग,  
 बैससि सेव सुख मानहु रंग ॥  
 ताँ सो पिब जो करी न माना,  
 कहहु रंग प्रीति कुमाना ।  
 जिन्ह धनि वपे कंत साँ, मान कीन्ह बधिराह ।  
 तिन्ह ताँ साँहं वाफा, सौतहि दीन्ह मनाहं ॥ १

प्रत्येक माता- पिता संतान का कल्याण चाहते हैं। कन्या पतिगृह में स्वसुर, सास बादि सम्बन्धियों में वादर, मान तथा स्नेह प्राप्त करे यही मातृ-हृदय की अभिलाषा होती है। रूप मंजरी कुत्री से इस स्नेह को प्राप्त करने के लिए उपदेश देती है। यथा-

साँहं सेवा कीजिए, के बिउ वपे जानि ।  
 साँहं सेवा जो बिउ बैधा सो चारी सुग रानि ॥

०

०

सासुहि उतर न दीबै काऊ ,  
 से हुर ब्रुनि पत्तारख पाऊ ॥

हंसि के फलब साधु की गारी ,  
 उलटि उतरना दीबे बारी ॥  
 उंच बोस जनि बोलहु, रिस राखहु मन मारि ।  
 संतति ताज धरब जिउ, कृत नहि बावै गारि ॥' १

भारतीय जनजीवन में ससुराल में नारी को सम्मान केवल पति का स्नेह भाजन होने से नहीं मिलता, बल्कि इसके लिए घर के सभी परिवार जनों का त्याग रहता पड़ता है। इस वीर रूप मंजरी ने मधु-मातली का ध्यान आकर्षित किया है।

(२) कर्त्तव्य की स्मृतियों से बाल-भाव का उद्देश

सूफ़ी कवि मेकन ने मधुमातली की सन्धियों के छंद के उद्गारों को वर्णित करके बाल्यकाल की कर्त्तव्य स्मृतियों का समा-वेश किया है। अपनी सती की विदा होते देखकर सन्धियों के मन में सहसा मधुमातली के साथ बिताये कर्त्तव्य के पाण स्मृति-पत्र पर वंशित हो जाते हैं :

“तुम हम एक संग माना , बालाफ का रंग ।  
 जब कैसे जिउ राखब, तुह गानहु पिय संग ॥” २

यही नहीं वे सोचती हैं यदि यह जीवन न जाता तो हम सदैव बाल्यावस्था की तरह साथ रहते । यहाँ कवि मेकन

१- सम्पा० डा० शिवप्रसाद शुक्ल- मेकन कृत मधुमातली पृ० १५२

२-

..

पृ० १५३



ने बाल्यावस्था के प्रति पीह की भावना का निवृण किया है। यथा-

‘जो बिधि जीवन बदलि कै, पुनि बाताफ देह ।

सो जीवन देह बाला, बात अवस्था लेह ॥

जो जीवन ना उपज तरंगा, सदा रहत बाताफ कैा’ ॥१

मधुमासती की सलियाँ बियोग से इतना अधिक द्रवित हो गई हैं कि वे कहने लगती हैं कि यदि हमें पता होता कि बिरुहने का दुःख इतना कष्टदायी होता है तो हम इतना स्नेह ही नहीं करते । यथा-

‘जो बिरुह सुख अनितई एहा, कत करिहँ बाताफ नेहा ।

वब तुह करी विदेस पयाना, हम कैसे छट धरख पराना’ ॥२

सलियाँ एवं माता का वार्तालाप ही ही रहा था कि इतने में पुत्री द्वार पर बागई । माता रुमनजरी दिखल होकर समाद से कहने लगी ।

‘किनवै सुजी कृष्ण सौ रानी ,

बलेह लेह पौर प्रान परानी ।

बितती करहिँ कोख का आगी ,

येह दुनी तोहरे जिव लागी ॥

०

०

कर्म न होइ माप बाप के हाथे,

भुजहिँ लिखा देव जो माथे ॥

१- सम्पादक डा० शिवप्रसाद जीव गुप्त - मंगल कृत मधुमासती पृ० १५३

२-

..

..

पृ० १५३

मात फिआ कर स्तनै बहई ,  
सुत दुहिता प्रतिपात्त बहई ॥<sup>१</sup>

मैरान ने मातु हृदय के चित्रण में जिस वात्सल्य भावना का परिचय दिया है वह सभी वियोग वात्सल्य का रूप है। माता के हृदय में वात्सल्य भाव की उत्पत्ति में ग्लानि, दैन्य, भिन्ता, स्मृति, वाक्य , व्याधि , भय, द्राघ, लोका, विषाद, कड़वा आदि सैकड़ी भावों ने यथा समय सहायता की है। मधुमास्ती की अनुपस्थिति के भान मात्र से ही रूप मैरान के हृदय में वात्सल्य भाव का उद्भूत होता है।

(ए) पुत्री की स्नेहानुभूति से प्रेरित वात्सल्य- भाव

पुत्री के हृदय की स्नेहानुभूति का चित्रण समदन तण्ड में हुआ है। माता की विकसता की देखकर मधुमास्ती के हृदय में भी अपनी सभी सम्बन्धियों की त्याग कर पति गृह जाने की उत्सुकता एवं पुत्र-जन विषाद में परिवर्तित हो जाती है। उसे बिगड़ की भावना व्याकुल कर देती है। वह माता के चरणों की छूट गले से लग जाती है। पुत्री की रूप दुःख भावना को परिलक्षित करके माता का हृदय ममता से भर उठता है। वह वाक्य-वादि देती है कि रूप मैरान का सुहाग बना रहा । जैसे-

‘कुंवर बननि पाँ लागी धाई ,  
रानी गीब उठाइ के साई ।  
कोस की बागी छहि न बिशीवा,  
ठाहि बाहि रानी तब रोवा ॥

१- संपा० डा० जिव प्रसाद गुप्त- मैरान कृत मधुमास्ती पृ० १५६

उस कहि धी लागि गीब रही,  
 झंझि न सँ मोह की गही ।  
 जननि कंठ नहिं झंझि वारी ,  
 बध्नी दे दे कैम सारी ।  
 जननि कसीस दीन्ह मन बानी,  
 सदा सोहाग राज पट रानी ॥ १

मधुमासती माता से फिर फिर पिता  
 के वर्णन स्पर्श करता है। पुत्री को इस अवस्था में देखकर वात्सल्य भावना के  
 बलित्व के कारण पिता के नेत्र से वधुवर्षों की धारा बह गई। वे कहने  
 लगे। यथा-

'बहुरि पिता पालागी बारा,  
 राखे हेतु सौँ कैम सारा ।  
 राजा बहुरि नहिं रहा पारा,  
 निखरी बिभट वसि की धारा ॥  
 पिता कंठ नहिं झंझि, कैसह राज कुमारि ।  
 जी जी लोग झोड़ावे, ती ती गहि दे कैवारि ॥ २

पुत्री की विकलता पर दृष्टिपात करते  
 राजा ने जामाता से पुत्री का ध्यान रखने के लिए कहा। उसके उत्तर में  
 कुँवर ने अपनी स्निग्ध विनम्रधारा का परिचय इस प्रकार दिया :

'सुना कुँवर ससुरन्ह कर कहा ,  
 पिता ऐसे तुह हूँ भित्त कहा ।

१- डा० शिव प्रसाद गुप्त - मैकन कृत मधुमासती पृ० १५६

मौन हम जन्म हीत बारा ,  
माप बाप ने तुह प्रतिपारा १॥ १

### निष्कर्ष

वात्सल्य भाव के परिप्रेक्ष्य में सूफी काव्य का पर्यावलोकन करने पर ज्ञात हो जाता है कि सूफी कवियों ने वात्सल्य की सर्वना पारिवारिक वातावरण तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर की है। सूफी काव्य में अभिव्यक्ति प्रेम की पीर की आधारणा वात्सल्यमय विरहा-नुभूति के परिप्रेक्ष्य में की गई है। सूफी काव्य का सरल खेदित पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले साधक की प्रेरणा युक्त वाणी के रूप में गृहीत किया जा सकता है। भारतीय समाज में माता-पिता कन्या की स्वामी के समोपेय कर परोहर को लीटा देने वाली अभिव्यक्ति के रूप में मानते हैं। यह मान्यता युग-युग से चली जा रही है। सूफी काव्य के अनुसार परम सत्ता के स्वरूप में असीम सौन्दर्य का वास है। सूफी कवि जात्माभिव्यक्ति को समुद्र रूप से प्रतिपादित करने में सक्षम है, जो अपनी भावना एवं स्वरूप की दृष्टि में प्रतिबिम्बित करता है। भारतीय जन साधारण की प्राचीन मान्यताओं के प्रतिपात्त सूफी कवियों ने जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं को अपना काव्य-विषय बनाया है। उन्होंने लौकिक परिसर में स्त्रीक दिव्य सम्बन्ध एवं भावनार्थों की प्रतिष्ठापित किया है। प्रेम की गम्भीर-क्रुतियाँ तथा अभिव्यक्ति के अन्तर्गत हिन्दी के प्रेम मार्गों सूफी कवियों ने वात्सल्य भावना का अविकलन एवं मार्मिक परिणय दिया है।

...

## पंचम अध्याय

### (क) रामकाव्य

व- राम-काव्य में कवि की व्यक्तिगत

वात्सल-भावना

वा- राम-काव्य में संयोग वात्सल्य के वैविध्य

पूर्ण चित्र कीर्ण किया

इ- राम-काव्य में वियोग-वात्सल्य की वैविध्य

पूर्ण कीर्ण किया

### (ख) कृष्ण काव्य

व- कृष्ण-भक्त कवियों की व्यक्तिगत वात्सल्या-

तुष्टि

वा- कृष्ण की बाल-लीलाओं में वात्सल्य-भाव

इ- कृष्ण की व्रतों की लीलाओं में वात्सल्य-भाव

ई- कृष्ण-काव्य में वियोग की तुष्टि के अन्तर्गत

वात्सल्य-भाव

## अध्याय ५

### सगुण भक्ति काव्य में बाल- भाव सम्बन्धी साहित्य

का

व्ययन

#### (क) रामभक्ति काव्य में वात्सल्य भाव

भक्तिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। हम यह स्मृत भी कर चुके हैं कि बाल- भाव का प्रचुर मात्रा में अभिव्यक्ति विशेषतः सगुणवादी भक्त कवियों ने अपनी सरस गेय काव्य में किया है। उनमें भी वष्टहाप कवियों का योगदान अनेक दृष्टियों से उत्कृष्ट है। हमारी शोध सीमा वष्टहाप कवियों के अतिरिक्त कवियों द्वारा रचित शेष भक्ति काव्य है। वष्टहाप कवियों की परम्परा को सुचारु रूप से अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित किया है, भले ही वे बाल भाव का चित्रण उतना उत्कृष्ट नहीं कर पाये। राम भक्त कवियों में मुख्यतः गौस्वामी तुलसीदास हैं, जिनके विपुल कृतित्व में श्री राम तथा अन्य राजकुमारों की बाल कवियों की प्रस्तुत किया गया है। तुलसी के वात्सल्य एवं प्राण- तत्त्व राम भक्ति में ही सुतरा है, अतएव श्रीराम के बाल भाव की तुलसीदास ने अन्य वात्सल्य, भाव- गाम्भीर्य एवं काव्य कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। कहीं कहीं तो वे वष्टहाप कवियों से बाज़ी जीत गये हैं। बाल भाव के चित्रण में गौस्वामी जी ने पूर्व संकल्प के अनुसार कुछ ग्रन्थों में अवधी का सहज मोह त्याग कर ब्रज भाषा के मधुर माध्यम से राम के बाल भाव का विचित्र वर्णन किया है। राम की वात्सल्य

की सुकौमल भाव-भूमि पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयास राम भक्ति शास्त्रा के अन्य कवियों ने भी किया, यद्यपि वह उतना विशिष्ट तथा उदाहरणीय नहीं प्रतीत होता। शोध कार्य के सुललित एवं सुनियोजित बनाने की दृष्टि से हमने कुछ अख्यात कवियों के काव्य का भी यथासम्भव निरूपण किया है। कुछ कवियों के ग्रन्थ केवल पाण्डुलिपि तक ही परिसीमित हैं तथा कुछ कृतियाँ असामान्य परिस्थितियों के कारण उपलब्ध नहीं की जा सकीं। अतः हमें यह है कि हमारे संकल्पित विवेचन में कुछ कमी रह गई है।

मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति साहित्य में राम काव्य का मूल्यकिन तुलसी काव्य के विश्लेषण मात्र से ही हो सकता है। विष्णु को राम के रूप में प्रतिष्ठापित करके जिस शास्त्रा ने अपना अस्तित्व स्थापित किया उसे राम भक्ति शास्त्रा के नाम से अभिहित किया जाता है। राम काव्य में राम के लोक पर्यायित रूप का चित्रण किया गया है। अतः राम काव्य में वे वादि से अन्त तक एक वीर एवं वादश राजा के रूप में वर्णित किये गये हैं।

राम काव्य में तुलसीदास का स्थान सर्वोपरि है। डा० रामभुमार वर्मा का विचार है "अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में तुलसीदास ही प्रथम कवि हैं, जिन्होंने दोहा चौपाई में राम कथा को पहली बार प्रस्तुत किया।"<sup>१</sup>

इन्के पश्चात् मुनिलाल की राम कथा पर आधारित कृति प्राप्त होती है। तुलसीदास के राम काव्य परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी कहा जा सकता है। रामानन्द को राम काव्य का प्रवर्तक माना जाता है।

---

१- डा० रामभुमार वर्मा- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४८२

रामानन्द के दो तीन पद ही अभी उपलब्ध हैं तथापि ऐसा कहा जाता है कि वे समय समय पर विनय एवं स्तुति के पद गाया करते थे। राम भक्ति काव्य का प्रचार दो शताब्दों के माध्यम से हुआ एक शता में स्मार्त परम्परा से युक्त मर्यादावादी राम काव्य है जिसके प्रमुख वाधार स्तम्भ तुलसीदास कहे जाते हैं। दूसरी परम्परा रसिक भक्त रचनाकारों की है जिसमें लखनदास का प्रमुख स्थान है। राम काव्य की विशेषता की ओर इंगित करते हुए वाचार्य शुक्ल का विचार है :

“ कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि वह प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को डालकर उसके अतुल्य भाव का अनुभव करे। इस शक्ति की परीक्षा का रामचरित से बढ़कर विस्तृत दौड़ कहाँ मिल सकता है।<sup>१००</sup>

इससे यह सिद्ध होता है कि किसी कवि की वास्तविक महत्ता काव्य में उद्धृत भावों की अभिव्यक्ति, सुन्दर शिष्टा, व्यापकता एवं गहन भावुकता से नापी जा सकता है। भक्ति के मूल तत्त्वों में भावों की समुत्था के रूप में शान्ति, प्रीति, वत्सलता प्राप्त होती है। राम काव्य में वात्सल्य भाव का विवेचन लोक रसिकारी दृष्टि से न करके मर्यादित दृष्टि करना अपेक्षित है। तुलसी के काव्य का मूल्यकित ही समस्त राम काव्य का मूल्यकित होता है। राम काव्य में वात्सल्य की कैसी व्यञ्जना है, इसके विषय में डा० उदयभानु सिंह का विचार उल्लेखनीय है :

“ वात्सल्यमयी माँ के ममतापूर्ण हृदय की हृदयस्पर्शी व्यञ्जना हिन्दी के अनेक कवियों ने की है, परन्तु सपत्नी-पुत्रों के

---

१- रामचन्द्र शुक्ल-<sup>जो स्वामी</sup> तुलसीदास पृ० ८४



प्रति सौतेली माताओं के स्नेह का जो चित्रोत्कर्षक निरूपण तुलसी ने किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। पाल्य पालक भाव के कारण दास दासियों तथा भक्तों के प्रति राम का स्नेह भी वात्सल्य ही है।<sup>१</sup> \*\*

इस प्रकार रामकाव्य में वात्सल्य का चित्र वत्थन्त व्याप्त हो जाता है। वात्सल्य भावना का परिपाक राम-काव्य में विभिन्न प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में हुआ है जिसके फलस्वरूप कहीं राम का लोक मर्यादित रूप चित्रित हुआ है और कहीं उनके ममोत्क बाल रूप का चित्रण हुआ है। कहीं कौशल्या के मातृत्व का संयोगात्मक रूप दृष्टिगोचर होता है तो कहीं कहीं वियोगात्मक रूप। राम के बाल वर्णन के संदर्भ में कहीं कहीं राम के बली किंक रूप की भाँकी भी द्रष्टव्य है। प्रवृत्तियों के माध्यम से सम्पूर्ण राम काव्य में बाल भाव का मूल्यकिन् निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

#### अ- राम काव्य में कवि की व्यक्तिगत वत्सल भावना

मध्ययुग के अभिवृष्ट मानस के मन में भक्ति की भावना का संचार करके उज्ज्वल भविष्य की ओर निरन्तर बढ़ने की प्रेरणा देने में तुलसी साहित्य ने सजीवनी का कार्य किया। जीवन की महत्वपूर्ण आकांक्षाओं का वर्णन तुलसी के तीन प्रमुख ग्रन्थों में प्राप्त होता है- \*\*  
राम चरित मानस, गीतावली एवं कवितावली। राम के बाल रूप का वर्णन तुलसी के काव्य में दो रूपों में प्राप्त होता है। कहीं राम स्वयं बालक है, कहीं वे भक्त वत्सल हैं। तुलसी ने राम का भक्त वत्सल रूप अधिक तन्मयता के

साथ चित्रित किया है। राम की मक्त वत्सलता के विविध रूपों ने तुलसी को बहुत ही वाकर्णित किया है। तुलसी के दास ने वात्सल्य भाव का विवेचन देश काल की विविध परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए किया है। वात्सल्य वर्णन के वन्तर्गत तुलसीदास ने पार्वती, राम, लक्ष्मण, सीता के प्रति माता पिता के वात्सल्य के साथ साथ गुरु का शिष्य के प्रति सास ससुर का राम सीता के प्रति तथा सामान्य नर नारियों का राम के प्रति वात्सल्य भाव का वर्णन किया है।

‘रामचरित मानस’ में कवि तुलसी की भावनावर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्य है। डा० नरेन्द्र कुमार शर्मा एवं डा० हरिमोहन की विचारधारा के अनुसार ‘राम काव्य परम्परा में वाल्मीकि रामायण से लेकर आज तक लिखे गये सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रतिष्ठा तुलसी की ‘रामचरित मानस’ को मिली है।”

तुलसी ने अपने आराध्य की मानवीय लीलाओं का वर्णन विविध प्रसंगों के माध्यम से किया है। मर्यादा एवं आदर्श के गुणों से आच्छादित चरित की व्यञ्जना के कारण उनके प्रभु राम का चरित्र भावनात्मक स्थलों पर अपनी परिधि को तोड़ने में असमर्थ दृष्टिगोचर होता है। अतः राम के मर्यादित रूप के सन्मुख वात्सल्य भाव का उन्मुखतः प्रवाह गतिहीन ही रहा है।

तुलसी ने मानस में सर्वप्रथम स्वयं को बालक मानकर सुनने वालों से प्रार्थना की है कि ‘मानस’ के प्रीता उन्हें बालक समझकर दक्षिण करेंगे :

---

१- डा० नरेन्द्र कुमार शर्मा- : डा० हरिमोहन - मध्यकालीन काव्य प्रभा

‘कमिहहिं सज्जन गौरि दिठाई ।

सुनहिं बाल बचन मा ताई’ ॥ १

स्तना ही नहीं तुलसी के हृदय में यह भावना  
भी हिलीर ले रही है कि जो लोग उन्हें बालक समझ लेंगे, वे उन्हें परस्वर ही  
हस्येंगे :

‘जौ बालक कह तीतरि बाता । सुनहिं मुदित मा फिु और  
माता’ ॥ २

तुलसी का हृदय पाठकों एवं श्रोताओं से  
यह अनुरोध करता है कि वह उन्हें बालक समझ कर ही उनकी कही बातों  
को आनन्दपूर्ण सुने ।

तुलसी के हृदय की वात्सल्य भावना आत्म-  
निवेदन के रूप में विभिन्न देवी देवताओं के स्तुति से उनकी कृति ‘विनय पत्रिका’  
में उद्घाटित हुई है। तुलसीदास के विषय में यह उल्लेखनीय है कि उन्हें माता  
की ममता नहीं प्राप्त हुई। विद्वान् रामयत्न सिंह प्रमर का विचार है कि  
तुलसीदास संसार के थे और संसार में थे, फिर भी संसार के नहीं थे और  
संसार में नहीं थे<sup>३</sup>। लेकिन विनय पत्रिका ग्रन्थ में कवि ने भगवान् के दरबार  
में विचारार्थ एक कर्त्री प्रेषित की है। तुलसीदास ने भगवान् के भक्तों, सेवकों  
सभासदों एवं जगत्माता जानकी से विचारार्थ क्रमबद्ध रूप से प्रार्थना की है कि

१- श्यामसुन्दर दास- रामचरित मानस- दोहा १६ चौपाई ४

२- वही ,, चौपाई ५

३- डा० रामयत्न सिंह प्रमर- धर्मयुग १ अगस्त १९६५

वै विनय पत्रिका पर परम कृपालु सर्व भक्त वत्सल महाराज रघुनाथ जी की  
 "सही" अंकित करने का अनुरोध करें।

वाचार्य शुक्ल जी ने विनय पत्रिका के बनने  
 का कारण बताते हुए लिखा है कि "तुलसीदास को एक दिन कलिकाल ने प्रत्यक्ष  
 वाक्य धमकाया था। अतः कलिकाल के डर के फलस्वरूप इस कृति की सज्जा  
 हुई"। विनय पत्रिका में यद्यपि कवि की स्वयं ही, नाना कष्टों से मुक्ति  
 प्राप्त कर प्रभु की शरण में जाने की भावना प्रमुख रूप से उद्भूत है। तुलसीदास  
 ने रामचन्द्र को वाराध्य मानकर भी कहीं कहीं अपनी वत्सल भावना का परिचय  
 विनय पत्रिका के विभिन्न पात्रों के माध्यम से दिया है। हनुमान जी से विनती  
 करते हुए वे कहते हैं कि :

‘ऐसी तोहि न बुझियै हनुमान हठीलै  
 साहेब कहूँ न राम से तोसे न उसीलै ।  
 तेरे देखसि सिंह के सिसु मैढक लीलै  
 जानत हौं कलि तेरेऊ मन नगल कीलै’ ॥ २

उपर्युक्त पद में "हठीलै" शब्द वत्सल  
 भावना को उद्भूत करता है। कवि तुलसी के अचेतन में बाल-हठ की प्रवृत्ति  
 विद्यमान है। अतः उन्होंने हनुमान के लिए हठीलै शब्द को प्रयुक्त किया है।  
 हनुमान जी से विनय करने के बाद वत्सल-भाव का उत्कृष्ट रूप सीता की स्तुति  
 में प्राप्त होता है। तुलसी सोचते हैं बालक अपनी बात को मनवाने के लिए  
 पिता की आज्ञा की आवश्यकता पर माँ का दामन पकड़ कर हठ करता है

१- लखनऊ रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १४१

२- तुलसी - विनय पत्रिका पृ० ५७

कि माँ कभी भी क्वसर पाकर पिता से उसकी इच्छा कह कर उस इच्छा की पूर्ति के लिए हमी मरवा दे। इसी भावना से मर कर तुलसी ने स्वयं को बालक मानकर सीता जी से विनती की है। उदाहरण-

‘कबहुँक वीर, क्वसर पाइ ।

भरि वी सुधि बाइबी, कहु करुन कथा चलाइ ।

दीन सब जग हीन, वीन, मलीन, अधीनघाइ ।

नाम ते भरी उदर रू प्रभु दासी दास कहाइ ।

बुझिहैं ‘सी है कौन’ कहिबीनाम दसा जनाइ ।

सुनत राम कृपासु के भरी बिगरिवी बनि जाइ ॥

जानकी जगजननी जनकी किये बन सहाइ ।

तरे तुलसीदास भव तव नाथ गुन गन गाई’ ॥ १

उपर्युक्त पद में यद्यपि तुलसीदास ने सीता जी के दरबार में प्रभु कृपा प्राप्त करने हेतु ही प्रार्थना की है, तथापि उन्होंने अपनी हृदय की वत्सल भावना का परिचय इस प्रकार दिया है कि तुलसी बालक है और बालक की बात माता जानकी श्रीरामचन्द्र से कहेंगी, तो वे उस बात को अस्वीकार नहीं करेंगे ।

तुलसी ने भगवान् के बालक रूप से अधिक अपनी बाल-भाव को उद्घाटित किया है। उन्होंने विनय पत्रिका में स्वयं को बालक मानकर भगवान् राम को पिता, माता, गुरु मित्र माना है। स्वयं को तो आध ही मानते हैं। जैसे-

नाथ तू आथ को, आथ कौन मोसी ॥ २

१- तुलसीदास - विनयपत्रिका पद ४१

२-        ..                    ..                    पद ७६

क्तः यही कहा जा सकता है कि जिस बालक के माता-पिता न हों वह अपनी कृतुप्त वत्सल-भावना अपने वाराध्य में ही देस सकता है, क्योंकि वाराध्य की कृपा से ही उसका इस संसार में हित होगा ।

तुलसीदास ने विनय पत्रिका में राम की वत्सलता प्राप्त करने के लिए, अपनी भक्ति की पूर्णता के लिए कौन-कौन सी सर्जना करके अपने कृतुप्त क्लेश हृदय को तृप्त किया । तुलसीदास ने विनय पत्रिका में कहीं भी बलात् वात्सल्य चित्रण नहीं किया, वरन् उन किंचित् पदों की सर्जना के द्वारा अपनी वत्सल हृदयानुभूति का अपनी भावनाओं के उद्बलन का परिचय दिया है। यह एक वात्म निवेदनपरक काव्य है, जिसकी सर्जना गीति काव्य में हुई है। इस काव्य में तुलसी की भावनाओं का स्वतन्त्र अवलीकन किया जा सकता है।

बाल्य काल में माता पिता के अभाव में बालक को अन्तः दुःखों को फेलना पड़ता है। तुलसी ने भी इस दुःख को फेला था । इसी भावना को तुलसी ने कौन-कौन से शब्दों में बाँधा है। कहीं वे लिखते हैं 'तनु तज्यो कूटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहू ' और कहीं वारे तैं ललात बिललात द्वार द्वार दीन जानत ही चारि फल चारि ही चनन को ' कह कर अपनी अभिव्यक्ति की उद्भावना करते हैं। इसी भावना को उन्होंने इस प्रकार भी व्यक्त किया है। यथा-

‘बाल दसा जेते दुख पाये । अति कसीम नहि जाहि गनाये ।  
 लुधा व्याधि बाधा भई भारी । बदन नहि जानै महतारी ॥  
 जननी न जानै पीर सो, कैहि हेतु सिधु रौदन करै  
 सोई करै विविध उपाय, जातैं अधिक तुब हाती जरै ॥१

विनय पत्रिका में तुलसी दास ने राम की कृपा प्राप्ति के लिए लोक उदाहरणों का सहारा लिया है। राम को वे पिता मानते हैं। वे उनसे विनती करते हैं कि जब बाप पिता के सदृश सहारा देते हैं तो मैं भी इसी ढंग का सहारा चाहता हूँ। यथा-

‘बेहि कर कम्प कृपालु गीधक है,  
पिंड देह निज धाम दियो ।

०

०

निसि बासर तेहिकर सरीज की ,  
चाहत तुलसीदास काया ।।’ १

जब जटायु के साथ राम का पिता-तुल्य व्यवहार था तो भक्त तुलसी भी स्वयं को उसका अधिकारी मानते हैं। यह अधिकार की भावना पिता-पुत्र स्नेह की ही एक डोर है। राम को, पिता को “बाप” कह कर भी तुलसी ने सम्बोधित किया है। यथा-

‘बाप । बलि जाउं , बाप करिये उपाय सौ ।  
तेरे ही निहारे परे हारेहु सुवाउ सौ’ ।।’ २

सम्पूर्ण समर्पण की भावना से प्रेरित होकर कवि तुलसी छोटे बालक के सदृश अपनी जीवन नैया को भगवान् राम के सहारे छोड़ देते हैं, क्योंकि राम के अतिरिक्त इस संसार में उनका कोई भी रदाक नहीं -

‘सत्ता न , सु सेवक न , सुतिय न , प्रभु बाप ,  
माय- बाप तुही साँची तुलसी कहत ।

मेरी तो थोड़ी है, सुधेरी बिगरियों, बलि  
 राम । रावरी सौ, रही रावरी बस्त ॥' १

पुत्र के प्रेम की तुलना तुलसीदास जी ने प्रभु-  
 प्रेम से करते हुए लिखा है। यथा-

'सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डरिहै ।  
 अपनी सौ स्वाय स्वामि सौ, चहुँ विधि चातक, ज्यों स्क  
 टैकते नहि टरिहै' ॥ २

विनय पत्रिका यद्यपि दैन्य मक्ति की विवे-  
 चना से युक्त काव्य है तथापि समस्त पदों में एक ध्वनि गुंजरित होती है  
 कि प्रभु यदि तुम्हें वसु वसु का उद्धार किया तो मेरा क्यों नहीं ?  
 तुम बस एक बार कह दो कि 'तुलसी मेरा<sup>३</sup> है' बस मैं संतुष्ट हो  
 जाऊँगा । यही भावना राम की वत्सल भावना की पुष्ट करती है । फिटा  
 जब जिस पुत्र से यह कह देता है कि समस्त माहं वहाँ में वही मुझे अधिक  
 प्यारा है, तो वह हरा हो जाता है। वही स्थिति विनय पत्रिका में तुलसी  
 की है ।

'गीतावली' के अन्तर्गत मधुर, ललित एवं  
 भाव भरे पदों में काण्ड क्रम से रान्तरित की विभिन्न विशेषताओं का  
 चित्रण किया गया है। इसकी सारी पद रचना विभिन्न राग रागिनियों  
 में ही पिरोई हुई है। तुलसी ने सूर काव्य से प्रभावित होकर राम की बाल  
 लीलाओं का सांगोपांग वर्णन करते हुए विभिन्न घटनाओं की दर्शाते हुए

१- तुलसीदास - विनय पत्रिका पृ० ४०२

२- उपरिक्त पृ० ४२२

३- उपरिक्त पृ० १४६



राम के राजा रूप का मनोहारी चित्रण किया है। गीतावली में राम राज्य का बड़ा ही समृद्धिशाली वर्णन प्राप्त है। कवि ने राम की दिनचर्या की भी विवेचना की है। 'सुल गोसाईं' चरित के अनुसार सूरदास जी ने चित्रकूट में तुलसीदास से मिलने पर अपने कुछ पदों को सुनाया। उन्हीं मनोहारी पदों को सुनकर कवि हृदय ने प्रेरणा प्राप्त कर, श्री राम के जीवन की विभिन्न घटनाओं की भावों की लहरियाँ में पिरोकर पदों के माध्यम से साहित्य को समृद्ध बनाया। सूर की रचनाओं ने तुलसी की भावनाओं को इतना अधिक वान्दोलित किया कि उन्होंने विभिन्न पदों के माध्यम से राम की बाल कवि एवं उनकी विभिन्न बाल लीलाओं का अत्यन्त सरस एवं हृदयग्राही वर्णन किया है। यद्यपि स्वानुभूति और काव्यानुभूति में जन्मजात भेद नहीं होता, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम निश्चित रूप में विभिन्नता लिए ही होता है। इस दृष्टि से वष्टक्षाप कवि सूर ने अपनी काव्यानुभूति के माध्यम कृष्ण की सत्ता रूप में मानकर कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया है। कहीं भी किसी स्थल पर उनके बालक कृष्ण उनके भगवान् नहीं बन पाये हैं। उन्होंने जहाँ श्रीकृष्ण को बालक माना है, वहाँ एक सामान्य बालक की ही भाँति अपनी भावनाओं का उद्गार किया है। कहीं भी उनके कृष्ण बाल लीलाओं की स्थिति से उठकर तुलसी के राम की भाँति पर्यायित नहीं हो सके हैं। किन्तु यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि तुलसी की गीतावली में भाव उष्मा के साथ साथ चेतना का भी विस्तार प्राप्त होता है, जिसमें मध्य युग के लोक मानस की जीवन्त अनुभूति का अपूर्व संयोग है। मानव मन की सहज, सरल अभिव्यक्ति और तरल कौमल अनुभूतियों की सूक्ष्म विवेचना से तुलसी किसी भी दृष्टि से पर्यायित होते हुए भी सूर से कम नहीं हैं। तुलसी ने जहाँ कहीं भी अपने ज्ञान का रूप उद्घाटित करने का प्रयत्न किया

है, वही वे सामाजिक मान्यताओं, संस्कृति एवं मध्ययुगीन भारतीय परिवेश से नाता जोड़ गये हैं।

“गीतावली” में राम जन्म के क्षण में मध्ययुगीन अयोध्या राज्य की समृद्धि, मर्यादा तथा हमारे देवी-देवताओं का किस प्रकार चित्रण तुलसीदास जी ने किया है यह एक कवि की कल्पना का अतिरिक्त है, जहाँ उनकी भावनाओं में केवल अयोध्यावासी ही नहीं देवता किन्नर और मुनिजन यान में आकर विभिन्न, गन्धर्वों के साथ मिलकर श्री राम के जन्म की सुशी में राजा दशरथ की सुशी को और भी बढ़ा कर अयोध्या की शोभा में चार चाँद लगाने का प्रयत्न करते हैं। तुलसी की यह वात्सल्या-तुष्टि ही है कि राम के जन्म के पावन क्षणों की अयोध्या पाठक के सम्मुख चित्र लिखित सी हो जाती है :

‘बाबु महा मंगल कौसलपुर सुनि नृपत के सुत चारि भए ।  
 सदन सदन सौ हिली सुहावनो, नभ अरु नगर निसान हुए ॥१॥  
 सजि सजि जान कमर किन्नर मुनि जानि समय सम गान छए ।  
 नाचहि नभ अप्सरा मुदित मन, पुनि पुनि वरणाहि सुमन चए ॥२॥  
 अति सुस बैगि बोलि गुरु भूषर भूपति भीतिर मवन गए ।  
 जात करम करि कनक बसन मनि भूषित सुरभि समूह दए ॥ ३॥  
 दल फल फूल दूध-दधि रोजन, जुवतिन्ह मरि मरि थार लए ।  
 गावत चली मीर भइ बीथिन्ह, बँदिन्ह बाँकुरे बिरद बए ॥४॥  
 कनक कलस चामर फाक धुज, जहँ तहँ बँदनवार नए ।  
 भरहि अबीर वरगजा छिरहि सकल लोक एक रंग रए ॥ ५ ॥  
 उमगि बल्यो वानन्द लोक तिहुँ, दैत सबनि मंदिर रितए ।  
 तुलसीदास पुनि भरेह देसियत, राम कृपा चितवनि चितए ॥ ६॥ १

इस पद के द्वारा तुलसीदास ने अपनी वाराध्य राम के जन्म के समय की साहित्यिक शब्दों के माध्यम से कहीं भी अपनी

वात्सल्य भावना को आरोपित करने का प्रयत्न नहीं किया है, किन्तु यह वाभास करवाने में वे अवश्य ही सफल रहे हैं कि किस प्रकार उनके राम जन्म के समय मनुष्य मात्र ही नहीं देवता भी प्रसन्न हैं। दशरथ पुत्र की प्राप्ति के शुभ अवसर पर अपने धन को अपने ऐश्वर्य को श्री राम पर निहावर कर रहे हैं। तीनों लोक में आनन्द के कारण लोग अपना घर ही साली कर रहे हैं क्योंकि तुलसी की दृष्टि में अबोध्यावासी यह सोच रहे हैं कि :

‘बाजु सुदिन सुभ धरी सुहाई

रूप सील गुन धाम राम नृप भवन प्रगट भए जाई’ ॥१

बा- राम काव्य में संयोग वात्सल्य के वैविध्यपूर्ण चित्र की कार्यियाँ

सन्तानोत्पत्ति से, सन्तान सान्निध्य से

जिन भावों का उद्भेद होता है, उन भावों के उद्भेद से जिस कलात्मक साहित्य की सर्जना होती है उसे साहित्य के क्षेत्र में संयोग पदा कहते हैं। राम जन्म के अवसर पर राजा दशरथ के आनन्द, उल्लास का चित्र तुलसी ने अष्टछाप कवियों की भाँति अत्यन्त तल्लीनता से किया है। जीवन की चिर लालसा अर्थात् सन्तान की प्राप्ति के अवसर पर दशरथ परम उल्लसित आत्म काम दृष्टिगोचर होते हैं। राम जन्म की पूर्ण बेला में महाराज दशरथ ने सुते हाथों समाना दान दिया। उस क्षण तुलसी के हृदय में भी हर्ष, संचारी भाव उत्पन्न हुआ और उनकी इस सिद्ध लेखनी से सहज आशीर्वाद स्फुटित हुआ।

यथा-

‘तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा ।

दीन्ह भूप जो बेहि मत मावा ।  
 गज रथ तुरंग हेम गौ हीरा ।  
 दीन्हैं नृप नाना विधि चीरा ॥  
 दो० मन संतोष सबन्हि के , जहँ तह देखि कसीस ।  
 सकल जन्य चिर जीवहु, तुलसी दास के हँस' ॥ १

उपरोक्त चौपाइयों में दशरथ के हृदय के उत्साह के साथ ही कवि की अपनी हृदयगत मनीभावना की अभिव्यक्ति है । तुलसी के हृदय की वात्सल्यानुभूति का यह स्वाभाविक चित्रण है ।

कौशल्या ने राम को पुत्र के रूप में प्राप्त करने की कामना की है। वे साधारण माता के समान ही अपने नेत्रों से पुरराम की बाल छीड़ाये देना चाहती है। 'मानस' में राम के जन्म के समय ऐश्वर्यशाली वातावरण के साथ साथ कौशल्यादि रात्रियों में विस्मय की भावना दृष्टिगोचर होती है। यही कारण है 'मानस' के राम के रूप की तेजस्विता दिव्यता के दर्शन करने के पश्चात् शिथिल प्रतीत होती है । कौशल्या के हृदय का वात्सल्य भाव सदैव राम के परम ब्रह्म रूप की स्मृति के कारण दबा दबा सा रहता है। उदाहरण-

'माता पुनि बोली सौ मति डौली तजहु तात यह रूपा ।  
 कीजिय सिसु लीला बति प्रिय सीला यह सुख परम कृपा ॥  
 सुनि बचन सुजाना रौदन ठाना होइ बालक सुर भूपा' ॥ २

कौशल्या के हृदय में राम के कलण्ड रूप का

१- श्यामसुन्दर दास- रामचरित मानस दोहा २२२ चौ० ४

२ वही

दो २२३ छन्द ४

सन्मोहन छाया रहता है। तुलसीदास ने इस मर्यादा का कहीं भी उल्लंघन नहीं किया है कि उनके वारंध्य बाल लीला में भी परम ब्रह्म के अवतार हैं। यथा-

‘सक बार जननी बन्धवाये ।  
 करि सिंगार फलना पौदाये ॥  
 निज कृत दृष्ट देव भगवाना ।  
 पूजा हेतु कीन्ह वस नाना ॥  
 करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा ।  
 वापु गहं जहं पाक बनावा ।  
 बहुरि मातु तहर्वा चलि बार्ह ।  
 भोजन करत देस सुत जाई ॥  
 गहं जननी सिसु पहि भयभीता ।  
 देसा बाल तहाँ पुनि सूता ॥  
 बहुरि वाइ देसा सुत सोई ।  
 हृदय कंप मन घोर न होई ।  
 इहाँ उहाँ दुइ बालक देसा ।  
 मति भ्रम मोरकि वानि बिसेसा ॥  
 देसि राम जननी बहुलानी ।  
 प्रभु हैसि दीन्ह मधुर मुसुकानी’ ॥ १

राम के दिव्य रूप को देखकर कौशल्या का हृदय नतमस्तक हो जाता है। जब रामचन्द्र जी ने माता को ब्रह्मा के भाव से युक्त देसा तो फिर बाल रूप हो गये -

-----  
 १- तुलसी- रामचरित मानस - दो० २३२ चौपाई १, २, ३, ४ पृ० १६२

‘तनु पुलकित मुख कन न जावा ।  
 नयन मूँदि चरनन्हि सिर नावा ।  
 विसमयैति देखि महतारी ।  
 भये बहुरि सिसु रूप सरारी ॥  
 वस्तुति करि न जाइ भय माना ।  
 जगत पिता मैं सुत करि जाना’ ॥ १

‘मानस’ मैं व्यंजित बाल सुलभ क्रीड़ाओं का वर्णन स्वाभाविक चंचलता तथा बालक की मनोवृत्ति का औचित्य तुलसी की मर्यादा उल्लंघन के भय के कारण अस्वाभाविकता की स्थिति में, माता के हृदय का स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में असफल है। जहाँ तुलसी की कौशल्या उल्लास में भर कर सामान्य माता की तरह अपनी बालक के धूल से भरे शरीर को गोदी में उठा कर अपनी मातृ भावना को तृप्त करने की चेष्टा करती है, वहीं तुलसी को स्मरण हो जाता है कि जिस परम ब्रह्म का वन्त वे दोनों ने भी ‘नैति’ कह कर भी नहीं पाया उसे कौशल्या ने हठ से फाड़ लिया -

‘कौशल्या जब बोलन जाई ।  
 ठसुकि ठसुकि प्रभु चलहिं पराई ॥  
 निगम नैति सिव अंत न पावा ।  
 ताहि धरइ जननी हठि धावा ॥  
 धूसर धूरि भरे तनु जाये ।  
 मूषति बिहंसि गोद बैठाये’ ॥ २

१- तुलसी- रामचरित मानस - दो० २३३ चौपाई ३,४ पृ० १६३

२- .. दो० २३४ .. ४,५ पृ० १६३

इस चौपाई में तुलसी का वात्सल भाव  
 स्वाभाविक रूप से माता द्वारा राम को बुलाने पर उनके ठुम्क ठुम्क कर  
 भाग लड़े होने का वर्णन करने में लीने होना ही चाहती थी कि उन्हें  
 यह स्मरण हो गया कि कौशल्या का राम के साथ इस प्रकार का व्यवहार  
 कहीं अनैचित्य का धोक्का न हो जाये कि श्री राम सामान्य बालक हैं, अतः  
 उन्हें तुरन्त परम ब्रह्म के अस्तित्व का उल्लेख करना ही अर्थाष्ट जान पड़ा।  
 इसी प्रकार पालने में झूलते हुए छुट्टरुवनि दौड़ते हुए लावण्य से युक्त राम  
 का बाल रूप यद्यपि अपार आनन्द की भावनाओं का उद्गार करता है किन्तु  
 मानस की कौशल्या में अनुभूति का वह सहज पक्ष अपाय्य है जिसका दर्शन  
 सूर की यशोदा में, साथ ही साथ नन्द के हृदय में सूर की सहज भावनाओं  
 की अभिव्यक्ति के द्वारा होता है। राम की बाल चेष्टाओं, लावण्य में  
 जिन उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, एवं अतिशयोक्तियों की भाँकी दृष्टिगोचर  
 होती है, उसमें बालक राम की नैसर्गिक भाँकी का प्रतिबिम्ब नहीं झलकता।  
 इनके प्रयोग से माताओं के हृदय की प्राकृतिक अनुभूति में व्यवधान पड़ता है।

मानस में असूया के हृदय की वात्सल्य भावना  
 का परिचय उस अवसर पर प्राप्त होता है जब कृष्ण पत्नी असूया का सीता  
 जी चरण स्पर्श करती हैं। अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचने<sup>पर</sup> असूया सीता जी  
 से मातृ तुल्य व्यवहार करती है और माता के समान विविध उपदेश देती है।

इसी प्रकार सीता के प्रति जटायु की वत्सल  
 भावना का परिचय उस समय दृष्टिगोचर होता है जब रावण उनका हरण  
 कर लेता है और जटायु उनकी दुःख भरी वाणी सुनकर उन्हें पिता के सदृश

सान्त्वना देता है। उदाहरण-

‘सीतै पुत्रि करसि जनि ब्रासा ।

करिहुँ जातुधान के नासा ।

धावा औधर्वत लग कैसे ।

छूटइ पवि पर्वत कहूँजैसे’ ॥ १

राम काव्य में राम की बाल-लीला से सम्बन्धित ललित चित्र तुलसी कृत ‘रामचरित’ के अतिरिक्त ‘गीतावली’ में भी प्राप्त होते हैं। रामायण में जहाँ तुलसी ने राम के बाल लीला से सम्बन्धित चित्रों को अत्यन्त अल्प मात्रा में चित्रित किया है, वहीं ‘गीतावली’ में भगवान् के बाल-रूप का बड़ा ही मनोहारी वर्णन परिलक्षित होता है। ‘गीतावली’ काव्य में प्रायः रामचन्द्र के जीवन से सम्बन्धित संयोग पदा का ही उद्घाटन हुआ है। ‘गीतावली’ में सर्वप्रथम राम जन्म के अवसर पर समस्त नगरवासियों की प्रसन्नता का वर्णन तुलसी दास जी ने किया है। यथा-

‘पूत सपूत कीसिल्या जायो , अवल भयो कुल राज’ ॥ २

‘गीतावली’ के अनेक पदों में वयोध्या-वासियों की अनुभूति से अनुष्य जब अपनी हृदयानुभूति का तादात्म्य स्थापित करता है तब ऐसा श्रुति होता है मानी राम के जन्म की प्रसन्नता केवल

१- मानस - वरण्यकाण्ड दौ० ३४ चौ० ५

२- तुलसीदास - गीतावली पद २



अयोध्यावा सियों की, दशरथ की अथवा कौशल्यादि की प्रसन्नता नहीं है, वरन् उसकी भी अपनी प्रसन्नता है, उनके राम अपने ही वागिन की शोभा है। राम की कृती का सजीव चित्र नेत्रों के सम्मुख वैकित हो जाता है। यथा-

जा गिय राम कृती सजनि रजनी रुचिर निहारि ।  
मंगल मोद मदी मुरति नृप के बालक चारि ।  
मुरति मनोहर चारि विरचि विरचि परमारथ भई  
कुरूप भूपति जानि पूजन जोग विधि स्मर दई  
तिन्ह की कृती मंगल मठी, जग सरस जिन्हकी सरसई  
किए नीद भाषिनि जागरन, बभिराभिनी जाभिनि भई॥१

नगर के नरनारियों, देवताओं के वात्सल्य भाव का वर्णन करने के पश्चात् माता कौशल्या की मनोभावना का चित्रण किया <sup>गया</sup> है। गीतावली के राम किसी भी स्थल पर रामचरित मानस के राम की भाँति उतने पर्यादित नहीं है। यद्यपि सूरदास के निकट है। उनकी माता भी यशोदा की ही तरह उनका मुँह देखती हैं, बार बार श्री राम के मुख का अवलोकन करती हैं, कभी उन्हें पय का पान करने के लिए हृदय से विफटाती हैं, माता कौशल्या में हमें सामान्य माँ के भावों की फलक दृष्टिगोचर होती है। इस पद का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि माता का हृदय पुत्र के मुख का बार बार अवलोकन करने पर भी कृपित ही रहता है। मातृ मनोविज्ञान में कृपित भावनाओं की विवेचना का इससे उत्कृष्ट उदाहरण मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। शास्त्रीय संगीत स्वर नाद की दृष्टि से, शब्दों के माध्यम

से तुलसीदास ने कौशल्या के हृदय का उद्रेक , भावों की संवेदना की अभिव्यक्ति अपने विचारों में कौशल्या की मूर्ति प्रतिष्ठापित करके किया है। भगवान् राम के मुस दर्शन की कृतुप्त लालसा के विलावल जैसे राग में बांध कर उस समय की कोमल भावनावों का चित्र और भी वात्सल्यमय हो उठा है। कौशल्या का आनन्द के अतिरेक से प्रफुल्लित शरीर का रोमांचित हो उठना माँ के सात्विक भाव की उद्घाटित करता है। राम के प्रति तुलसी की भी सात्विक , वाय्यात्मिक वृत्ति का परिचय देता है :

‘सुभग सेज सौमित कौशल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये ।  
बार बार बिधु बदन विलोकति लीचन चारु चकौर किये ।  
कबहुँ पाँदि पयपान करावति, कबहुँ रासति लाई हिये ।  
बाल कैलि गावति हलरावति, पुत्कृति प्रेम पियूस पिये’ ॥१

कौशल्या राम की इस प्रकार हिलाते हुलाते मातृत्व की भावना में विभोर हो उठती है। यह कौशल्या के हृदय में वात्सल्य की निष्पत्ति का विवेचन है। इसी भावना के वशीभूत होकर पुत्कृ कर माता कौशल्या राम के प्रेम में भाव-विभोर उठती है।

संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव की अथवा रस की प्रतीति होती है। संगीत में रस निष्पत्ति या भावाभिव्यक्ति के लिए शब्दों की वाचक शक्ति की किंचित् भी अपेक्षा नहीं रहती इसीलिए संगीत की भाषा व्यापक है। देश काल के बन्धनों से मुक्त है। मानव मात्र के हृदय में संगीत की पहुँच है। तुलसी के पद भी अपनी संगीत भावाभिव्यक्ति की उत्कृष्टता के कारण अमर है। प्रत्येक माँ के हृदय में अपने

-----

शिशु की विकास सम्बन्धी ओक लालसायें होती हैं। उसका प्रत्येक पाण शिशु विकास की चिन्ता एवं उस विकास के फलस्वरूप अभिलिखित अपनी मनोकामनाओं की परिपूर्ति में ही अपने मातृत्व की पूर्ति मानता है, नारीत्व की सफलता मानता है। तुलसी ने भी अपने शब्दों के माध्यम से कौशल्या की इस अभिलिखित मनोकामनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। माता कौशल्या की मानस फटल में बालक राम का विकसित रूप देखने की लाला-यित हो जाता है और वे राम के मनोमुग्धकारी रूप का अवलोकन करते हुए यह कह उठती है - 'तुम कब बड़े होगे ? राम लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न कब बड़े होकर आंगन में खेलेंगे, ठुफ्फ ठुफ्फ कर कब चलेंगे यह भी माता कौशल्या बेसब्री से सोचती है। बालोचित क्रीड़ाओं को देखने की अभिलाषाएँ ही उनके मन में नहीं उठती, वरन् वे यह भी सोचती है कि कब उनके बालक अपनी तीव्र भाषा में उन्हें 'माँ' कह कर बुलायेंगे। पुत्र के मुख से 'माँ' शब्द की सुनने की तीव्र लालसा कौशल्या का राम के प्रति तीव्र वात्सल्या-तुभूति का परिचयक है :

‘हूँ ही लाल कबहि बड़े बलि भैया ।

राम लखन भावते भरत रिखुवन चारु चार्यो भैया ।

बाल विभूषन बसन मनोहर वीगनि विरंचि बने हौ ।

सौभा निरसि निहावरि करि, उर लाइ बारते जेहौ ।

कलबल बचन तीतरे मँजुल कहि माँ मोहिँ बुलैहौ ॥ १

इसी प्रकार माता सुमित्रा भी सब बालकों की प्रेम फुलकित होकर हृदय से लगा लेती है और कह उठती है कि तुम चारों

१- तुलसी गीतावली - बालकाण्ड पद ८

मह्या कब पैरो चलोगे । तुम्हारी बाली चित वस्त्राभूषण तथा सौंदर्य को देखकर माताएँ (नजर न लग जाये इसलिए ) तिनका तोड़ेगी और बलैया लेगी । तुम्हारी बाल क्रीड़ाओं से, नाचने किलकने से, मणिमय लम्पों में तुम्हारा प्रतिबिम्ब पड़ने से वागिन में हवि कलकने लगेगी । सभी लोग नेत्रों का आनन्द छूट कर घुस के भाजन होंगे तथा तुम्हारी तीतली बोली सुनने वाले आयास ही अपने जन्म का फल पा लेंगे -

‘पगनि कब चलिहौ चारी मह्या ?

प्रेम पुलकि, उर लाइ सुवन अब, कहति सुमित्रा मेया ।

०

०

बाल विनोद , मोद मैजुल बिधु लीला ललित जुन्हैया ॥

०

०

आयास पाइ है जनम फल तीतरे बचन सुनैया ॥ १

तुलसी की वात्सल्यानुभूति कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर पायी है। उसमें राम की बाली चित क्रीड़ाओं के स्थान पर कौशल्या सुमित्रा की मातृ-मातृवृत्तियों का विश्लेषण अधिक है। कौशल्या के वात्सल्य भाव में भी बाल सुलभ स्वाभाविक स्वच्छन्दता का अभाव है । यही धारणा है कि राम के बालचरित का नैसर्गिक विकास कृष्ण के विकास की तरह तुलसीके काव्य में अप्राप्य है। राम की क्रीड़ा की विवेचना के स्थान पर माताओं का राम के प्रति भावाभिव्यक्ति, पिता दशरथ की राम से स्नेह की भावाभिव्यक्ति ही अधिक उत्कृष्ट रूप में विवेचित हुई है :

‘चुपरि उबटि बन्हवाळै नयन बाजि ,

१- तुलसी - गीतावली , बालकाण्ड पद ६

चिर रुचित तिलक गौराचन कियो है  
धूपर अक्षुप मसि बिन्दु, बारे बारे बार  
बिलसत सीस पर, हरि हरै हियो है ॥ १

० ०

सुजनन सादर जनम लाहु लियो है ॥

इसी प्रकार दशरथ की राम के प्रति वात्स-  
ल्यानुभूति का चित्रण -

‘ राम सिसु गौद महामौद भरे दशरथ  
कौशल्या ललकि लषणन लात लये हैं ।  
भरत सुमित्रा लये, कैकयी सवसुसमान ,  
तन प्रेन पुलक , मगन मन भये है ॥ २

दशरथ ने आनन्द ने भर कर श्रीराम को  
गौद में उठा लिया है। कौशल्या ने भी ललक कर लषणन को उठा लिया  
है। इसी प्रकार सुमित्रा ने भरत को तथा कैकयी ने शत्रुघ्न को गौद में ले लिया  
है । माता-पिता सभी का मन अत्यन्त प्रफुल्लता से भरा हुआ है।

इसी प्रकार हर्ष , अभिलाषा ; आत्सुक्य  
और गर्व की भावना के साथ साथ कौशल्या के मन में श्रीराम की बीमारी  
के कारण अमन से राम को देखकर चिन्ता भी व्याप्त हो जाती है। तुलसी-

१- तुलसी- गीतावली , बालकाण्ड पद १०

२- .. .. पद ११

दास के द्वारा कौशल्या की चिन्ता वास्तव में तुलसी की स्वयं<sup>की</sup> चिन्ता है। उन्हें अपने भावनाओं के पुंज में श्रीराम जनम से दिखाई पड़ते हैं। काव्य में प्रयुक्त विचार धारा कवि की अपनी ही विचारधारा होती है। कवि उस विचार को प्रस्फुटित करने के लिए चरित्र को माध्यम बना लेता है। जैसा कि डा० जगदीश गुप्त जी ने कहा है-

“ काव्य में अभिव्यक्त सभी भाव वास्तव में कवि द्वारा ही अनुभूत होते हैं। एकदशा में कवि अपने द्वारा अनुभूत भावों की वैयक्तिकता के आग्रह के साथ उत्तम पुरुष में ही अभिव्यक्त करता है और दूसरी दशा में अपने से स्तर कल्पित अथवा यथार्थ वस्तुओं तथा व्यक्तियों के माध्यम से ।<sup>१</sup>”

बाबु करसै हैं भीर के, पय पियत न नीके ।  
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने फुलावत हू, रोषत राम भेरी  
सौ सौच सबती के ॥  
देव , फिर, ग्रह पूजिये तुला तौलिये घीके  
तदपि कबहुँ कबहुँ ससो ऐसेहि वरत जब  
परत दृष्टि दुष्टनी के  
बेगि बोलि कूलगुर , हुबो माथे हाथ अभी के ॥ १

राम को जनम से देखकर कौशल्या की चिन्ता स्वभाविक ही है। वे इसलिए भी चिंतित हैं कि राम दूध भी नहीं पी रहे हैं, बैठने , खड़े होने और पालने में फुलाने से भी नहीं रहते, बराबर रो

१- डा० जगदीश गुप्त- कृष्ण भक्ति काव्य पृ० १५२

२- तुलसी- गीतावली - बालकाण्ड पद १२

रहे हैं। देव, ग्रह, पितर की पूजा तथा घृत का दान के पश्चात् भी किसी दुष्ट की दृष्टि पड़ जाने पर श्रीराम मचल जाते हैं। कौशल्या की राम की इस हालत को देखकर चिंतित होना मातृ हृदय की सरलता के साथ साथ मनी-वैज्ञानिक पक्ष की भी उद्घाटित करता है। वे साधारण माता की भाँति कृत गुरु को बुलाने का आग्रह करती हैं, जिससे उनके अमृतमय हाथों के स्पर्श से श्रीराम स्वस्थ हो जायें।

पुत्र को अमना देखकर जिस कौशल्या का हृदय चिन्ता से ग्रसित था, वही हृदय उस समय हर्षित हो उठता है जब वे देखती हैं कि मुनिवर ने राम के मस्तक पर हाथ रखता और वे क्लिन्न लगे। और मुनिवर के गोद में उठाने पर वे उनकी गोद से निकल कर, उतर कर भाग गये। यथा-

‘माथे हाथ ऋषि जब दियो राम क्लिन्न लागे  
महिमा समुक्ति लीला विलोकि गुरु सजल नयन तनु पुलक  
रौम रौम जागे ॥

लिर गोद, धार गोदतैं, मोद मुनि मन कुरागे  
निरसि मातु हरणी हिये आली ओट कहति मूढु बचन

०

०

मेरे विसेष्णि गति रावरी, तुलसी प्रसाद जाके सकल  
समगल भागे ॥’ १

राम के प्रति कौशल्या का वात्सल्य-वर्णन करने में तुलसीदास के नेत्रों के सन्मुख मातृ-हृदय का प्रत्येक कोना था, तभी

-----  
१- तुलसी - गीतावली पद १३ बालकाण्ड

ती वे राम के ऊपर मुनिवर के हाथ फिरने पर उनके स्वस्थ होने पर मातृ हृदय के हर्षित होने का स्वाभाविक चित्रण करने में सफल हुए हैं।

हर्षित होकर वे अपने भावों को किसी क्रिया के द्वारा उद्घाटित करने के साथ ही प्रफुल्ल होकर अपनी सखी से कहने लगती है-

'करि कृपा मुनिवर जब जौय ।

तवतैं राम बरु भरत, लखन, रिपुमदन, सुमुख सखि,

सकल सुवन सुख सै ॥' १

श्री राम की सुख की नींद में सोता देखकर माता के मन<sup>का</sup> प्रसन्नता समाप्त हो जाता है। वे सोचती हैं कि अब उनके पुत्र निरोग है।

मनुष्य मात्र का हृदय अपनी संतान की प्रशंसा सुनकर मयूर की भाँति नाच उठता है। वह स्वयं को बहुत ही भाग्यशाली समझता है। इस प्रसन्नता के अतिरेक में उनके शरीर में रोमांच हो जाता है। यही हालत राजा दशरथ एवं कौशल्या की भी हुई जब गुरुवर ने कहा-

'जयपि बुधि, वय, रूप, सील, गुन समै चारु चार्यो  
माई ।

तदपि लोक-लोचन-चकौर-सखि राम भगत सुखदाई' ॥ २

इन वचनों को सुनकर माता कौशल्या एवं

१- तुलसी - गीतावली पद १४

२- ... पद १६ बालकाण्ड



राजा दशरथ के हृदय का हर्षित होना, उस हर्ष के आवेग से रोमांचित होना क्या स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं ? इसी हर्ष के वातावरण में कौशल्या के हृदय में एक संशय भी उठता है कि कहीं उनके पुत्र फिर से अस्थिर न हो जायें, अतः जब उन्हें यह मालूम होता है कि अयोध्या में एक वागम जानने वाले आया है ( ज्योतिषी ) तो उसे अपने प्रासाद में बुला लेती है और उनका हाथ अपने पुत्रों के मस्तक पर रखवा कर आशीर्वाद प्राप्त करती है।

सूर की ही भाँति कौशल्या राम के मुस सौंदर्य का अमृत पान करके प्रत्येक क्षण प्रफुल्लित होती है। वे राम से कह उठती हैं, 'तुम पालने में पौढ़ जाओ मैं तुम्हें बुलाऊँ। तुम्हारे कर, चरण, मुस और नेत्र रूप कमनीय कमलों की निहाकर मैं अपने नयन रूप भ्रमरों को बुलाऊँ। तुम्हारे बाल केश के आनन्द रूप मैं मञ्जुल मणिके लिए मैं तुम्हारी किल्किनि ( हास्य ) रूप सानि बुलाऊँ और उन्हें अनुराग रूप तारों में पिरोने के लिए बुद्धि रूप मृगनयनी बुलाऊँ -

‘पोंढ़िये तालन , पालने हों बुलावों ।

कर पद मुस कमल लसत लसि लोचन भँवर बुलावों ।

बाल विनोद मोद मञ्जुलमनि किल्किनि सानि बुलावों ।

तेह अनुराग ताग गुहिवे कहँ मति मृग नयनि बुलावों’ ॥ २

राजरानी कौशल्या की वात्सल्य भावना यहीं तिरोहित नहीं होती। वे अपने पुत्र के बाल रूप माधुरी की तुलना चन्द्रमा की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कलावों से करती हुई षोडश कला निधान

१- तुलसीदास - गीतावली पद १७ बालकाण्ड

१-            , ,            , ,            १८            , ,

चन्द्रमा की उत्प्रेक्षा करती है। उनका अपना हृदय अपने बालक की चन्द्रमा के सौन्दर्य से युक्त मानता है। वे सोचने लगती हैं जिस प्रकार यह चाँद सभी कलाओं से भरपूर एवं सौंदर्य से भरपूर है, उसी प्रकार उनका पुत्र भी सुंदर है। यहाँ मातृ-वात्सल्य का मनोवैज्ञानिक पक्ष देने में तुलसी ने स्वयं मनो-विज्ञान के ज्ञाता होने का परिचय दिया है। प्रत्येक माँ अपने पुत्र को सुन्दर ही मानती है- पालने में फुलाती हुई कौशल्या सोचती है-

‘पालने रघुपति फुलावै ।

तै तै नाम सप्रेम सरस स्वर कौशल्या कल कीरति गावै ।

कौ किंकठ दुति स्याम बरन बपु, बाल विभूषन बिँचि बनाए ।

कलक कूटल , ललित लटकन भू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ।

सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव लाए ।

मनहु सुभग जुग भुजग जलज भरि लैत सुधा ससि सौँ सवुपाए ।

उपर कूप विलोकि खेलौना कितकत पुनि पुनि पानि पसारत ।

मनहुँ उभय कंभोज बरुन सौँ विधु भय विनय करत बति वारत’<sup>१</sup>।

हर्ष , अभिलाषा , आत्सुक्य एवं गर्व की

भावना संयोग की सुखानुभूति को हृदय में अधिक तीव्र करती है। किन्तु तुलसी की गीतावली में वात्सल्य की भावनाओं को तीव्र करने वाले सभी भाव प्रायः पर्यादित सीमाओं में बंधे हैं। इन परिसीमाओं के फलस्वरूप कौशल्या की वात्सल्यगत अनुभूतियों में न सूर की यशोदा की अभिव्यक्ति का ही रूप है और न कौशल्या की विविध विश्लेषणात्मक आवृत्ति का ही चित्रण है।

तुलसी के राम की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं में पर्यादित रूप के फलस्वरूप वह स्वच्छन्दता अथवा स्वाभाविकता का अभाव है जो कृष्ण के बाल रूप में

विशेषकर सूर के काव्य में प्राप्त होता है। तुलसी के काव्य के बालम्बन राम

१- तुलसीदास- गीतावली, पद २३, बालकांड

की बाली चित श्रीदाजी की याद की तरह मैं कौशल्या की स्मृति में राम की ब्रह्म रूप<sup>०</sup> अविच्छिन्न राज्य है। यही कारण है, गीतावली में वात्सल्य-चित्रण की मात्रा अपेक्षात होते हुए भी राम का नैसर्गिक रूप अप्राप्य है। कौशल्या अपने पुत्र की सुलाना चाह रही है- सामान्य माता की तरह कह उठती है लाल ला दिते तुम (।) सौ जावो । लेकिन तभी उनके मस्तिष्क में यह विचार उठता है कि तुम तो सभी के जीवन में सब प्रकार के मंगल देने वाले हो ।  
यथा-

‘सौइये लाल ला दिते रघुराई ।

मगन मोद लिए गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई ।  
हंस हंसता , अरसे अरसत प्रति बिबनि ज्यों फाई ।  
तुम सकल जीवन के जीवन, सकल सुमंगल दाई ।  
मूल मूल सुर बीधि बैलि तम तौम सुदल अधिकाई ।  
नखत सुप्त नम बिटम बौडि मनोक्या छिटकि इवि लाई ।  
हौं जैमात , जलसात, तात । तेरी बानि जानि मैं पाई ।  
गाए गाइ हलराए बो लिहौं सुल नींदरी सुहाई ॥  
बहरु इगीली इगन मगन मेरे, कहति मल्हाइ मल्हाई ॥  
सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई ॥’

उपर्युक्त पद में ‘तात’ शब्द यद्यपि छोटी

के लिए स्नेह युक्त सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त होता है किन्तु रुढ़िगत रूप में यह शब्द ‘फिता’ वगैरा भाई के लिए ही प्रयोग होता है। कौशल्या के द्वारा अपने ही पुत्र के लिए प्रयुक्त यह सम्बोधन स्वाभाविकता के स्थान पर इतिवृत्तात्मक रूप प्रदर्शित करता है। इन शब्दों के प्रयोग के फलस्वरूप

ही ऐसा प्रतीत होता है भावों का शल्या माता न होकर परमब्रह्म राम की उपासिका है। राम का भाव्यों सहित यह भाव जिसमें राम की क्लृप्ता निद्रा की कुछ चेष्टायें तुलसी को प्रभावित करती हैं तथा उनके हृदय में बाल-भाव का संचार करते हैं। यथा- यहाँ कहा जा सकता है कि राम के क्लृप्ता-किंक ब्रह्म के रूप पर जितना ही तुलसी वासवत है उतना ही कांशल्या को भी वासवत दिसाना चाहते हैं। यथा- इस प्रकार तुलसी ने मातृ-हृदय को प्रभावित पर न्यायवाचक करने का प्रयास किया है :

‘सलन लौने ले रुवा बलि मैया ।

सुस सौइर नीद बेरिया मई, चारु चरित चार्यौ मैया ।

तुलसी दुहि पीवित सुस जीवित पद सप्रेम की घैया ॥’ १

‘गीतावली’ में किसी-किसी स्थल पर तुलसी ब्रह्म के निकट हैं। पालने में झुलते हुए, घुटनों चलते, दौड़ते हुए राम का मोहारी रूप भी प्राप्त होता है। राम का लावण्यमयी रूप माता-पिता के हृदय में असीम आनन्द का उद्गार करता है किन्तु यह भी उतना ही सही है कि ऐश्वर्यपूर्ण चित्रों के समावेश के फलस्वरूप राम का बाल-वर्णन उतना सहज रूप में प्रतिबिम्बित नहीं होता जितना कृष्ण का वर्णन, जहाँ नन्द यशोदा के बाल्यानुभूति के सहज रूप का प्रदर्शन हर क्षण होता है।

‘पालने रघुपति झुलावे

ले ले नाम सप्रेम सरस स्वर ,

कांशल्या कल कीरति गावे ॥’ २

अथवा

१- तुलसी - गीतावली बालकाण्ड पद २०

२-                   ..                   ..                   पद २३

‘भूतल राम पालने सोहै । भूरि भाग जननी जन जोहै’ ॥१

रामचन्द्र के ऐश्वर्य मय रूप का वर्णन तुलसी काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। अंगन में रामचन्द्र जी घुटनों के बल बौढ़ रहे हैं । तुलसी स्वयं उनकी कवि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रघुनाथ जी की बाल-कवि सुस की सीमा और करौड़ों कामदेव की शोभा का हरण करने वाली है।

गीतावली में रामचन्द्र जी का संपूर्ण बाल-वर्णन प्रायः संयोग वात्सल्य पर ही आधारित है। माता-पिता रामचन्द्र जी की कङ्कणपट्टिकाओं में सिलाते हैं, कौशल्या उन्हें सेज पर सुलाती हैं, तेल उबटन लगाती हैं, नहलाती हैं, सजाती हैं, पालने में भूलाती हैं, बंगुली फड़ कर चलना सिखाती हैं, हुलारती हैं, चुटकी बजा बजा कर नचाती हैं। केवल कौशल्या ही नहीं वरन् सभी माताएँ उनकी क्रीड़ाओं को देखकर वानन्दित होती हैं।

राम की बाल-कैलि सभी माताओं के मन को उल्लसित करती है।

‘ललित सुतहि लालति सनु पाये ।

कौशल्या कल कनक वजिर मई सिस्वति चलन बंगुरियाँ लाये ।

किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाये ।

गिरि छुट्ठवनि टैकि उठि कुजनि तौतरि बोलत पूय देसाये ।

बाल कैलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन वानंद न वमाये’ ॥३

१- तुलसी - गीतावली , बालकाण्ड पद २६

२- “ पद २७

३- “ पद ३२

‘मम मोहनी तोतरी बोलनि सुनिमन हरनि दैसनि कितक निया  
 बाल सुभाय विलोल विमोचन चौरति चितहि चारु चित-  
 वनिया

सुनि कुलबधू भरोसनि मरि किति रामचंद कवि चंद बदनिया  
 तुलसीदास प्रभु दैसि मगन महं प्रेम बिबस कहु सुधि न बंद-  
 निया’ ॥ १

यद्यपि वात्सल्य-भावों के प्रदर्शन में तुलसीदास ने राम के बाल सौंदर्य का भी वर्णन किया है : तथा उनका बाल-सौंदर्य वर्णन प्रायः संश्लिष्ट चित्राकन के रूप में ही प्रस्तुत हुआ है। जैसे निम्न लि-  
 स्त पद में -

‘कौटिरे धनुहिया, फाहिया फानि कौटी,  
 कौटिर ककौटी कटि, कौटिर तरुसी ।  
 लसत फंगुली फीनी, दामिनि कवि कीनी,  
 सुन्दर बदन, सिर पगिया जरुसी ॥  
 बय कुहरत बिभूषन बिचित्र वंग,  
 जोहि बिय आवति सनेह की सरुसी ।  
 मूरति की मूरति कही न परै तुलसी पे ,  
 जानै सोई जाके उर कसकै करु सी’ ॥ २

तुलसीदास ने उपर्युक्त पद में रामचन्द्र की

१- तुलसीदास- गीतावली , बालकाण्ड पद ३४

२- .. पद ४४

बाल<sup>पुन</sup> में शर क्रिया की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। उनके सौन्दर्य को विभिन्न प्रकार के वाभूषण द्विगुणित कर रहे हैं। विभिन्न क्लृप्ताओं के प्रयोग के फल-स्वरूप राम का निसर्ग-सौन्दर्य वर्णनातीत है। अतः राम के रूपावण्य को अनुभव मात्र किया जा सकता है, उसका वर्णन किसी भी प्रकार संभव नहीं है। यह बात स्वयं तुलसीदास ने भी अंतिम दो पंक्तियों में स्वीकार किया है। अपनी वर्णनात्मक असमर्थता को प्रकट करके कवि तुलसीदास ने राम के सौन्दर्य को अधिक ही मौमुग्धकारिरूप दे दिया है।

बाल-वर्णन के प्रसंग में तुलसीदास ने रामचन्द्र की सेतु झीड़ा का वर्णन किया है। राम की विभिन्न झीड़ाओं के वर्णन में तुलसी काव्य में एक विशिष्ट<sup>ता</sup> की झलक मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो अपने अक्षय में इस सेतु का गुण देखकर उनके मन में एक विशेष प्रकार की आनन्ददायक पूज्य मर्यादित भाव उदित होता है। फलस्वरूप एक ओर जहाँ वे उनके बालपन का वर्णन करते समय सचेत रहे हैं कि वे जिनका वर्णन कर रहे हैं वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, उन्हें कृष्ण की तरह बाल भिखारी मास-चोरी कृपा बालाओं से झेड़बाड़ से परहेज है, वहीं बाल स्वभाववश वे स्काध बार गोली, मीरा और ककड़ी की सेतु भी लेते हैं। परन्तु ये सेतु उनके दृष्ट सेतु नहीं हैं। इसीलिए 'गीतावली' के राम चौगान, वासेट, तथा शर-झीड़ा में अधिक रुचि रखते हैं क्योंकि वागे चलकर उन्हें राजासाँ का वध करना है।

‘कवितावली’ शैली की दृष्टि से महत्त्व-

पूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। वात्सल्य-भावना के वर्णन में तुलसी का मन प्रारम्भ के बालकाण्ड के कुछ पदों में ही सिमिट कर गया है। राम के बाल-रूप का वर्णन प्रारम्भ के सात पदों में ही प्राप्त होता है। इन पदों के माध्यम से कवि तुलसी ने राम के बाल-सौन्दर्य की विवेचना की है। कवितावली का प्रथम पद ही राम के बाल-सौन्दर्य की उद्घाटित करता है :

‘वधैस के दारें सफारें गई सुत  
गोद के भूपति से निकसे ।  
कवलो कि हौं सोच बिमोचन को  
ठगि सी रही, ने न ठगेधिक से  
तुलसी मन रैन रंजित-जैन  
नैन सुसैन-जातक से ।  
सजनी ससि में समसील उभै ,  
नवनील सरीरुह से किसै’ ॥ १

श्री राम के बाल-रूप का वर्णन कवि ने कवितावली के प्रारम्भिक तीन पदों में किया है, जिनके द्वारा राम का शिशु रूप विभिन्न उपमाओं के प्रयोग से अत्यन्त मनोहारी हो गया है। राम की बाल-रूप कवि तुलसी के हृदय में सदैव बिहार करे, यही तुलसी की कामना है।

‘कवितावली’ में राम की बाल-क्रीड़ा से सम्बन्धित कुछ पद हैं, जिनमें भावों का वाकलन अत्यन्त मार्मिकता के साथ

-----

१- तुलसी- कवितावली पद १ पृ० ५

२- .. पद २, ३, पृ० ६



हुवा है। बालहठ सर्वविदित है। तुलसी के राम भी सामान्य बालक की भाँति चन्द्रमा माँगने का ढ़र कर बैठते हैं। यथा-

‘कबहुँ ससि माँगत वारि करै कबहुँ प्रतिबिम्ब निहारि डरै ।  
कबहुँ करताल बजाऊँ नाचत मातु सबै मममोद भरै ॥  
कबहुँ रिसिवाह कहै हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि वरै’ ॥१

‘कवितावली’ में तुलसी का मन रामचन्द्र की विविध बालक्रीडा से अधिक उनके बाल-सौन्दर्य वर्णन में रमा है। जैसे-

‘बर दन की फाँति कुंदकली कधराधर पल्लव लोलन की ।  
चपला चम्कै घन बीच जगै इबि मोतिन माल कमोलन की ।  
घुँघुरारि लटै लटकै मुख ऊपर कुँडल लोल कपोलन की  
नेवकावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला हन बोलन की’ ॥२

तुलसीदास जी का विचार है कि यदि राम चन्द्र जी के बालरूप पर मोहित होकर उनसे स्नेह नहीं हुआ तो तप, योग समाधि आदि मिथ्या है ।

‘कवितावली’ में तुलसीदास जी ने बालक के हृदय की विनोदप्रियता का भी वर्णन किया है। इसका दर्शन हमें लंका काण्ड में उस अवसर पर होता है जब बन्दर की लम्बी पूँछ में कपड़े बांधके देते हैं।

१- तुलसीदास- कवितावली, बालकाण्ड पृ० ७ पद ४

२-                    ६,                    पृ० ७ पद ६

३-                    ११,                    पृ० ४३ पद ४

बालकों की इस वैचल्यता का उत्तर हनुमान जी भी अपनी ही तरह देते हैं। हनुमान जी के। इस कृष्ण के मनुष्य के हृदय की सभी भावनारं, वाक्यान्तारं समाप्त हो गईं। वह हृदय जो सदैव अपनी सन्तान की चिन्ता में लिप्त रहता था, वह निर्लिप्त हो गया। यही भावना प्रत्येक के हृदय में आ गई कि किसी भी तरह प्राण बच जायें। यथा-

‘लागि लागि जागि भागि भागि चले जहाँ तहाँ,  
धीय को न माय, बाय पूत न संभारखी,  
छूटे बार, बसन उधारे, घूम धुंध कंध,  
कहे बारे बूढ़े, ‘बारि बारि’ बार बारहीं॥  
हय हिस्नात भागे जात, धहरात गज,  
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि सौंदि डारहीं॥  
नाम लै चिलात, बिललात कृलात अति,  
तात, तात। तौंसियत फौंसियत फारहीं॥ १

तुलसीदास कृत ‘बरवै रामायण’ में राम की शिशु-लीला का अत्यन्त मार्मिक रूप चित्रित है। कवि ने राम के दानविय बाल-रूप का दर्शन मात्र करके अपने हृदय की वत्सल-भावना का परिचय दिया है :

‘सकि धनुष हित सिलन, सकुच प्रभु लीन।  
सुदिन मांगि सक धनुहीं, नृप हंसि दीन॥’ २

‘जानकी मंगल’ में कवि ने दिव्य रूप की

१- तुलसीदास - कवितावली, सुन्दरकाण्ड पृ० ५० पद १५

२- ,, बरवै रामायण पृ० १८

परिकल्पना की है। राम स्व लक्षण के शिशु रूप का वर्णन सर्वप्रथम कवि ने इस  
 अवसर पर वर्णित किया है, जब वे विश्वामित्र के वात्रम पर जा रहे थे। तुलसी  
 दास की लेखनी ने राम स्व लक्षण के रूप का चित्रांकन इस प्रकार किया है कि  
 पाठक उस रूप को अपने अचेतन में देखने का प्रयास करने लगता है। यथा-

‘गिरि तरु बैलि सरित सर, बिपुल बिलीकहि ।  
 धावहि बाल सुभाउ, बिहंग मृग रोकहि ।  
 सकुचहि मुनिहि समीत, बहुरि फिर जावहि ।  
 तीरि फूल फल किसलय, माल बनावहि’ ॥ १

रामचन्द्र के रूप पर तुलसी दास ही नहीं  
 माता जानकी भी मोहित है। वे रामचन्द्र को सीता के भावी दामाद के  
 रूप में प्राप्त करने को लालायित हो जाती है। पुत्री के भावी सुल की वाक्यांश  
 से <sup>मुक्त</sup> माता के स्नेहासित हृदय का स्वाभाविक चित्र जानकी मंगल में वर्णित है :

‘सिय मातु हरणी निरसि सुखमा,  
 बति क्लौकिक राम की’ ॥ २

माता के साथ साथ पिता के हर्ष का भी  
 वर्णन जानकी मंगल में प्राप्त होता है, लेकिन धनुष की कठोरता देखकर  
 पिता जनक के हृदय में विषाद की भावना उत्पन्न होती है। जैसे-

‘देसि सुपर परिवार जनक हिय हारेहु ॥’ ३

देव वश धनुष टूट जाता है और सीता के

१- रामचन्द्र शुक्ल- जानकी मंगल - तुलसी ग्रन्थावली पृ० ४१

२- .. .. . पृ० ४१

विवाह की शुभ घड़ी वा जाती है। इस शुभ अवसर पर माता-पिता दोनों ही वात्सल्य भावना से भर जाते हैं। वे प्रसन्नता से कन्यादान के विधान हेतु भारतीय संस्कृति का निर्वाह करते हैं। पिता की स्नेहित भावना का अत्यन्त सहज परिपाक जानकी मंगल में प्राप्य है। यथा-

‘वगिनि थापि मिथितेऽकृसौदक लीन्देऽ ।

कन्यादान विधान संकल्प कीन्देऽ ॥ १

इस शुभ अवसर पर माता का हृदय भी पिता की तरह कन्या के प्रति वात्सल्य की भावना से वीत प्रीत है। उदाहरण-

‘सीय मातु मा मुदित उतारतिय वारति ।

को कहि सकइ कौंद गगन भाइ भारति ॥ २

जहाँ स्क और जनकपुरी में राम सीता के विवाह के संयोग के सुखद वर्णन में सीता के माता-पिता के वात्सल्य का वर्णन, उनकी स्नेहित अभिव्यक्ति का चित्रण है, वहीं राम एवं सीता के विवाह के पश्चात् कयोध्या में मातारं अपने पुत्रों का मंगलमय वेश देस कर हर्षित होती हैं। यथा-

‘बधुन्ह सहित सुत चारिउ मातु निहारहि ।

बारहि बार वारती मुदित उतारहि ॥ ३

जानकी मंगल की ही तरह ‘पार्वती मंगल’

१- तुलसीदास - जानकी मंगल पृ० ५०

२- वही पृ० ५०

३- वही पृ० ५३

‘पितु मातु प्रिय परिवार हरणहिं, निरसि पालहि लालही ।  
सित पास बाढ़ति चन्द्रिका , जतु वन्दे मूषण मालही’ ॥ १

उमा की बारात जाने पर(मैना की व्याकुलता को परिलक्षित करके) अपनी पुत्री के स्नेह का स्मरण करके व्याकुल हो जाती है। उनके हृदय में इस स्मरण मात्र से वात्सल्य भावना का उद्रेक होता है।  
उदाहरणतया -

‘महं विकल वबला सकल, दुस्ति वैलि गिरिनारि ॥  
करि बिलापु रोदति बदति सुता स्नेहु सैभारि’ ॥ २

माता की व्याकुलता को देखकर उमा का हृदय भी व्याकुल हो जाता है। यथा-

‘जननीहिं बिल बिलो कि भवानी ।। ३

वे माता को धैर्य बंधाती है । प्रत्येक पुत्र  
बचवा पुत्री माता- पिता की व्याकुलता का निवारण उन्हें धैर्य देकर ही

- १- रामचन्द्र सुवल- तुलसी ग्रन्थावली पृ० २५  
२- तुलसीदास - रामचरित मानस पृ० १०० दोहा १२०  
३- .. .. पृ० १०० दो० १२०

करने का प्रयास करते हैं। इतना ही नहीं जब वे अपनी माता की शीतल  
झाँह को छोड़कर पति गृह जाती है तो उनके हृदय में माता के प्रति स्नेह,  
प्रेम का सागर लहरें ले रहा था, वे विकल होकर माता सेबार बार मिलती  
है। यथा-

‘पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना,  
परम प्रेम कहु जाइ न बरना ॥’ १

माता भी उमा की व्याकुलता एवं अपने  
हृदय की वाकुलता को शिव जी के सन्मुख एक साधारण माता के सदृश प्रकट  
करती है :

‘नाथ उमा मम भान सम गृह किरी कोहु ।  
कमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न वर देहु ॥’ २

पार्वती की माता से जब नारद जी भविष्य-  
वाणी के द्वारा शंकर जी की कठोरता का वर्णन करते हैं, तब स्वभावतः  
माता मैना का हृदय वात्सल्य-भाव से भर कर व्याकुल हो जाता है कि कहीं  
ऐसा न हो जाय कि लड़की का विवाह ही न हो । वे व्याकुलता की अवस्था  
में अपने पति से कहती है। यथा-

‘जौ घर बरु कुल होइ कनूपा । करिय विवाह सुता कनूपा ।  
न तु कन्या बरु रहै कुंवारी । कौत उमा मम प्रान पियारी ॥’ ३

भारतीय संस्कृति में कन्या का विवाह वति

१- तुलसीदास - रामचरित मानस पृ० १०६ दोहा १२५

२-                    ,,                    ,,                    ,, १०५ दोहा १२५

३-                    ,,                    ,,                    ,, ७६ दोहा ६४ चौ० २

वावश्यक है। वात्सल्य के प्रति इसी भावना का परिपाक उपरोक्त चौपाई में हुवा है। मातृ-हृदय की वात्सल्य-भावना का वह रूप जिसमें पुत्री के दुःख की कल्पना मात्र से हृदय तड़प उठता है, उसका उत्कृष्ट चित्र तुलसी ने मैना के माध्यम से वर्णित किया है। वे पुत्री कष्ट के स्मरण मात्र से घबड़ा उठती है, स्नेह से उनका हृदय द्रवित हो जाता है। वे पुत्री को कभी गोद में उठाती है, कभी गले से लगाती है। उदाहरण -

‘उमहिं बिलोकि नयन भरि बारी । सहित स्नेह गौद बैठारी ।  
बारहिं बार लेति उर लाई । गद गदकंठ न कहू कहि जाई ॥१

मानव-प्रकृति होती है कि वह दूसरों के दूसरों के दुःख को देखकर विकल हो जाता है। इसका कारण यही होता है कि वह स्वयं को उस परिस्थिति विशेष में रखकर दूसरे व्यक्ति के हृदय की व्याकुलता का विवेचन करता है।

प्रेम सदैव विरह के तप में ही अपने रूप में प्रकट होता है। वात्सल्य-भावना का वियोगी रूप भी सदैव बालक की अल्पस्थिति में दृष्टिगोचर होता है। सीता को जब धन धान्य देकर राजा जनक अयोध्या विदा करने की तैयारी करने लगे, तब इस समाचार को सुनकर महल की सभी रानियाँ मछली की तरह तड़पने लगी। साथ ही सीता को अनेक प्रकार के उपदेश देकर बार बार हृदय से लगाने लगीं। इस वियोगजन्य वात्सल्य युक्त भावना को ‘रामचरित मानस’ में तुलसीदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

‘सब समाजु एहि माँति बनाई ।

जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ।  
 चलिहि बरात सुनत सब रानी ।  
 विकल मीनगत जनु लघु पानी ॥  
 पुनि पुनि सीय गौद करि लेही ।  
 देखैं वसीस सिंहावन देही ॥ १

राम-विवाह के संदर्भ में तुलसीने एक वीर जहाँ  
 माता जानकी की बेटी को बिदा करने पर विरह भाव की व्यंजना करके अपनी  
 वत्सल-भावना का परिचय दिया, वहीं सीता के अयोध्या पहुँचने पर राम की  
 माताजी का दर्शन भी चित्रित किया है। अपने पुत्र के प्रेमानुराग में मरी माताजी  
 की भावनाओं का वर्णन करने में तुलसी स्वयं की वसमर्थ पाते हैं। उक्त कह उठते  
 हैं :

करहि जाती बारहि बारा ।  
 प्रेम प्रमोद कहह को पारा ॥ २

मानव का मन अपनी वात्सल्य जन्य भावनाओं  
 के कोमल दाणों में वत्सलमय हो जाता है। एक माता किसी भी बालक को  
 देखकर ... बालक के प्रति उसकी माता की ही समान वात्सल्य-भावनाओं से  
 युक्त होती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को दृष्टिगत करते हुए तुलसी ने 'राम-  
 चरित मानस' में राम के प्रति कौशल्या का ही नहीं अन्य माताओं की अनु-  
 भूति का चित्रण किया है। इसी प्रकार कौशल्या का राम के प्रति ही नहीं,

१- तुलसी- रामचरित मानस दो० ३६६ चौ० १-२ बालकाण्ड पृ० ३२४

२- .. .. दो० ३८१ चौ० १ पृ० ३३७



भरत , शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण के प्रति कुराग भी प्रदर्शित किया है। पुरु  
वियोग की भावना से भरी कौशल्या के सम्मुख भरत जी जैसे प्रकार से उन्हें  
यह विश्वास दिलाते हैं कि राम-वनगमन में उनका किंचित् भी दोष नहीं ,  
तब कौशल्या का हृदय वात्सल्य<sup>प्र</sup> ही उठता है क्योंकि वे स्वयं जानती हैं कि  
भरत निर्दोष है, वे तो राम की अत्यधिक स्नेह करते हैं और राम भी मन,  
वचन, काया से रामचन्द्र के प्यारे ही । भरत को सम्झाते सम्झाते माता  
कौशल्या भावनाओं के अतिरेक<sup>में</sup> स्वयं रोने लगीं । उन्होंने भरत को छाती से  
लगा लिया । इस समय परिस्थितिवश कौशल्या राम की स्मृति में अपनी  
वर्धिका लिप्त थी कि उनके स्तनों से दूध बहने लगा । इस चित्र को तुलसी  
दास ने इन शब्दों में किया है :

असकहि मातु भरतु हिय लाये ।  
धन पय प्रवहिं नयन जल ढाये ।  
करत विलाप बहुत रहि भाँती ।  
बैठेहि बीति गई सब राती ॥ १

उपरोक्त चौपाई राम के विरह की व्याप्ता में  
व्याकृत कौशल्या का तुलसी दास ने बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है,  
राम की अनुभूतिजन्य व्याकृतता एवं संयोग सुख की अभावजन्य चेतना से कौशल्या  
के हृदय पर वात्सल्य की भावना आच्छादित है। तुलसीदास ने कौशल्या की  
विरह वेदना के साथ साथ राजा दशरथ के हृदय की तड़प का चित्र भी अपनी  
लेखनी के चमत्कार से अभिव्यंजित किया है। राजा दशरथ के वियोग की स्थिति  
का वर्णन राम-वन-गमन के संदर्भ में विशेष रूप से वर्णित हुआ है, जहाँ दशरथ  
के पिता के रूप में वियोगी, विकल, विह्वल चित्र प्राप्त होता है। राम-वन-



राम उठाइ मातु उर लाई ।  
कहि मृदु वचन बहुरि समझाई ॥<sup>१</sup>

घर के परिवेश से दूर निकलने के लिये राम पिता के पास पहुँचे। राम के भग्न की ओर दृष्टि की दशरथ सुनते हैं। जब राम दशरथ के चरणों का स्पर्श करते हैं तो उन्हें अत्यधिक व्याकुलता होती है। वे वात्सल्य की भावना से भर कर अत्यधिक विह्वलता से राम को गोले लगा लेते हैं। उनकी वत्सल-भावना को कवि तुलसी ने सब्दों में प्रकट किया है-

लिये सनेह विकल उर लाई ।  
गई मनि मन्ह फनिहू फिरि पाई ।  
रामहि चितइ रहै नरनाहू ।  
चला विलोचन बारि प्रनाहू ।  
सोक बिबरा कहू कहइ नयारा ।  
हृदय लगावत बारहि नारा ।  
विधिहि माव राज म माही ।  
नेहिं रघुनाथ न कानन जाही ॥ १

पुत्र के वनगमन का समाचार सुन कर माता कौशल्या की दशाउस मक्ली के सदृश हो जाती है जो बरसात में रोग से पीड़ित होकर तड़पती है। मातृ-हृदय के इस बाधात के वर्णन में तुलसीदास ने स्तम्भ एवं विषाद आदि संचारी भावों के सहयोग से वात्सल्य भावना

१- तुलसीदास - रामचरितमानस - अयोध्याकाण्ड, दो. ५७, अ. ४ पृ. ४०३

२- तुलसीदास - रामचरित मानस - अयोध्या काण्ड दोहा ४४ पृ. ३६१

का चित्र वंशित किया है। उदाहरण -

बचन विनीत मधुर रघुवर के ।  
 सरसमय लगे मातु उर करके ॥  
 सहमि सुखि सुनि स्तित बानी ।  
 जिमि बवास परे पावस पानी ॥  
 कहि न जाई कहु हृदय विषाद ।  
 मरहु मृगी सुनि केहरि नाद ॥  
 नयन सजल तन थर थर काँपी ।  
 माँबहि साह मीन जल मापी ॥ १

माता कौशल्या अपनी वात्सल्य-भावना के कर्तव्यपरायणता के परिप्रेक्ष्य में दबा लेती है और रामचन्द्र को कर्तव्य के निर्वाह के लिए प्रेरित करती है। कौशल्या की ही भाँति सुमित्रा के हृदय में भी कर्तव्य की भावना का समावेश होता है, फलस्वरूप वात्सल्य की भावना कुछ दबी सी प्रतीत होती है। कौशल्या अपनी हृदय का विषाद प्रकट भी कर देती है, किन्तु सुमित्रा अपने अन्तर्द्वन्द्व को झिपा कर धीरज से काम लेती है और तत्काल लक्ष्मण से कहती हैं -

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते ।  
सब मानि आहि राम के नाते ॥  
वस जिय जानि संग बन जाहू ।  
तेह जात बग बीवन लाहू ॥ २

१- तुलसीदास - रामचरित मानस - कव्योप्याकाण्ड बौहा ५४ पृ० ४००

२-            ..                                 ..                                 दोहा ७४ पृ० ४१७

उपर्युक्त चौपाय्यों में स्नेह पारस्परिक सम्बन्धों, एवं कर्तव्य के बीच धैर्य युक्त भावनाओं का संगीतमय चित्रण ही तुलसी का वादश चित्रण है। यही भारतीय माता के हृदय के उज्ज्वल चित्र का प्रतिबिम्बित करता है।

राजा दशरथ के हृदय में राम के प्रति अगाध प्रेम का चित्र प्रस्तुत करने के लिए तुलसी से राम वन गमन प्रसंग के अवसर पर दशरथ के हृदय की मार्मिक एक हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत कीया है। उस वातावरण को स्नेह के, वात्सल्य के रंग में रंगने में तुलसी पूर्णरूप से सफल हैं। राम के राजतिलक का शुभ समाचार लेकर राजा दशरथ कैकेयी के महल में जाते हैं, किन्तु कैकेयी के दोनों वरदानों को सुनकर उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। पत्थर के सदृश्य जड़ हो जाते हैं। उदाहरण-

सुनि मृदु वचन भूय हिय सौकू ।  
ससि कह छुक्त निमि कोकू ॥  
गयब सहिमि नहि कृत् कहि जावा ।  
जनु सचान बन फुपटऊ लावा ॥  
विवरन भयऊ निष्ट नर पावू ।  
दामिनि हरेऊ माहु तरु तावू ॥ १

राजा दशरथ पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न को तथा कौशल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा को एक दृष्टि से देखते थे।  
अतः उनका समानदर्शी हृदय राम के प्रति इस अन्याय को देखकर विलस उठता है। वे कहते हैं राम एवं भरत दो नेत्र के सदृश हैं। राम को राज का लीम

भी नहीं है। कतः कैकयी भरत को राजगद्दी अवश्य मिलेगी, किन्तु राम-वन-गमन की बात को वापस ले लें, कैकयी के न मानने पर वे पुत्र वियोग की वागामी स्थिति की स्मृति में ही मूर्च्छित हो जाते हैं। उनके नेत्र भाषा-मिव्यक्ति के लिए स्वयंमेव बहने लगते हैं। 'रामचरित मानस' का यह दृश्य अत्यन्त मार्मिक है। इस परिस्थिति में दशरथ कुछ भी कर सकने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। वे भगवान् शंकर तथा ब्रह्मा से प्रार्थना करते हैं कि राम उनके वचनों को न माने, अयोध्या में ही रहे-

‘बचन मोर तजि रहहि घर परिहरि सीतु सनेहु’ ॥ १

वे समाज, नरक कथा कपयश की बात नहीं सोच पाते, केवल रामचन्द्र को अपने नेत्रों से दूर होने नहीं देना चाहते।  
उदाहरण-

‘कस होउ जग मुजसु न साऊ ।  
नरक परी बरु सुरपुर जाऊ ॥  
सब दुस दुसह सहायहु मोही ।  
लौचन ओट राम जनि हो ही ॥ १

तुलसी के वात्सल्य चित्रण में संयोग पदा  
। इतना प्रबल नहीं है जितना वियोग पदा । उदयमानु सिंह जी ने इस विषय में कहा है-

“ तुलसी के वात्सल्य के सम्बन्ध में यह कहा

१- तुलसी- रामचरित मानस - अयोध्याकाण्ड दोहा ४४

२- वही

“ ” ४४

जा सकता है कि पुत्र प्रेम का धारा माता-पिता के हृदय में वतिशय प्रबल है। वात्सल्य-भाव का संयोग-पदा इतना सघन नहीं जितना वियोग पदा ।<sup>१००</sup>

तुलसीदास ने राम विरह से व्याकुल दशरथ के हृदयगत भावों की वाणी के माध्यम से अधिक नहीं व्यक्त किया है। दुःख के वतिके से वे मुच्छिन्न हो जाते हैं और ईश्वर से विनती करते हैं कि उनके प्राण निकल जाये, राजा दशरथ की राम-<sup>वन-</sup>गमन का जब समाचार मिलता है तब उनकी स्थिति का वर्णन तुलसी काव्य का मार्मिक स्थल है। यथा-

गहं सुरुद्धा तब भूपति जागे ।  
बोले सुमति कहन वस लागे ॥  
राम बले वन प्रान न जाही ।  
कहि सुख लागि रहत तन माही ॥  
रहि तैं कवन व्यथा बलवाना ।  
जो दुख पाइ जिहि तनु माना ॥ २

कौशल्या दशरथ, सुमित्रा की वात्सल्यानु-भूति की कथा के पश्चात् सीता के प्रति कौशल्या के हृदय की भावनाओं का चित्र व्यक्त भावित करता है। राम के साथ ही सीता भी वन जाना चाहती है। सीता इससमाचार को कह नहीं पाती। उनके नेत्र ही इस बात को कह देते हैं। कौशल्या के हृदय पर सीता की इच्छा जानकर सीता का विछोह भी उन्हें सहना पड़ेगा। अश्रुपूरित शील पर नेत्रों को देखकर कौशल्या सीता के हृदय की भावनाओं को समझ जाती है। उनके हृदय में एक टीस सी उठती है कि वे इस सुन्दर युगल जोड़ी को पता नहीं कभी देस भी पायेंगी

१- डा० उदयभानु सिंह- तुलसी काव्य मीमांसा पृ० ४६१

२- तुलसी- मानस दौ० ८१ चौ० ४

या नहीं , फता नहीं वे जब राम वन से जायेंगे तब तक वे जीवित रहेंगी  
कथा नहीं -

‘फिरिहि दसा बिधि बहुरिहि मोरी ।

देसिहूँ नयन मोहर जोरी ।

सुदिन सुधरी तात कब होइहि ।

जननी प्रियत वदन बिभु होइहि ।

बहुरि बचु कहि लातु कहि ।

रघुपति रघुवर तात ।

कबहुँ बीलाइ लगाइ हिय हरणि निरणि गात’ ॥ १

काँशल्या की विरह-युक्त भावना का चित्रण  
‘मानस’ के अतिरिक्त ‘गीतावली’ में भी प्राप्त होता है। ‘गीतावली’  
काव्य में यद्यपि कथा को उस तारतम्य से विस्तार न होकर, राम की  
विविध लीलाओं के चित्र प्राप्त होते हैं तथापि तुलसी ने राम जीवन से  
सम्बन्धित उन सभी कथानकों को सूक्ष्म रूप से लिया है, जिनका सम्बन्ध  
राम के जीवन से था ।

वियोग की भावना को ज्ञान उसी माँ को  
हो सकता है जो वियोगी रहा हो । वियोग का वसान जीम से न कहे  
वन्तःकरण की दशा से जाना जा सकता है। माता का हृदय अपनी संतान  
से दूर रह कर कभी भी सन्तुष्ट नहीं रहता/ वह सदैव अपने बालक की वस्तु  
तथा उसके द्वारा कही बातों का स्मरण कहे उद्दिग्ध रहता है। राम के  
वन गमन की तैयारी है। माता काँशल्या इस क्षण को रोकने का एक प्रकार



से प्रयत्न करती है। जब उन्हें प्रतीत होता है कि राम वन कश्य ही जायेंगे, तो उनकी हृदय की वेदना अपना वास्ता देते हुए तुलसी के इन शब्द से निःसृत होती है। यथा-

सम । हौं कौन बतन घर रहि हौं ?  
 बार बार मरि कै गौद लै ललन कौन सौं कहि हौं ॥  
 रहि जागन बिहरत मेरे वारे । तुम जो संग सिसु लीन्हें ।  
 कैसे प्राण रहत सुमिरत सुत, बहु विनोद तुम कीन्हें ॥  
 जिन्ह बचननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं कुरागी ।  
 तिन्ह बचननि बनगमन सुनति हौं मोतैं कौन कभागी ?  
 जुग सम निमिष जाहिं रघुनन्दन, बदन कमल बिनु देखे ।  
 जी तनु रहैं बरषा बीतै, बलि कहा प्रीति हहि लेखे ?  
 तुलसीदास प्रेम बस श्रीहरि देखि बिकल महतारी ।  
 गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि वाचन कह्यो मुरारी ॥१॥

माता कौशल्या कहती हैं कि है राम ।  
 मैं किस प्रकार घर में रह सकूंगी ? मैं बार बार कै मैं भर कर गौद मैं  
 लेकर किससे 'लाल' कह कर बोलूंगी ? तुम जो बहुत से बालकों को  
 साथ लेकर इस जागन में विहार किया करते थे सो तुम्हारी उन बाल लीलाओं  
 को याद करके मेरे प्राण कैसे रह सकेंगे । अत्यन्त विकल होकर कौशल्या राम  
 से कहने लगी कि जिन कानों से तुम्हारे सुन्दर बोल सुन सुन कर मैं स्नेह में  
 डूब जाती थी आज उन्हीं से तुम्हारे वनगमन का समाचार सुन रही हूँ । भला  
 मुझसे कभा गिनी और कौन होगी ? तुम्हारा सुसारबिन्द न देखने पर तो  
 मुझे एक एक निमेष युग के समान बीतता है। अब यदि वर्ण बीतते पर भी

यह शरीर रह गया तो बेटा बलिहारी जाऊँ , इसकी तुम्हारे प्रति प्रीति ही समझी जायेगी । विरह की अग्नि से केवल कौशल्या का हृदय ही द्रवित नहीं हो रहा । रामचन्द्र जी के हृदय में भी माता की व्याकुल होते देखकर कधीरता होने लगी । उनका कण्ठ भर जाया । नेत्रों से जल बहने लगा और उन्होंने बारम्बार शीघ्र ही लौट जाने के लिए कहा ।

कौशल्या सर्व नर नारियाँ की ही तरह राजा दशरथ भी राम के वियोग में अत्यन्त व्याकुल थे । उनकी वात्सल्य भावना अपने अतिरिक्त रूप में प्रकट हुई है, जब वे एक बार अपने पुत्र का मुँह देखने की अभिलाषा करते हैं :

‘मौ की विधु बदन बिलोकन दीजै ।

राम लखन मेरी यहँ भेंट , बलि जाउँ जहाँ मौहि मिलि लीजै ॥

सुनि फितु बचन चरन गहै रघुपति भूप ऊँ भरि लीन्है’ । १

रामचन्द्र के वनगमन के पश्चात् माता की दूसरे दिन की भीर फिखली भीर से कुक्षलग ही तरह की प्रतीति होती है। राम के विरह से व्याकुल होकर वे कह उठती हैं-

बाजु की भीर, और सौ, माई ।

सुनौ न द्वार बैद बंदी धुनि गुनिगन गिरा सौहाई ॥

निज निज सुन्दर पति सदन नितै रूप सील हवि झाई ॥

लेन कसीस सीय बागै करि मौपै सुत बधू न बाई ॥

ब्रह्मकी हों न बिहंसि मेरे रघुबर कहाँ री । सुमित्रा  
माता ।

तुलसी फाहु महासुद मेरी देखि न सकैउ बिधाता ॥ १

राम के विरह में कौशल्या का हृदय अत्यन्त व्याकुल है। वे अपनी व्याकुल भावनाओं को कहती हैं कि वरी माई । बाज का भीर तो मुझे कुछ और ही तरह का जान पड़ता है। बाज द्वार पर न तो वेद और बन्दी जन की ही ध्वनि सुनाई देती है और न गुड़ियों की मीठर बाणी का ही शब्द है । अपने अपने पतियों के सुन्दर महलों से रूप, शील और छवि से सम्पन्न मेरी पुत्र बधुएँ भी सीता को बागे कर बाज मेरे पास वाशीवाँद लेने नहीं आयीं । बाज मुझसे रघुवीर ने हंस कर यही नहीं पूछा कि 'वरीमाँ' । सुमित्रा माता कहाँ है ? वही । मेरे महासुस को मानी विधाता ही नहीं देख सका ।

तुलसीदास के काव्य में वियोगात्मक दृष्टि जब भी आते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानी कवि का मन वियोग के दृष्टि को चित्रित करने में रूचि नहीं होना चाहता । तुलसी के विचारा-नुसार वियोग का वर्णन सहृदयता का नहीं बल्कि कठोरता का परिचायक है। फिर भी तुलसी ने वियोगात्मक वात्सल्य के वर्णन का सफलता पूर्वक निर्वह किया है।

तुलसी की रचना 'गीतावली' में राम के वियोग की जैसी गहन अनुभूति कौशल्या को हुई है वैसी अन्य किसी को नहीं । गीतावली में कौशल्या के वियोग से भरे हृदय का मार्मिक चित्रण

है । कौशल्या के हृदय के उन्माद का वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है :

‘जननी निरसति बान ध्रुवहिया ।

बार बार उर नैननि लावति प्रभु ब्रु की ललित फहिया ।

कबहुँ प्रथम ज्यों जाय जगावति कहि प्रिय वचन सकारे ।

उठहु तात, बलि मातु बदन पर, अजुज ससा सब द्वारे ।

कबहुँ कहति यों बड़ी बार भह जाहु भूप पई मैया ।

बँधु बोलि जे ईय जो भावै गहं निजावरि मैया ।

कबहुँ समुझि बन गवन राम को रहि चकि चित्र तिसी सी

तुलसीदास वह समय कहे तैं लागति प्रीति सिसी सी’ ॥ १

वियोग-वात्सल्य का चरमोत्कर्ष एक शब्द

‘सिसी सी’ में व्यंजित है। माता कौशल्या के नेत्र राम जी के स्तन कूद के धनुष बाण की देखती हैं। वे राम की नन्हीं नन्हीं झुलियाँ बार बार हृदय एवं नेत्रों से लगाती हैं। कभी पहले की ही भाँति मन्दिर में जाकर उन्हें यह वचन कहते हुए उठाने लगती हैं कि हे तात । उठो मुख चन्द्र पर माता बलिहारी जाती हैं देखो सारे अजुज और ससागण द्वार पर खड़े हैं । कभी वे कहती हैं, मैया । बहुत विलम्ब हो गया है, महाराज के पास जाओ , और वफ़े साधियों को बुलाकर जो रुखे सो भोजन करो । स्तनी ही नहीं कभी राम का वनगमन स्मरण करके, चकित हो कर चित्रलिखित सी रह जाती हैं ।

तुलसीदास जी<sup>†</sup> कौशल्या की बालक के प्रति

स्नेहासिल माता के हृदय का वर्णन करने के पश्चात् स्वयं कौशल्या की स्थिति का विलोचन करते हुए अपने भावों को प्रकट किये<sup>१</sup> वे कहते हैं कि उस समय की स्थिति का वर्णन करने से तो प्रीति सीसी हुई सी जान पड़ती है। राम की वियोगजन्य स्थिति में दुःखी माता की इस अवस्था का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने उनकी सचेतावस्था की मार्मिक व्यथा का वर्णन किया है :

माई री मोहि कौउ न समुझावै ।  
 राम गवन साँची किधौ सपनी मन परतीत न जावै ॥  
 लगे रहत भेरे नैननि जागे राम लखन बह सीता ।  
 तदपि न भिटत दाह या उर कौ, विधि जो भयो विप-  
 रीता ॥  
 दुस न रहै रघुपतिहि बिलोकत, तनु न रहै किनु देखे ।  
 करत न प्रान पयान सुनहु सखि बह फि परी यही लेखे  
 कौशल्या के विरह वचन सुनि रोह उठी सब रानी ।  
 तुलसीदास रघुवीर विरह की पीर न जाति बसानी ॥ १

इस पद को पढ़कर ज्ञात होता है कि चित्त के विषयानुरक्त होने पर भाव की प्रतीति होती है। वात्सल्यमयी भावनाओं का दूसरे व्यक्ति के द्वारा प्रदर्शित करने पर मन वात्सल्यमय हो जाता है। संयोगावस्था में मानव मन का ध्यान शेष जगत् से छट कर अपने ही स्नेह भाजन पर केन्द्रित हो जाता है वहीं मन विरहावस्था में प्रत्येक वस्तु में अपने स्नेह भाजन का प्रतिबिम्ब देखने लगता है। फलस्वरूप अपने स्नेह के पात्र

की याद में रह रह कर मन की विह्वलता किसी प्रकार प्रकट होती है।  
उपरोक्त पद में राम के विरह में व्याकुल कौशल्या का हृदय विदारक चित्र  
चित्रित है।

रामचन्द्र के वनगमन के प्रसंग में कौशल्या के  
हृदय की विरह-वैदना का चित्र रामचरित मानस में भी मिलता है। लेकिन  
रामचरित मानस की कौशल्या की विरह-वैदना<sup>में</sup> उनकी हृदय दशा को चित्रित  
करके अभिव्यक्ति किया गया है, जबकि 'गीतावली' में कौशल्या के वि-  
योगी हृदय का वर्णन प्राप्त होता है। राम के वियोग में उन पर उन्माद  
सा हा जाता है वे अपने घर को जब जब देखती हैं, उन्हें सूनासूना सा लगता  
है। वे उस सूनैफ से अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं, वे राम के विरह के वर्णन  
में अपने को वसमर्ष पाती हैं। माता कौशल्या हृदय में यही अभिलाषा करती  
है कि कोई सखि या पुरुष जाकर मुझसे यह वचन कह कि सीता सहित  
तुम्हारे दोनों पुत्र कुशल पूर्वक व्योध्या वा रहे हैं।<sup>२</sup>

कौशल्या की वात्सल्यानुभूति के चित्र कवि  
तुलसी ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में<sup>अंकित</sup> किया है। इन पदों में कौशल्या की मनी-  
दशा का बहुत ही दारुण चित्र है। गीतावली में तुलसीदास ने कौशल्या की  
वियोगजन्य वात्सल्यानुभूति के अतिरिक्त पिता के रूप राजा दशरथ के<sup>हृदय का</sup> (पुत्र  
वियोग के क्षणों में) बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। दशरथ के हृदय  
में प्रत्येक क्षण यह भावना सातती रहती है कि उनके ही कारण उन्हें पुत्र  
वियोग हुआ है। अतः वे मानसिक पश्चात्ताप की अग्नि में दहकते रहते हैं।

१- तुलसीदास- गीतावली व्योध्याकाण्ड पद ५४ पृ० २३५

२-

..

.. ५५ पृ० २३६

यथा-

मुँह न भिटैगौ मेरी मानसिक फलताव ।  
 नारि वस न बितारी कीन्ही काज, सीवत राउ ।  
 तिलक की बोल्यो, दिये वन, चौगुनी चित चाउ ।  
 हृदय का हिम ज्यों न बिदरयो समुमति सीत सुमाउ ।  
 सीय रघुबर लषन बिनु मय भमरि भगी न वाउ ।  
 मोहि बूझि न परत यातैं कौन कठिन कुघाउ ॥  
 मुनि सुमैत कि जानि सुंदर सुधन सहित जिवाउ ।  
 दास तुलसी, तनहूँ मौकौ मरन वमिय पिवाउ ॥ १

इसी प्रकार कौशल्या के हृदय का पश्चात्ताप

द्रष्टव्य है :

हाथ माजिबै हाथ रह्यो ।  
 लगीन रँग ॥ चित्र कूटहु तैं ह्याँ कहाँ जात रह्यो ।  
 पति सुरपुर सिय राम लखन बन, मुनि व्रत भरत रह्यो ।  
 हौँ रहि घर मसान पावक ज्यों मरि बौड़ मृतक रह्यो ।  
 मेरोह हिय कठोर करिबै कहँ बिधि कहँ कुलिस रह्यो ।  
 तुलसी बन पहुँचाह फिरि सुत, वयोँ कहु परत कह्यो ॥ २

कौशल्या की फलतावा है कि वे सुत की वन

में छोड़कर मवन में चली बाई ।

-----

१- तुलसीदास - गीतावली- वयोच्या काण्ड पद ५७

२-

..

पद ८४

राम के वियोग में ज्यौध्या का जन मानस बिलस रहा था किन्तु दशरथ का पिता का हृदय 'मरन वमिय पिवानु' कह कर अपनी अन्तर्दशा का क्लृप्त चित्रण प्रकट करता है। इस शब्द में सारी वात्सल्यानुभूति समाहित है। दशरथ की जहाँ बिना राम की देखे स्वयं ही नहीं शरीर के नष्ट होने की कामना करती है। ज्यौध्याय में राजा दशरथ केवल राम के लिए ही नहीं, राम की अनुपस्थिति में भरत, शत्रुघ्न की स्थिति की भी कल्पना करते हैं। वे राम के वियोग में मञ्जुली की तहफा की स्थिति में जीवन व्यतीत करते हैं<sup>१</sup>। वे अपनी स्थिति की अपनी बिहवा से कहने में भी स्वयं की निरीह पाते हैं। वे स्वयं ही वाश्चर्य चकित है कि राम के बिना भी आज तक वे किसी प्रकार जीवित हैं<sup>२</sup>। ज्यौध्या में केवल माता काशल्या अथवा राजा दशरथ ही शोक विह्वल नहीं है बल्कि सभी लोग दुःखी हैं। दशरथ की मृत्यु पर भी ज्यौध्यावासी इतने विह्वल नहीं थे, जितने राम के वनगमन के समाचार से।

मानव-मन के अतिरिक्त राम के विरह में पशु पक्षियों का मन भी उद्विग्न है। माता काशल्या का हृदय राम के 'बाजि' की दयनीय अवस्था देखकर अत्यन्त द्रवित हो जाता है। वे सहसा कहने लगती हैं :

राधी स्क बार फिरि आवी ।

ए बार बाजि बिलोकि आपो बहुरी कहि सिधावौ ।

जे पय प्याय पीसि कर फँज बार बार चुकारे ।। ३

१- तुलसीदास - गीतावली , ज्यौध्याकाण्ड पद ५८

२-

..

..

५६



तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के ही सदृश पार्वती मंगल में भी पार्वती के विवाह की समस्या से व्यथित दृष्टिगोचर होती है। नारद के वचन सुनकर वे सहम जाती है, उनके हृदय में व्याकुलता का संचार होने लगता है। माता पिता दोनों ही पार्वती के सुख की कामना करते हैं। यथा-

'सुनि सहमे परियाई, कहत भये दंपति ।  
गिरजहिं लागि हमार जिवन सुख संपति' ॥ १

पार्वती के विवाह के समाचार से, नारद की बाणी से एवं माता पिता के हृदय की व्याकुलता से सारा वातावरण वि-  
षादमय हो जाता है, ससियाँ भी उदास हैं। इस हृदय की व्याकुलता को तुलसीदास जी ने इन शब्दों में पिरोया है। यथा-

'समाचार सब सस्ति जाइ घर घर कहै ।  
सुनत मातु पिता परिजन दाहन दुख दहै ॥  
जाइ देखि जति प्रेम, उमहि उर लावहि ।  
बिलपहि बाम बिधातहि दोष लगावहि' ॥ २

प्रत्येक हृदय कन्या-विदा के समय द्रवित होता है। रामचरित मानस की मैना की ही तरह 'पार्वती मंगल' में भी कवि तुलसीदास ने पार्वती की विदा के समय मैना की, हृदय की व्याकुलता चित्रित की है। उदाहरण -

मैंटि बिदा करि, बहुरि, मैंटि पहुँचावहि ॥

१- तुलसीदास - पार्वती मंगल पृ० २६

२- ,, ,, पृ० २७

‘हंरि हंरि सुलवाह, धनु जनु धावहिं ॥ १

तुलसीदास ने पुत्र के विरह में व्याकुल हृदय की पराकाष्ठा का चित्रांकन इन शब्दों में किया है :

‘बहु समुक्ताह बुक्ताह, फिरे बिलस मन’ ॥ २

“ जानकी मंगल ” ग्रन्थ में कवि तुलसीदास ने भावी आशंका, कष्ट से चिन्तित दशरथ के हृदय का दर्पण किया है। विश्वामित्र को राजास यज्ञ नहीं करने देते थे। यज्ञ की रक्षा हेतु विश्वामित्र राम एवं लक्ष्मण को तपोवन ले जाना चाहते थे। दशरथ स्नेह के बशी-भूत होकर उन्हें छोटा बालक समझ कर चिन्तित हो जाते हैं। राजा दशरथ गुरु के वचनों की आज्ञा नहीं कर सकते थे। अतः हृदय की वाकुलता ने वाणी को जकड़ लिया। वे मौन होगये। इस समय दशरथ की मूक व्यथा का कैन तुलसीदास ने इन शब्दों में किया है। जैसे-

जबहिं मुनीस महीसहि काज सुनायहु ।

मायहु सौह सत्य. बस उत रुन मायहु' ॥ ३

राजा दशरथ के हृदय की विरह वेदना के साथ ही, जानकी मंगल में, <sup>जब</sup> सीता विवाह के पश्चात् विदा होकर जयोध्या जाने वाली हैं, उस समय सीता की माता एवं नगरवासियों की स्नेहाकूल

१- तुलसीदास - पार्वती मंगल पृ० ३५

२- रामचन्द्र शुक्ल- तुलसी ग्रन्थावली- जानकी मंगल पृ० १८

[illegible]

हृदय की द्रवित स्थिति का कैन किया है। वे व्याकुल होकर श्री रामचन्द्र जी से कहती लगती है। यथा-

‘तात तजिय जनि होह पया राबसि मन ।

कुचर जानब राउ सहित पुर परिजन’ ॥ १

माता का हृदय कन्या के विछोह में व्याकुल हो जाता है। वे अपने हृदय की व्यथा को दबा कर सीता जी को बार बार हृदय से लगाती है। उदाहरण -

‘जन जानि करब सैह’ बलि ‘कहि दीन बचन सुनावही ।

बलि प्रेम बारहि बार रानी, बालकन्हि उर लावही’ ॥ २

इस अवसर पर अपने हृदय की वेदना के जनक सीता को कर्तव्य परायणता का उपदेश देते हैं। यथा-

जनक जानकिहि मैटि सिखाइ सिखावन ॥ ३

निष्कर्ष

राम-साहित्य का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि इस साहित्य में एक ऐसी कला का समावेश है, जिसमें सरसता के साथ मनोरंजन का भी संयोजन है। राम-काव्य की वात्सल्य-भावना भक्त हृदय के अटूट विश्वास पर समाधारित है।

१- तुलसीदास - जानकी मंगल पृ० ५२

२-                    ..                    पृ० ५२

३-                    ..                    पृ० ५२

राम-काव्य में राम की बाल्यावस्था का मनोवैज्ञानिक, वाक्यार्थक एवं अद्भुत मर्यादित रूप चित्रित है। तुलसीदास ने राम के वात्सल्य-चित्रण में जहाँ एक ओर राम की चंचल प्रवृत्ति का वर्णन किया है, वहीं उन्होंने राम की बालोचित लीलाओं में उनका मर्यादित रूप भी चित्रण किया है। तुलसीदास ने प्रायः मातृ-हृदय की ही वात्सल्य का केन्द्र बिन्दु बनाया है। पितृ-हृदय में कबूतरी गुरुवर्ग के मानस पर भी वात्सल्य की स्वर्णिम रेखा दमकती दृष्टिगोचर होती है। राम भक्ति शास्त्र के अन्य भक्त कवियों की रचनाओं में वात्सल्य का उद्रेक प्रस्तुत करना प्रस्तुत शोध के लिए अपेक्षित रह गया। वह इसलिए कि यथासंभव प्रयत्न करने पर भी तुलसी साहित्य के अतिरिक्त मनोनीत रचनाएँ कहीं पास-पास नहीं मिलीं। अतः 'सर्वपादाः हस्तिपादे निमग्नाः' के अनुसार तुलसी-साहित्य का वात्सल्य पर विवेचन प्रस्तुत करके ही संतोष कर लेना पड़ा।

...

### (स) कृष्ण भक्ति काव्य में वात्सल्य-भाव

विष्णु के कृष्ण रूप की जिस काव्य में प्रधानता दी गई वह काव्य कृष्ण काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है। कृष्ण-काव्य में भगवान् के लोक पर्याप्त एवं लोकहृदय रूप के स्थान पर लोक-रञ्जककारी रूप की प्रधानता है। यही कारण है कृष्ण-काव्य में माधुर्य भाव की अधिकता है। कृष्ण काव्य में वत्सलभाचार्य एवं पुष्टिमार्ग में दीक्षित वष्टकाप कवियों के काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। कृष्ण-काव्य में कृष्ण के सगुण रूप की प्रतिष्ठा होते-हुए भी कतिपय कवियों ने कृष्ण के निर्गुण रूप की कल्पना की है, जिनमें प्रेमयोगिनी मीरा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, यद्यपि इनके काव्य में सगुण एवं निर्गुण का सम्मिश्रण भी प्राप्य है। कृष्ण काव्य में साम्प्रदायिक दार्शनिक मतभेदों के कारण कवियों के तथाकथित काव्य में भावपदा बदलता बदलता रहा है, किन्तु काव्य का प्रसृत भाव भक्ति ही रहा।

भावनावों की अभिव्यक्तिके लिए वत्सल भावना मानव-जीवन<sup>ली</sup> का मूल भावना मानी जाती है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा का विचार है, "वत्सल भाव इन्द्रियों की प्रवृत्ति पर बाधार्थित न होने के कारण न तो गोप्य है, और न उसमें लोकधर्म या समाज धर्म की किसी पर्यादा का उल्लंघन है।"

बाल मन गंगा जल सा पवित्र तथा वाकाश सा निर्मल होता है। बालक के नन्हें कोमल पारदर्शी मन की माँ-बाप मुख्य

रूप से प्रभावित करते हैं। सृष्टि के विकास का मूल कारण होने के कारण वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यकार का मन सदैव उद्बलित रहता है। मध्ययुगीन भक्त कवियों का हृदय भी राम वत्सा कृष्ण के वात्सल्य वर्णन की ओर उन्मुख हुआ, क्योंकि प्राकृतिक रूप से शैशवावस्था में ही कलाकार को किसी मनुष्य की विधायक वत्सा रचनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कृष्ण एवं राम की बालीकृत लीलाओं में भी मध्ययुगीन कवियों को कुछ विशिष्टता दिखाई दी। कलाकार वत्सा साहित्यकार का स्व मन भी अपनी शिशु अवस्था के संस्कार एवं स्मरण के फलस्वरूप अविस्मरणीय होते हैं। यही कारण है मध्यकालीन कवियों में विशेष रूप से कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल सुलभ चंचल लीलाओं का यथावत् वर्णन करके अपनी मूल अनुभूति का प्रमाण दिया।

कृष्ण के बाल-भाव-वर्णन में भक्त कवियों को भारतीय-सौन्दर्य वर्णन की पुरातन परम्परा पौराणिक मीमांसा एवं तत्कालीन वातावरण ने अत्यधिक सहायता प्रदान की। सुदीर्घ काल से चले वा रहे कला प्रतीकों में भी मध्ययुगीन भक्त कवियों को राम वत्सा कृष्ण की बाल छवि प्राप्त हुई। कलाकार के मानस में विचारों की अपेक्षा भावनाओं की प्रधानता होती है। मध्ययुगीन कवियों ने अपने दृष्ट को, अपने काव्य में अपनी मातृभावना के अनुकूल वर्णित किया। इस वर्णन में उन्होंने भाव व्यंजना के साथ ही कल्पना का भी सहारा लिया।

श्रीमद्भागवत में वात्सल्य-भावना का पूर्ण-रूपेण विकास दृष्टिगोचर होता है। मध्ययुगीन समस्त कृष्ण-काव्य श्रीमद्भागवत के कृष्ण की प्रतिच्छाया कहा जा सकता है। वल्लभाचार्य के पुष्टि-मार्ग में दीक्षित अष्टकाव्य कवियों ने कृष्ण के वात्सल्य की जिन विविध अनु-

भूतियों का वर्णन किया है वे अनुभूतियाँ विविध रूपों में वष्टहाप्तर काव्य में वर्णित हुई हैं। कृष्ण सम्बन्धी बाल साहित्य के विषय में डा० हिम्मत सिंह जैन के विचार उल्लेखनीय हैं :

“ विश्व के कठिन अन्य कलाकार किसी बालक को अपनी ग्रन्थ का विषय बनाने का साहस नहीं कर सकते । ”

मध्यकालीन काव्य में वष्टहाप कवियों के वतिरिवत वष्टहाप्तर काव्य में वात्सल्य-भाव का अविरत प्रवाह उमड़ पड़ा । कृष्ण के सर्वशक्तिमान रूप को हृदयंगम करके मध्यकालीन भक्त कवियों में कृष्ण के बाल-रूप की भी काव्य का विषय बनाया । मध्यकाल में भक्ति-भाव की प्रसुता होती हुई भी वात्सल्य भाव सर्वाच्च रूप में अभिव्यक्ति हुवा है। काव्य में यत्न तत्र ममता से भरी यशोदा तथा चंचलता से भरे कृष्ण काव्य का प्रमुख विषय बन गये । इस प्रकार पारिवारिक परिवेश में यशोदा, नंद, गोप , गोपियों तथा ब्रज के लोगों के हृदय का वात्सल्य-चित्र काव्य में अभिव्यक्ति हुवा । ब्रज के नर-नारी कृष्ण के अप्रतिम, वर्णनीय सौन्दर्य का दर्शन करके स्वयं को धन्य समझने लगे ।

वष्टहाप काव्य से प्रभावित वष्टहाप्तर कवियों ने कृष्ण के शिशु रूप की कल्पना करके उन्हें साधारण बालक के रूप में चित्रित किया, यद्यपि वे उनके लौकिक रूप से पूर्णतया प्रभावित थे ।

(ब) कृष्ण की बाल लीलाओं में वात्सल्य भाव

---

कृष्ण-काव्य में कृष्ण के लौकिक जीवन से सम्बन्धित लीलाओं का ज्ञान पर्याप्त मात्रा में मिलता है। वल्लभाचार्य के अनु-

---

या यिहीं ने कृष्ण को विष्णु का अवतार माना है। उनके दिव्य स्वरूप की प्रतिष्ठा करके, विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, तथा सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाकर भव सागर पार करने वाले उद्धारक के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने कृष्ण को साधारण बालक<sup>के</sup> रूप में चित्रित किया है, साथ ही उनके दिव्य रूप की स्थापना की है। उनके साधारण लौकिक क्रिया-कलापों के द्वारा भक्त जन का हृदय मोहते हुए भी वर्णित किया है। वष्टहाप कवियों की लौकिक व्यञ्जना तथा माधुर्य प्रवृत्ति का प्रभाव वष्टहापतर काव्य पर भी प्राप्त होता है। वष्टहाप कवियों के स्तम्भ सूरदास के काव्य का प्रभाव परवर्ती काव्य पर पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता है। इतना निःसंकोच कहा जा सकता है कि सूर की वात्सल्य-भावना से वष्टहापतर कवि अधिक प्रभावित है। सूर का वात्सल्य वर्णन इतना अधिक व्यापक है कि उसे परवर्ती कवियों का प्रेरणा स्रोत कहा जा सकता है। इस दृष्टि से सूर का सर्वाधिक प्रभाव तुलसी के काव्य कृष्ण गीतावली में परिलक्षित होता है।

तुलसीकृत 'श्रीकृष्ण गीतावली' में कृष्ण की बात लीला का गान प्राप्त होता है।

कृष्ण की विविध बाल-लीलाओं का प्रभाव गोस्वामी तुलसीदास पर भी पड़ा। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास राम की भक्ति में पूर्णतः निमग्न थे, तथापि उन्होंने सूर के काव्य की सरसता एवं स्वाभाविकता से प्रभावित होकर कृष्णके बाल चरित से सम्बन्धित अवर्णनीय सौन्दर्य एवं चंचलता का कलात्मक गान किया है। कृष्ण के रूप-लावण्य पर दृष्टिपात करके माता यशोदा का हृदय प्रफुल्ल है। वे बार-बार उनके मुह



की छवि 'निरस्ती' है :

‘माता लै उक्की गो बिंद मुस बार बार निरसै ।  
फुल कित तनु वानंद घन कन कन मन हरणी’ ॥ १

कृष्ण को मास-रोटी अत्यधिक प्रिय है ।  
उनका स्वभाव इतना चंचल है कि एक स्थान पर स्थिर होकर वे सा नहीं सकते ।  
माता से मास-रोटी मांग ले लेते हैं, लेकिन उझल कूद कर, बलदाऊ की  
सीटी कह कर ही साते हैं। उदाहरण-

‘छोटी मोटी मोसी रोटी चिकनी चुपरि के तू दे री मैसा  
ले कन्हैया सा कब ? अबहिं तात ।  
सिगरिये हौं ही सैहों, बलदाऊ को न देहों ॥

०

०

नूपुर की धुनि किंकिनी के कलख सुनि ,  
कूदि कूदि किलकि किलकि के ठाढ़े ठाढ़े सात ।  
तनिया सलित कटि, विचित्र ठेपारी सीस ।  
मुनि मन हरत कवन कहै ताते रात’ ॥ २

कृष्ण की चंचलता केवल घर-द्वार तक ही  
सीमित नहीं है। वे सबूत ब्रज में ही शरासत करते फिरते हैं । गोपियाँ  
कृष्ण की अति चंचल प्रकृति से परेशान हैं। वे कृष्ण की आर्तकित करने वाली  
प्रकृति की ओर यशोदा का ध्यान आकर्षित करती हुई कहती हैं। यथा-

‘तोहिं स्याम की सपथ जसोदा बाह देखु गृह भरे ।  
जैसी हाल करी याहि डोटा छोटे निपट कीरे ॥

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- तुलसी ग्रन्थावली पृ० ३६१ पद १

२- “ “ “ “ पृ० ३६१ पद २



की सीस बध्ना गोपियों के उलाहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । गोपियों बार-बार यशोदा से निवेदन करते जाती हैं :

‘महरि तिहारे पावि परी कपनी ब्रज लीजि ॥

रुठि देख्यो, तुम्हसों कह्यो, अब नाकहि जाई,

कौन दिनह दिन कीजें ? १ ९

हुःसी होकर कहती हैं। यथा-

‘वय ब्रजबास महरि किमि कीजो’ ?

दूध दह्योउ मासुन डारत हैं, हुती पोसात दान दिन दीबी ।

वब तौ कठि कान्ह के करतब तुम्ह हौँ हँसति कहा कहि लीयो ?

नित्य के उलाहनों से यक्षोदा परेशान होकर श्रीकृष्ण को धम्काने के लिए एक बाँस की छड़ी उठा लेती है। कृष्ण स्तब्ध रह जाते हैं। उनके नेत्रों से जल की धारा प्रवाहित होने लगती है। जैसे-

'लैत भरि भरि नीर कान्ह कमल नैन ।

फरक बधर डर निरस निरसि लकूट कर,

कहि न सकत कहूँ वै॥ ३

माता के इस रूप को देखकर कृष्ण डर जाते हैं। जैसे-

‘कहू न कहि सकत, सुसकत सकुनत,

ढरहूँ की ढर, कान्ह ढरै तैरे ढर तै'॥ ४

१- रामचन्द्र कुवलय- तुलसी ग्रन्थावली पृ० ३६३ पद ७

२- .. पृ० ३६३ पन् ६

३- .. प्र० ३६४ पृ १५

४- .. पु० ३६५ पद १७

माता यशोदा का क्रोध सर्व कृष्ण के डरने की मुद्रा को देख कर कुल गुरु पत्नी यशोदा को सम्मानित लगती है :

‘कह्यौ भरी मानि, हित जानि तू सयानी बड़ी ,  
बड़े भाग पायो पूत विधि हरि हर तैं’॥ १

यशोदा कृष्ण के जन्म के अवसर पर उनके सौन्दर्य की निरक्षर अत्यन्त प्रसन्न होती है। इस प्रसन्नता में वे नंद को भी सम्मिलित करती है। कतः उन्हें कृष्ण की बाल-कवि देखने को बुलाती है :

‘पुतक जंग उर वानन्द मारी , देखि रही मुख शशि उजियारी ।  
गद गद कण्ठ न कहू कहि जायो, हर्षवन्त हूँ नन्द बुलायो ।  
बावहु कन्त पुत्र मुख देखी, बड़ी भाग्य वफे करि लेखी’॥ २

श्रीकृष्ण की ज्वलता साधारण बालक के सदृश ही है। वे सरलता से सी नहीं जाते । इसके लिए माता उनके प्रकार के प्रयत्न करती हैं। इस दृश्य का वर्णन ब्रजवासी दास ने अत्यन्त स्वाभाविकता से किया है। उदाहरणतया-

‘सौवै भरी बाल कन्हारै, माता मुख की बलि बलि जाई ।  
सौवत देखि नैन गहि रहै, जागत देखि बहुरि कहू कहै’॥ ३

तुलसीदास के ही सदृश कृष्ण भक्त कवि ब्रज-वासी दास ने ‘ब्रज विलास’ नामक काव्य में कृष्ण की लीलिक जीवन की

१- वाचायं रामचन्द्र शुक्ल- तुलसी ग्रन्थावली पृ० ३६५ पद १७

२- ब्रजवासी दास - ब्रजविलास पृ० २२

३-                   ..                   .., पृ० ३४

कौन लीलावी का गान करके उसी परम्परा का निर्वह किया है। 'ब्रजविलास' में कृष्ण के जन्म से लेकर बचपन तक की कथा का उल्लेख है। कवि ब्रजवासीदास ने ब्रज विलास में सूर की ही तरह एक ही घटना का कौन पदों में व्यक्त किया है। इनके काव्य में कृष्ण की शैशवावस्था का वर्णन मनोरंजनकारी रूप उत्पन्न है। यद्यपि ब्रजवासीदास ने सूर के ही सदृश कृष्ण की बाल लीला का वर्णन साधारण बालक की स्वाभाविक क्रीड़ा की ही तरह किया है तथापि वे भावक को यह अहसास कराने में पूर्णतः सफल हुए हैं कि उनके कृष्ण वस्तुतः अवतारी हैं। ब्रजवासी दास के बाल कृष्ण में ऐसे गुण भी प्राप्य हैं, जिनमें वे मात्र दृष्ट देव प्रतीत न होकर एक साधारण बालक दिखाई देते हैं। यथा-

'मेया री मोहि मास मावे, और कहूँ वति रुचि नहि  
वावे ।

मधु मेवा फलान मिठाई, सो मोकोने कहूँ न सुहाई ॥१'

ब्रजवासी दास के कृष्ण को मधुसूदन अत्यधिक प्रिय है। वे चंचल भी बहुत हैं। एक बार मास सा रहे कि ग्वालिन ने फल लिया। इस समय में अपनी चतुरता का परिचय देते हुए कहते हैं :

'मैं जान्यो यह घर है मेरी, ता धोले इत ह्वै गयो फरी ।  
दृष्टि परी चींटी दधि माहीं, काढ़नि तग्यो तिन्हें हहि  
ठाहीं ॥२

सामान्यबालक की सदृश कृष्ण में हठ करने की प्रवृत्ति है। वे अपनी माता से चन्द्रमा लेने का हठ करते हैं। माता यशोदा

१- ब्रजवासीदास - ब्रजविलास पृ० ६६

२-       ,,                       ,,       पृ० ७५

एक धाली में मुँह का प्रतिबिम्ब दिखा कर उन्हें तृप्त करना चाहती है किन्तु वे यही कहते हैं<sup>कि</sup>, यह तो मेरे हाथ में ही नहीं जाता -

‘ल्यौंगो री माँ चन्दा ल्यौंगो, वाही वप्ते हाथ गही गी ।  
यह तो कलमलात जल माँही, भरे कर मैं वावत नाहीं’।। १

स्तनी ही नहीं कृष्ण चन्द्रमा के सौंदर्य से  
आकर्षित होकर वे उसकी दूरी तथा रहस्यमयता के विषय में माता से वि-  
भिन्न प्रश्न करती हैं, तथा उनसे चन्द्रमा प्राप्त करने की विधि पूछती हैं। जैसे-

‘मैया यह मीठी कै सारी , देस्त लगत मोहि यह प्यारी ।  
देसि मीगाय निकट मैं लैहाँ, तागी भूस चन्द्र मैं लैहाँ’।। २

कृष्ण वप्ती विभिन्न बालोचित चैष्टार्जी  
के कारण घर भर का स्तिना है। सभी उनकी चंचलता को देखकर विमुग्ध हैं।  
ब्रजवासीदास ने कृष्ण की इन चैष्टार्जी को सामान्य बालक के रूप में वर्णित  
किया है। कृष्ण के पिता हाथ फँद कर उन्हें घुमा रहे हैं। वे कभी माता की  
तरफ और कभी पिता की तरफ देस देस कर किलकते हैं। यथा-

‘कबहुँ तात कहि फहरन धावै, जानु पाणि विचरत इवि पावै।  
कबहुँ किलकि तात मुस पसै, कबहुँ हँसि जननी तन देसै’।। ३

ब्रजवासी दास ने त्रिकृष्ण को सामान्य  
बालक की तरह दूध के लिए रोते हुए चित्रित करके उन्हें एक साधारण रूप

१- ब्रजवासीदास - ब्रजविलास पृ० ५४

२-       ..                       ..       पृ० ५२

३-       ..                       ..       पृ० ५३

में प्रस्तुत किया है। कवि का हृदय कृष्ण के बाल-रूप पर अत्यधिक मोहित है। उनकी बालीचित चेष्टा में दूध मांगने के लिए रोने का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है। यथा-

‘हरि रोथे माता की कनियाँ, दूध पियायी तब नन्द  
रनियाँ ।

पुनि फलना पीदाय फुलावै, फुलरावै फुलरावै मलहावै’।। १

यद्यपि बालक का संरक्षण घर के सभी सदस्यों के सहारे होता है, तथापि उसके पालन-पोषण में माता का सर्वाधिक महत्त्व है। माता के महत्त्व का प्रतिपादन ब्रजवासीदास ने क्लृप्तावस्था में किया है। उदाहरणतः

‘तनक तनक भुज टेक उठावै, क्रम क्रम ठाढे हौन सिसावै ।  
पुनि गहि भुज फद दैक चलावै, तरसरात लसि मम सुस पावै ।  
मम ही मम यौ विधिहि मनावै, कबधौं वफे पायन धावै’।। २

सूर की गोपियों की ही तरह कृष्ण की मासल-चोरी की प्रवृत्ति की शिकायत करते ब्रजवासीदास की गोपियाँ भी यशोदा के पास जाती हैं किन्तु यशोदा गोपियों का लालिन स्वीकार नहीं करती। वे कह देती हैं कि इतना छोटा बालक मला कैसे चोरी कर सकता है। यथा-

‘कहत लगावत लीग, फूँठहि सब धेर सुतहि ।  
कब मये चोरी योग, पाँच बरस के तनिक से’।। ३

१- ब्रजवासीदास - ब्रजविलास पृ० ३३

२-       ..                               .. पृ० ४७

३-       ..                               .. पृ० ६६

मणिमय वांगन में अपनी ही छवि का प्रति-  
बिम्ब निरुत्तर कृष्ण को अत्यधिक आश्चर्य और उत्सुकता होती है। वे उसे  
दूसरा ग्वाल सम्झते हैं। इस दृश्य का वर्णन ब्रजवासीदास की लेखनी से बहुत  
ही स्वाभाविक रूप में अविकल हुआ है। जैसे-

‘चितै रह मणि सम्भ हैं, हरि अपनी प्रतिझाहि ।  
जानि दूसरी ग्वाल तिहि, प्रभु सकुन मन माहि ॥१

सूर के कृष्ण में ही अपनी चोटी बढ़ने की  
उत्सुकता नहीं है। ब्रजवासीदास के कृष्ण को भी यही उत्सुकता है कि उनकी  
चोटी फटा नहीं ; कब बढ़ेगी ? चोटी बढ़ने के लालच में वे दूध पीते हैं, और  
जब उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि वह बढ़ नहीं रही है तब उदास हो जाते  
हैं। यथा-

‘मैया कब बढ़ेगी चोटी , यह तो है अब ही ली झोटी ।  
तू जो कहत है बल लीं ह्वै है, झोड़त गुह्त गौड़ लीं जै है ॥ २

कृष्ण घर पर या घर के निकट ही शैतानी  
करते ही, ऐसी नहीं। जब वे गोचारण के लिए वन में जाया करते थे, वहाँ  
भी सब ग्वाल-बालों के साथ मिल कर विभिन्न प्रकार से ऊधम मचाया करते  
थे। जैसे-

‘नाना विधि सब करत कलोलै, भाँति भाँति को वाणी बोलै ।  
कबहुँ मारे हँस की नाई, बोलत हँसत श्याम सुखदाई ॥  
कबहुँ चढ़त तरुन पर जाई, कूदि परत गहि डार नवाई ॥ ३

१- ब्रजवासीदास -ब्रजविलास पृ० ६०

२-     ,,                     ,,     पृ० ६०

३-     ,,                     ,,     पृ० ६५



ब्रजवासीदास ने कृष्ण की बाल-सुलभ चंचलता को अभिव्यक्त करने में सूरदास की वर्णन पद्धति का अनुगमन किया है। इन्होंने वात्सल्यानुभूति की अभिव्यक्ति कृष्ण के बाल-सौन्दर्य-वर्णन के माध्यम से भी की है। ब्रजवासीदास का हृदय भी कृष्ण के सलीले सौन्दर्य पर सूर के ही सदृश मोहित दिखाई देता है। यथा-

‘मैं हंसनि धन दामिनि जैसे, दुरि दुरि प्राट होत है तैसे ।  
तनु धनश्याम कमल दल नैना, बोलत मथुर मनीहर बैना ॥१

ब्रजवासीदास ने कृष्ण के सौन्दर्य की अनुपमेय कृपा का वर्णन करने के लिए विभिन्न प्रकार की स्थितियों को चुना है। तथा विविध उपनानों के द्वारा उसे प्रस्तुत किया है :

‘सस्त सींग सीहत नन्द लाला, मैं हंसनि दृग कमल विशाला ।

०

०

मृदु मुक्काय मरीरत भाँहै, नयन सैन दै दै मन मोहै ।

०

०

सुभग नासिका चपल दृग, कुटिल भृकुटि की रस ।

जनु युग सैन मीन बीच शुक उद्वि न सकत धनु दैल ॥’

०

०

भाँहै कुटिल , नयन रत्नारे, कुण्डल फलक केश धुंधराते ॥२

कृष्ण-भक्त काव्यों में चन्द्रसखी का स्थान अन्य-कृष्ण भक्त कवियों की ही सदृश है। चन्द्रसखी के नाम से प्रचलित लोक-

१- ब्रजवासीदास - ब्रजविलास पृ० १११

२- .. .. पृ० ३६५, ३०१, ४४६

काव्य भजन सर्व गीतों की संस्था पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। वाज भी चन्द्र ससी के गीतों का लोकगीत के रूप में ब्रज, राजस्थान, भदावर, पालवा, हुन्दैतलण्ड सर्व निमाड़ वादि भू-भाग में गाया जाता है। इन्होंने मुक्त शैली में अपनी समस्त रचनाओं का संकलन किया है। कृष्णबाल-वर्णन में चन्द्र ससी ने कृष्ण जन्मोत्सव का वर्णन, नृत्य तथा कृष्ण की मास्त-चोरी की प्रवृत्ति का स्वाभाविक चित्रांकन किया है। चन्द्र ससी के काव्य में पदे-पदे सूर के भाव साम्य तथा स्वरूप साम्य के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार कृष्ण के बाल-रूप-वर्णन तथा उनकी विविध लीलाओं के वर्णन में यशोदा का वह बाह्यादकारी तन्मय तथा वात्म केन्द्रित रूप परिलक्षित नहीं होता जो अन्य कवियों में प्राप्त होता है। कृष्ण की बाल-सुलभ विभिन्न लीलाओं से सम्बन्धित पदों की फ़मावती शबनम ने कीर्तन मण्डली की देन माना है।<sup>१</sup> प्रत्येक पद के अन्तिम चरण में कवयित्री द्वारा 'चन्द्रससी भुज बाल कृष्ण खिब' का प्रयोग उनकी तीव्र वत्सल-भावना का परिचायक है। कृष्ण का तुलना, खेलने के लिए दूर जाने पर माता के हृदय की व्याकुलता, तथा पुत्र के सकुशल जाने पर आश्वस्त होकर उसकी बलैया लेना, वात्सल्यानुभूति ही है। यथा-

‘कहन लगे मोहन मैया मैया ।

मथुरा में होय बालक जन्मै, घर घर बजत बधैया ।

नंद महर जी की बाबा ही बाबा वरु बलदाऊ को मैया ॥

दूर खेलन फ़त जावो मेरे ललना, मारेगी काऊ की मैया ।

सिंह पील पर ठाढ़ी जसोदा, घर आवो दोनों मैया ।

चन्द्रससी भुज बाल कृष्ण खिब, जसुमति लेति बलैया ॥’<sup>२</sup>

१- फ़मावती शबनम - चन्द्रससी और उनका काव्य पृ० ४७

२-

..

..

पद ४

इस पद में माता के हृदय में वात्सल्य-भावना का उद्भूत 'मैया' सम्बोधन सुनकर हर्ष, संचारी भाव की सहायता से होता है। इसी प्रकार पुत्र के दूर जाने पर माता के हृदय की व्याकुलता से उत्पन्न वात्सल्य की भावना को चिन्ता संचारी भाव बढ़ाता है। नन्दलाल की नाचते देखकर यशोदा की प्रसन्नता का वर्णन चन्द्रसखी ने इस प्रकार किया है :

‘नाचै नन्दलाल नचावै बाकी मैया ।

रुम्फ भ्रुम्फ पायि नेवर बाजे, ठुम्फ ठुम्फ पावि घरत कन्हैया ।

दूध न पीबै कान्हौ दहीय नहावै, माखन मिसरी का बड़ खैंया<sup>१</sup> ॥

बालक कृष्ण की मचलने, हठ करने की प्रवृत्ति खेनाचने की प्रवृत्ति का चित्रण प्रायः सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने किया है। कृष्ण की इस प्रवृत्ति का वर्णन मैं चन्द्रसखी ने जहाँ एक ओर अपनी वात्सल्यपरक मनोवृत्ति का परिचय दिया है, वहीं कृष्ण की पत्नियों का भी सांकेतिक रूप से वर्णन किया है :

‘बंसी वाली मचल रयी म्हारे वीगणा ।

वांगणी देखै तो कान्हौ पावि बरस को,

घर में देखै तो कन्हैया भूलै पालणा ।

बंसी वाली मचल रयी म्हारे वीगणा ॥

बंसी वाला का तीन ठिकाना,

गोकुल मथुरा नै बरसाना ।

बंसीवाला के तीन सुगार्या,

राधा , रुक्मण नै सतभामा ॥

बंसी वाली मचल रयी म्हारे वीगणा’ ।

ह बंसी बाला के कोई मती नौती,  
 सावे मासण मिसरी ने मणि दसणा ।  
 'बंदसली' भज बाल कृष्ण हवि,  
 हरि के बरण गुण गावणा ।  
 बंसी वाली मवल रयो 'म्हारे वगणा' ॥ १

ककबर दरबार के प्रमुख रत्न तानसेन ने कृष्ण से सम्बन्धित वात्सल्यपरक कुछ शब्दों की सर्जना की है। तानसेन के मनोमस्तिष्क में कृष्ण के बाल-सौन्दर्य की छाया अधिक गहरी है। वागिन में तेलते हुए श्रीकृष्ण के सौंदर्य का वर्णन तानसेन ने इन शब्दों में किया है। यथा-

'कैसे वाहे सोभत ताल कैसे मुहुट सीस  
 कटि किन्नी तूपुर हनक मनक ठन ठन  
 चाप धरत जाल चलत गज गयेद की ॥  
 काहू कटि कधि कामर गर सोहे बैजती माल  
 मृगमद तिलक ललाट कौट काम  
 लजित भर अधर मुखी वजत बित फेद की ॥  
 साँवरे सलौने गात शोभा कहू कही  
 न जात चितवन नैनन बिसाल रवि ससि की  
 जीत मई मंद सी ॥  
 तानसेन के प्रभु वगणा में तेलत सब ब्रज जन  
 वानन्द मुदित जय बोलत बूँदावन चंद की ॥ २

१- सम्पादक श्री प्रभु दयाल मीतल- बन्दसली के भजन और लोक गीत

पृ० ८०

२- सम्पादक नर्मदेश्वर चतुर्वेदी: संगीतज्ञ कीर्तियों की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ५६

तानसेन की दृष्टि में श्रीकृष्ण का रूप  
इतना मोहक है कि वे उसका वर्णन करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। उदा-  
हरण-

‘सुन्दर कवि राजत राजत मोहन कहा कही रूप की  
निकाईं मोसों बरनी न जाई  
वास्ती जैसे श्याम कन्हारें ॥

अवन कुंडल मकराकृत कटि पति बसन लकुट  
मुस मुरली मधुर तान गाव कतत सुहारें ॥’ १

श्रीकृष्ण की स्त्रियों से सेलते हुए देखकर  
यशोदा एवं नंद दोनों ही उनकी बलैया लेते हैं। यशोदा के वात्सल्य की  
भाँकी तानसेन के काव्य में इस प्रकार वर्णित हुई है। यथा-

‘हमारे लला के सुरंग सेलौना सेलत कृष्ण कन्हैया ।  
अगर चन्दन की फलौकनी है हीरालाल जवाहर जरीया ॥  
अमरी भीरा बट्टा बट्टा हंस जकीर मोर चिरीया ।  
तानसेन प्रभु जसुमत मुलावे दौड कर लेत बलैया ॥’ २

यशोदा कृष्ण के रूप-लावण्य पर न्याहावर  
है। वे ग्वाल-बाल के साथ जब कृष्ण की मुस पर धूल लपेटे हुए देखती हैं, तब  
उनके हृदय में वात्सल्य का सागर उमड़ पड़ता है। वे उनका सुन्दर मुस देख कर  
मग्न हो जाती हैं :

‘धौरी धूमर पीयरी काजर कह कह टेर ॥

१- संपा० नमदेश्वर चतुर्वेदी- संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ पृ० १३४

२-

..

..

पृ० १३७

मीर मुकुट सीस श्रवण कुण्डल दक्षन पीतांबर फरे ।  
 ग्वाल बाल सत्ता मंडल में वावत ब्रज नरे ॥  
 तानसेन प्रभु मुख रज लफटानी जसुमति निरस मुख हरे ॥ १

यद्यपि कृष्ण के बाल-रूप वक्ष्या कृष्ण की कतिपय लीलाओं का वर्णन तानसेन केकाव्य में यत्र-तत्र प्राप्त होता है, तथापि झूतः संगीतज्ञ होने के कारण उनके वात्सल्य-वर्णन में वह स्वाभाविकता नहीं दिखाई देती जिसे हम अन्य भक्त कवियों के काव्य में देखते हैं।

मध्यकालीन भक्त कवयित्री गंगा बाईं विट्ठल नाथ की शिष्या थीं। उनकी भक्ति पद्धति एवं भावनात्मकता का स्वरूप वष्ट-छाप कवियों के सम्मूह का था। कृष्ण का बाल-रूप-वर्णन उन्होंने अधिक तल्लीनता से किया है। गंगाबाईं ने कृष्ण के वात्सल्य-वर्णन में हृदयगत सूक्ष्म भावनाओं का विवेचन नहीं किया है। उन्होंने कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं में वातावरण का चित्रांकन किया है, जो अत्यन्त सीधी एवं सरल भाषा में अभिव्यक्त हुआ है। कृष्ण के जन्म के समय का सजीव वातावरण गंगाबाईं ने इन शब्दों में अभिव्यजित किया है। यथा-

‘रानी ब्रू मुख पायी सुत जाय ।  
 बड़े गोप वधू की रानी, हंसि हंसि लागत पाय ।  
 बेठी महरि गौद लिए डोटा बाकी सेज बिराय ।  
 बोलि लिए ब्रजराज सबनि मिलि यह मुख देखी जाय ॥  
 जेह जेह बदन बदी तुम हमसों ते सब देहु सुकाह ।  
 तजने लेहु चौगुनी हम पै कहत जाह मुसकाह ॥

हम तो मुदित भये सुख पायी चिरजीवी दीउ माह ।

श्री विट्ठल गिरधरन कहत ये बाबा तुम माह ॥१॥

उपसृत पद में यशोदा के हृदय की वात्सल्य - भावना<sup>को</sup> परम्परागत संस्कृति के निर्वाह के माध्यम से दिखाया गया है। वे वयोवृद्ध लोगों के चरणों का स्पर्श करके उनसे वाशीर्वाद प्राप्त करती है, जिससे उनके पुत्र का सदैव भोग ही । यशोदा के उल्लास का चित्र परिवार जनों से लगी ~~उल्लास~~ शर्तों को पूरा करने की बात स्वीकार करने की प्रवृत्ति में अभिव्यक्त है। वे उतना ही नहीं देना चाहती, जितने की शर्त लगी है, बल्कि उससे चौगुना देने को उद्यत हैं। यशोदा के हृदय में कृष्ण-जन्म से उत्पन्न हर्ष, संचारी भाव के फलस्वरूप उनकी वात्सल्यानुभूति उल्लासमय रूप में प्रतिध्वनित हुई है। इस वानन्दातिरेक के कारण वे कृष्ण की वर्ण गाँठ पर विभिन्न प्रकार के दान देती हैं, जिससे कृष्ण को बहाँ का वाशीर्वा प्राप्त हो । जैसे-

जसुमति सब दिन दैत बधाई ।

भरे लाल की मोहि बिधाता बरस गाँठ दिसाई ॥

बैठी चौक गौद ते डोटा बाही लगनि धराई ।

बहुत दान पावन सब विप्र लालन दैसि सिताई ।

रुचि करि देहु कसीस ललन की वप वपेम्न चाहै ।

श्री विट्ठल गिरधरन गहि कनिया स्तुत रहहि सदाई ॥ २

कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन गंगा बाई के काव्य में सरसता एवं स्वाभाविकता से वर्णित हुआ है। कृष्ण के वर्तकृत सौंदर्य

१- राग कल्हस- भाग २ कीर्तन सण्ड पद १६

२- डा० सावित्री सिन्हा- मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया पृ० १६०

पर माता-पिता ही नहीं सभी जन सुग्ध हैं। यद्यपि वट्टकाय काव्य के सम-  
कथा गंगाबाई का काव्य भाव प्रणता की दृष्टि से शिथिल प्रतीत होता  
है, तथापि वातावरण निर्माण के अवसर पर उनकी भावाभिव्यक्ति आकर्षक  
है। कृष्ण से सम्बन्धित चर्चा को लेकर विभिन्न गीतों को गाकर, अपनी  
वात्सल्यपरक भावनाओं को अभिव्यक्त करके, सभी प्रसन्न हो रहे हैं। इस वाता-  
वरण की सजीवता अत्यन्त लुभावनी है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कृष्ण  
का वह सुन्दर रूप तथा वह वातावरण सजीव हो गया हो। उदाहरण -

‘सब कोई नाचत करत बधाये ।  
नर नारी वापुस मैं ते ते हरद वही लफ्टाये ॥  
गावत गीत भाँति भाँतिन के वप वपौ मन भाये ।  
काहू नहीं संभार रही तन प्रेम फुलकि सुख पाये ॥  
नन्द की रानी ने यह डोटा भले न जात्रहि जाये ॥  
श्री विट्ठलनाथ गिरधरन स्तौना हमरे भागन पाये ॥१

कृष्ण के सौन्दर्य के वर्णन के स्थान पर  
उनसे मिलन की चिर लालसा में दीप्त माता यशोदा के हृदय की आकुलता  
का चित्रण बीबी रत्नकृवरी के काव्य का वर्ण्य विषय है। मातृ-हृदय में  
संचित वात्सल्यपरक अनुभूति का केंद्र ~~है~~ उन्होंने उस समय किया है, जब  
बहुत समय व्यतीत होने के पश्चात् कुरुक्षेत्र में कृष्ण के आगमन का समाचार  
प्राप्त करती हैं। वे अपनी आनन्द के बतिरि को रोक नहीं पाती। वे विह्वल  
होकर कहती हैं। उदाहरण-

‘सुनत यशुमति ह्वै गई बीरी । ता ग्वालहि पूरति उठि वीरी ।  
जाये श्याम सत्य कहूँ मैया ? मोहि दिला बहु तनक कन्हैया ॥



निज लालन को कंठ लगाऊँ । दुसरे विरह को नसाऊँ ॥  
कह अब गहर करत बेकाजहिँ । भेंटहु बेगि सकल ब्रजराजहिँ ॥१

गदाधर भट्ट चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे । चैतन्य सम्प्रदाय में दीक्षित होकर राधा सर्व कृष्ण के मुरली-मोहर-सुगत रूप के साथ साथ इन्होंने माता यशोदा के हृदय का अवलीकन किया है। कृष्ण के बाल सौन्दर्य के वतिरिक्त इन्होंने उनकी विभिन्न लीलावर्णन का गान किया है। कृष्ण अपने क्रिया कलापी से माता यशोदा का ध्यान वाकचिंत करते हैं। वे पुत्र के क्लृप्तिक रूप को विस्मृत करके उन्हें पय-पान कराने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती हैं। यथा-

‘दधि मयनि नन्द नरेन्द्र राणी करति सुत गुण गान ।  
नील नीरद वंग दिव्य दुकूल वर परिधान ॥  
नेति कर्षति हर्ष धरुनि वलय कंकण पान ।  
स्वेद कण व्रण वदन विधु पर सुधाविन्दु समान ॥  
केश कुसुमनि करत मणि तारक फलकत कान ।  
पयोधर पय प्रवत , चातक- कृष्ण पित निधरान ॥ २

सूरदास मदनमोहन के कतिपय पदों का अवलीकन हमने राग कल्पद्रुम में किया । इन पदों के भाव प्रायः महाकवि सूरदास से मिलते हैं। सूरदास मदनमोहन के काव्य के वात्सल्यपरक पदों में कृष्ण-जन्म तथा उनके कलेज से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन है। कृष्ण की हठी प्रवृत्ति के कारण यशोदा उन्हें जबरदस्ती नहीं रोकती वरन फुसलाकर रोकती हैं। वे कृष्ण को गोपी के साथ नहीं जाने देना चाहती । उदाहरण-

१- डा० सावित्री सिन्हा- मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियों पृ० २०४

२- राग कल्पद्रुम-भाग २ कीर्तन सण्ड पद ८

'सैलिये वागिन कृगन मगन कीजिये कलेवा ।  
 कीकरी सारी दधि ऊपर तैं काढ़ि धरी पहिरि ।  
 लेहु फँगुली फँट बाँधि लेहु भवा ॥  
 ग्वाल के संग खेलन जाहु खेलन के मिश भूषण लाहु  
 कौन परी प्यारे ललन निशदिन की टैवा ।  
 सूरदास मदन मोहन घरहीं खेली प्यारे ललन  
 भँवरा चकठोर देहाँ हंस चकौर परेवा' ॥ १

कृष्ण की नवनीत वत्यधिक प्रिय था ।  
 कृष्ण के हाथ में नवनीत देकर माता यशोदा के हृदय में वात्सल्य-भाव  
 जाग्रत होता है। जिसकी माँकी रसिक प्रीतिम के फल में प्राप्त होती है।  
 माता के हाथ से कुछ लेने पर कृष्ण हँसते हैं। माँगने पर यदि माँ देर से  
 देती है तो हठ करके धरती पर लोट जाते हैं। उनकी इस ह्वि को यशोदा  
 देकर प्रसन्न होती है।<sup>२</sup>

वष्टाफ़र काव्य में हम उन कवियों के  
 काव्य का उल्लेख भी करना चाहेंगे जो सूर पूर्व ब्रज भाषा में कविता कर  
 रहे थे । इनके काव्य में वष्टाफ़र कवियों के सदृश माधुर्य दृष्टिगोचर होता  
 है। वात्सल्य की भावना से युक्त एक प्रभाती का जीवन इस प्रकार प्राप्त होता  
 है। जिसका प्रणयन वैष्णव भक्त कवि भानुदास जी ने किया । यथा-

'उठहु तात पात कहे रजनी की तिमिर गयो ।  
 मिलत बाल सकल ग्वाल सुन्दर कन्होई ।  
 जागहु गोपाल लाल जागहु, गोविन्द लाल जननी बलि  
 जाई ॥

१- राग कल्पद्रुम - भाग २ कीर्तन सण्ड पद १०

२-                    ..                    ..                    पद १८

सैगी सब फिरत बन तुम बिनु नहिं छूटत धनु  
 तजहु सयन कमल नयन सुन्दर सुखदाई ॥  
 मुँह तै पट दूर कीजै जननी को दर्श दीजौ  
 दधि सीर माँग लीजौ साँह जौ मिठाई ॥  
 भूफत भूफत श्याम राम सुन्दर मुख तब ललाम ॥  
 धाती की छूट कहु मानुदास भाई ॥ १

इसी प्रकार गुजराती कवि भालण ने भी कृष्ण की लीला के साथ ही माता यशोदा के हृदय की वात्सल्यानुभूति का प्रस्तुतीकरण किया है। यशोदा का कृष्ण को प्य पान कराना, उनका मुख चूमना आदि अत्यन्त स्वाभाविक रूप में भालण के कतिपय पदों में बंक्ति हुआ है। उदाहरण-

कौन तप कीनी री, माह नंद घटणी ।  
 ते उरुँग हरि हूँ पय पावत सुख चुम्बन मुख भीनी री ॥  
 तुप्त भये मोहन ब्र हसत हैं उमगत बधर ही कीनी री ।  
 ( यशोमती ) लटपट पूछन लागी वदन सेचि तब लीनी री ॥  
 रिदे लगाये वद ब्रु मीहि तू कुल देवा दीनी री ।  
 सुन्दरता वँग वँग कहा वरतूँ तेज ही सब जग हीनी री ।  
 कैतरिदा सुर चैत्रादिक बीतत ब्रज जन को दुख सीनी री ॥  
 यह रस सिंधु गान करि गाहत है भालण जन मन भीनी री ॥ २

उदघण की अन्तिम पंक्ति में कवि ने अपनी

१- डा० शिव प्रसाद सिंह - सुर पूर्व ब्रजभाषा और उनका साहित्य पृ० २३०

२-

..

..

पृ० ५३-५४

मनरूपी मीन की बालकृष्ण के रूप सुधा सागर में निमग्न होने का संकेत किया है। 'मीन' और जल का सम्बन्ध कटूट है। भक्त कवियों ने प्रेमियों के विविध वादशे अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किये हैं, यथा - चातक, चकौर, मयूर आदि। महाकवि सुरदास ने कवि भालण की प्रस्तुत उक्ति के समान ही मीन के प्रेम की वादशे प्रेम घोषित किया है। यथा- 'सुरदास मीनता कहु जल मर संग न छाड़त ।'

बाल्यकाल की मधुर स्मृतियाँ मानव-हृदय को आनंदीलित किया करती हैं। मनुष्य बीते हुए बाल्यकाल में एक बार फिर लौटने की आकांक्षा अपनी कल्पना में संजीता है। श्रीकृष्ण की बचपन की स्मृतियाँ विभोर कर देती हैं। वे देवकी के पास हैं, लेकिन निद्रावस्था में अवचेतन रूप से उनके मुख से निःसृत हो जाता है :

भैया मोहे भावे दधि मात निद्रा में हरि ऐसा बोले  
ठाढ़ी सुनत देवकी मात भैया  
तब बागे दंत ध्वनि कीनी निकट वाय जननी कहै प्रात  
दधि बौदन भोजन करौ लालन जो मा में रुचि सामल  
गात ॥ .

भैया सो तो ग्वाल को स्त्री जब भरे मा ने मात ।  
कहौ गोकुलीई ते लालन ऐसी कहै जननी सुसुकात ।  
कहाँ सींगी कहाँ दधि यमुना तट कहाँ वै रुचि कहाँ  
वैकुण्ठ पात ।

भालण प्रभु यहुनाथ कदत है बरस की ब्रज में बात ॥ १

उपसृत पद में स्मरण कर्त्तार का प्रयोग हुआ है। सुरदास ने इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए 'ऊधी मोहे ब्रज बिसरत नाहि' इत्यादि की सर्जना की है। इसी परम्परा का भाव सूर पर्वती जैसे भक्त कवियों ने अपनी काव्य में परोया। लरिकाई का प्रेम व्यथा बाल्यकाल की मधुर स्मृतियाँ शाश्वत होती हैं, और उनका प्रभाव मानव के जीवन में दूर व्यापी होता है।

#### (ब) कृष्ण भक्त कवियों की व्यक्तिगत वात्सल्यानुभूति

राम-भक्त कवि तुलसीदास की कृति 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की बाल-लीला के साथ ही उनके अप्रतिम सौन्दर्य का गान किया है। तुलसी ने कृष्ण के बाल-सौन्दर्य के वर्णन में अपनी व्यक्तिगत वत्सल-भावना का परिचय इन शब्दों में दिया है। यद्यपि माध्यम एक सती को बनाया है। जैसे-

‘ देख सती हरिबदन छंदु पर

चिक्कन कूटिल कतक कलती कवि, कहि न जाइ सीमा कतूप बर  
बाल भुवंगिनि निकर मन्हू मिलि रही धरि रस जानि सुधाकर  
तजि न सकहि नहि करहि पान कही कारण कौन विचारि

उरहि डर ॥

करन बज लोचन कपोल सुम, सुति मैदित कूँडल वति सुंदर ।

मन्हू सिंधु निज सुतहि मनावन पठए जुगलबंसीठ वारिचर ॥

नंद नंदन मुख सुन्दरता कहि न सकत सुत सेज उमावर ॥१

कृष्ण के उनींदी रूप का वर्णन कवि ने किया है। बालक की नींद पूरी न होने पर उसका मुल-सौंदर्य बढ़ जाता है, वह क्लसाईं दृष्टि से छ्धर उधर देखता है। कृष्ण का सौन्दर्य भी तुलसी की दृष्टि में और बढ़ जाता है :

‘बाज उनींदी बार मुरारी ।

आलसवत सुभग लीचन सखि किन मूँदत किन दैत उधारी ॥

माहूँ हँसु पर खजरीट दोउ ककुब जरुन बिधि रचे सँवारी ॥

कूटिल कलक जनु मार फँद कर गहे सजग हवै रह्यो सँवारी ।

माहूँ उड़न चाखत वति वंचल फलक फँस किन दैत पसारी ॥१

चन्द्रसखी ने वत्सल-भावनाओं का परिपाक यत्र तत्र किया है। भारतीय संस्कृति में पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर कुछ परम्पराओं का निर्वाह होता है। इन परम्पराओं के परिप्रिपक्ष में चन्द्रसखी ने व्यक्तिगत वात्सल्यानुभूति का परिचय इन शब्दों के माध्यम से दिया है। यथा-

‘बाजु सखी नंद नन्दन प्रगटे, गोकुल बजत बधाईं री ।

०

०

गृह गृह से सब बनिता बनिता के, मंगल गावत बाईं री ।

जो जैत तैसे उठि धाईं, वानन्व उर न समाईं री ।

चोवा चन्दन और वरगजा, दधि की कीच मचाईं री ।

यमला अर्जुन वृक्षा उपाये, यशुमति सुत उर लाईं री ।

बन्दी जन गन्धर्व गुन गावैं, शोभा वरणि न जाईं री ।

चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण क्लिब, चरण कमल चित लाईं री ॥२

१- वाचाय रामचन्द्र शुक्ल- तुलसी ग्रन्थावली पृ० ३६७ पद २२

२- पद्मावती शबनम - चन्द्रसखी और उनका काव्य पद १

वन्दससी की तरह सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजू

बाबरा के काव्य में भी उनकी व्यक्तिगत वत्सल-भावनाओं का आभास होता है। मध्यकालीन भक्ति-काव्य में संगीतकारों ने वात्सल्य-भावना का परिपाक कृष्ण के विभिन्न रूपों में किया है। यद्यपि कृष्ण का शृंगारिक रूप संगीतज्ञों को प्रिय है, तथापि यथा-कदा उन्होंने व्यक्तिगत अनुभूति भी उल्लेख किया है, जिसमें कृष्ण का बालक रूप भी चित्रित है। बैजूबाबरा का हृदय कृष्ण जन्म की फुलकन भरी पवित्र अनुभूति से गद्गद् दृष्टिगोचर होता है। जैसे-

‘एरी अब जानन्द भयो री ब्रज में श्रीकृष्ण जनम लियो बाज  
शुभ घरी शुभ दिन महूरत प्रगट भये ब्रजरान ।

ब्रजा वेद पढ़त महादेव दर्शन जाए नाचत गोपी ग्वार

नारद बीन बजाए स्वर साज ।

बैजू नंद महीछव देस पगत मए पूज मए छैला सुर नर सुनि

काज’ ॥ १

बैजू बाबरा भगवान् कृष्ण को भक्त-वत्सल

मानते हुए अपनी कोमल भावना का परिचय देते हैं। यथा-

‘दामोदर दया सिंधु भक्त-वत्सल भगवान् कैकुठपति वृन्दावन

धाम’ ॥ २

भारतीय संस्कृति का उद्घाटन करते हुए

अपनी वात्सल्य-भावना का परिपाक बैजू बाबरा ने इन शब्दों के माध्यम से इस प्रकार किया है। उदाहरण-

‘सुफल जनम भयो री वानंद गोकुल चंद बल्लभ बलिबंस उजियारी ।

१- सम्पादक - नमोदश्वर चतुर्वेदी- संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएं पृ० ६४

२-

..

..

पृ० ७५

नीके दिन नीकी घरी मुहुरत शुभ योग प्रगटे बड़े भाग नंद  
हुलारी ।

एक नाचत एक मंगल गावत एक मृदंग बोन एक घन शिलर  
उचारी ॥

एक हरद हूब दधि बरत रीरी ले छिस्कत बैजू करत कौलाहल  
भाए' ॥ १

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में कृष्ण के विभिन्न रूपों का प्रतिपादन कबूर के दरबारी कवियों ने भी किया है। 'ब्रह्म' उपनाम से कविता करने वाले प्रसिद्ध विद्वान् बीरबल ने कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित काव्य की सर्जना की है। कविवर बीरबल के कतिपय पदों में कृष्ण की बाल-रूप की शान्ति प्राप्त होती है। यद्यपि इनके इन्हीं में कृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन नहीं है, तथापि इन्होंने भक्ति रस में मग्न होकर श्रीकृष्ण के रूप लावण्य तथा तीतली वाणी पर न्याहावर होना जप तप की सिद्धि से बढ़ कर माना है।

'नंद कंदित ह्वै जलपे कलपे वति ही गति गातन की  
पद पानि मिलि द्विग वानंद सौं हवि बोन तई जल जातन  
की ।

'ब्रह्म' भने चुक्कारि कहै मोहि लागति है तुतरानन की ।  
झगना मगना वंगना विहरी बलि, जाह बाबा झ बातनि  
की' ॥ २

कवि हृदय इतने से ही तृप्त नहीं होता

१- सम्पादक - नमदेश्वर चतुर्वेदी- संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएं पृ० १

२- डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल - कबूरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० ३५६



वर्तु वह कल्पना में श्रीकृष्ण के उस रूप पर मौलित होता है जो वर्णनीय है और नवनीत हाथ में लिए हुए है। कवि कृष्ण के इस सौन्दर्य की बलियाँ लेता है। स्वयं इस रूप को देखकर कृत कृत होकर कहने लगता है :

‘नवनीत लिए निरस कर सौ नव नीरज सी बलियाँ

जुगराती ।

नव पल्लव से करके अधरा नव कुंद कली मुल में मृदु दाती ।

नूतन श्याम तमाल सखी सुलसै कवि होति हिए ते नहाती ।

पोहन मूरति नन्द लाला की क्लार्हें लगी द्विज ब्रस की

दाती ॥ १

बीरबल की वात्सल्य मय भावनाओं के उद्घाटन की प्रक्रिया में मर्यादित कोमल भावों का संयोजन है। कृष्ण के सुन्दर स्तनो मुख के वक्र के चित्रण की शैली सहज तुलसीदास की स्मृति करा देती है। बीरबल ने कृष्ण की लीलाओंका गान न करके उनके प्रति हृदयगत वात्सल्य भावना का चित्राकन किया है, जिससे बालक कृष्ण का सौन्दर्य सजीव बन गया है।

बीरबल की ही भाँति सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन ने भी अपने हृदय के फर्रोसों से कृष्ण के वप्रतिम सौंदर्य का अवलोकन किया है। कृष्ण का वह रूप उन्हें विमग्न कर देता है जो वंशी लिए हुए, कंधे पर कामरिया डालकर उनकी कल्पना लोक में विचरते रहते हैं। यथा-

‘बाज बन बन मुरली बजावत सुधि सिधि सुध तान कैलैया ।

काधे कमरिया हाथ लकुटिया टेढ़े ही टेढ़े बावत नंद को कुँवर

कन्हैया ॥

सावरी सूरत माधुरी मूरत बृंदावन के बसैया ।

तानसेन प्रभु बनवारी गिरधारी ब्रज बिहारी बलि जु के भैया<sup>१</sup> ॥

श्रीकृष्ण का सौन्दर्य तानसेन के हृदय को मोहित कर लेता है। उनके जंग-जंग के सौन्दर्य का वर्णन तानसेन की मक्ति - वात्सल्य पूर्ण शब्दों में इस प्रकार हुआ है :

‘मानों बिधु घूँघर वारे वार डार कतरी बनार है ।

टीका कीन जान चारों बिध सँजन नैन मीन मृग को लजार है ।

नासा कीर दसन दाढ़म कुच श्रीफल से दरसार हैं ।

तानसेन प्रभु को रस बस कर लेने चंद्र बदन देसार हैं ॥ २

(इ) कृष्ण की क्लृप्तिक लीलाओं में वात्सल्य भाव

मध्ययुगीन काव्य में वष्टकाप कवियों ने कृष्ण की क्लृप्तिक लीलाओं का गान अत्यन्त विस्तृत रूप में किया है। वष्टकाप कवि भी कृष्ण के क्लृप्तिक रूप से प्रभावित थे। उनका हृदय कृष्ण की सामान्य बालक के रूप में कल्पना करता था, लेकिन उनका विवेक, उनकी बुद्धि कृष्ण के क्लृप्तिक रूप को ही स्वीकार करती थी। वष्टकाप तथा वष्टकाप कवि काव्य में कृष्ण की लीला तथा क्लृप्तिक दोनों ही लीलाओं का गान है। क्लृप्तिक रूप के वर्णन में भक्त कवियों की लेखनी ने हृदय को नहीं बुद्धि को प्रधानता दी है। यही कारण है उनके क्लृप्तिक रूप कृष्ण मानवैतर काम भी सहज से घर लेते हैं, क्योंकि बालक होते हुए भी<sup>१</sup> ईश्वर हैं।

१- संपा० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी - संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ पृ० ८६

२-

..

..

पृ० १२३

चन्द्रसखी की यशोदा यद्यपि कृष्ण के बालक के समान नचाती है। माँ कहने पर प्रसन्नता भी दिखाती है, तथापि उनके मस्तिष्क में श्रीकृष्ण के क्लृप्तिक रूप की छाप सदैव विद्यमान रहती है। यशोदा के हृदय में पुत्र के प्रति वात्सल्यानुभूति तथा उनकी सहज बाल-क्रीड़ाओं के प्रति वाकर्णिक हैं। 'तीन लोक के तुल धनियाँ' कहकर वे श्रीकृष्ण के क्लृप्तिक स्वरूप की ओर हैगित करती हैं :

‘बाजै बाजै लाल तेरी पैनियाँ हो रत्न भुनिया ।  
पैनियाँ जै अधिक सुहावै, मोहि लिए सुर नर मुनिया ।  
नील वंग पीत कैंगुलिया रत्न जड़ाव की पैनियाँ ॥

०

०

यशुमति सुत को चलन सिखावै, कैंगुली फरि लिये दोउ  
जनियाँ ॥

छोटे छोटे चरण चतुर्भुज मूरति, क्लृप्त फलक रही नागि-  
नियाँ ॥

शिव ब्रह्मा जाको पार न पावै, ताहि नचावै ग्वातिनियाँ  
चन्द्रसखी मजु बालकृष्ण खि, तीन लोक के तुल धनियाँ' ॥१८

इतना नहीं चन्द्रसखी स्वयं भी कृष्ण के क्लृप्तिक रूप को स्वीकार करती हुई कहती हैं :

‘परम धाम गौ लोक कोदि कै, वृन्दावन हरि वायो री ।  
कृष्ण पु वसुदेव देवकी, नन्द भवन पहुँचायो री ॥

१- फल्गुवती शबनम - चन्द्रसखी और उनका काव्य पद ६ बाल लीला



दो पदा किये गये हैं- संयोग पदा एवं वियोग पदा । प्रिय के सहयोग , उसकी उपस्थिति के आभास से जिन भावनाओं का उद्भूत होता है, वह काव्य का संयोग पदा और प्रिय के अभाव में उत्पन्न उत्पीड़न , कष्टों तथा विह्वलता का नाम वियोग पदा होता है। वात्सल्य-भाव की संयोग की अवस्था में, जहाँ संतान की उपस्थिति माता पिता के हृदय में आनन्द एवं उल्लास की भावनाओं का उद्भूत करती है, वहीं वियोग की परिस्थिति में संतान के बिना समस्त संसार ही शून्य प्रतीत होता है। संतान की स्मृति प्रतिपादन हृदय को उद्देति करती है। फलस्वरूप मानसिक एवं शारीरिक रूप से हृदय में वात्सल्य भाव हर क्षण उमड़ता रहता है। वियोग के चित्रण में बालक की स्मृति तथा उसके क्रिया कलाप प्रतिबिम्बित होते हैं। ऐसी स्थिति में संतान के सुख की कामना ही माता पिता की एकमात्र भावना होती है। वष्टकाप कवियों की ही तरह वष्टकाक्षर कवियों ने अपनी काव्य में वियोग वात्सल्य की भावना का उद्घाटन, कृष्ण के वियोग में दुःखी यशोदा का चित्र में वर्णित किया है। माता यशोदा कृष्ण की निकटता के लिए सामान्य माता की ही तरह तड़पती है।

चन्द्रसती ने कृष्ण के वन से घर देर में जाने पर यशोदा के हृदय की व्याकुलता का चित्रण किया है। वे झर झर मटकती हैं, सभी से पूछती हैं कि उनका बेटा अभी तक क्यों नहीं आया और जैसे ही उन्हें अपनी बेटा दिखायी पड़ जाता है, प्रसन्नता के अतिरिक्त से उनके नयनों में पानी भर जाता है। उदाहरण-

‘बाबु मेरी कहाँ ष्टकयो है गिरधारी ।

सोजत सोजत फिरति यशोदा पर घर करत पुझारी ।

कारन कवन लखत नहि जायो, केश काल मये मारी ।  
 यूथ यूथ सलियाँ चली वार्ह, दैत यशोदे मारी ।  
 नन्द नन्दन को जोर जुठेनो, सँचत बैचल सारी ।  
 लम्क भूम्क मोहन बलि जाये, नयन तीर मरि मारी ।  
 मुरली मोरी छीन लई है, इन सलियन मोहि मारी ॥ १

कृष्ण का बाल- सौन्दर्य , विभिन्न बाल चैष्टायें, श्रीद्वायें तथा माता यशोदा के हृदय की वत्सल-भावनावों के साथ ही कवि ब्रजवासीदास ने बड़ी कुशलता के साथ माता यशोदा, देवकी, नंद के हृदय की प्रसन्नता के साथ ही व्याकुलता का चित्रण किया है। कवि ने पुत्र के विरह की व्याकुलता, भावी वनिष्ट की आशंका से हृदय की व्याकुलता का हृदय ग्राही चित्रांकन किया है। माता का हृदय संतान की प्रसन्नता से प्रसन्न एवं संतान की व्याकुलता से व्याकुल हो जाता है। कृष्ण यमुना से पुष्प लाने के लिए जाते हैं। इस समय यशोदा के हृदय की आशंका का वर्णन कवि ने अत्यन्त मार्मिक किया है। यशोदा सोचती है कि कालिदास कहीं कृष्ण की जीवन-लीला समाप्त न कर दे । कृष्ण से वियोग की आशंका उनके हृदय को व्यथित कर देती है। उदाहरण-

‘भई बिना सुत व्याकुल मैया, कहत कहाँ मेरी बाल कन्हैया ।  
 गिरी धरणि व्याकुल मुरझाई, रीय उठे सब लोगलुगाई ॥१

उस समय यशोदा के हृदय की स्थिति कितनी-  
 कनीय है, जब वृद्ध श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए जाते हैं। यथा-

१- फद्मावती शबनम - चन्द्रसखी और उनका काव्य पद ७

२- ब्रजवासीदास - ब्रजविलास पृ० १६६

‘देहु नहीं ही जान, मी निधनी के धन ।

लेहै कंस बस प्रान, को जीवै नन्द नन्द बिन’ ॥ १

कुर के साथ कृष्ण मथुरा चले गये । नंद उनके साथ ही गये थे । यशोदा के हृदय में एक किरण है कि शायद कृष्ण नंद के साथ उनके पास लौट वाये । जब वे नंद को कौन्ता ही देखती हैं तब उनकी अत्यधिक निराशा होती है, वे रुष्ट होकर नंद से अपनी हृदय की वेदना को कहती हैं :

‘धिग धिग महर कहा यह कीनी ,

मथुरा तजि ब्रज फा दीनी ।

मायग भूमि परउ केहि मांति,

बिदा होत फाटी नहि हाती ॥

बर्द बचन सुनत उठि धाये,

कहा लैन सुल ब्रज में वाए ॥ २

मथुरा जाकर श्रीकृष्ण राजा ही जाते हैं। लेकिन माता यशोदा उन्हें अपनी ही दृष्टि से निरस्त हैं। वे सोचती हैं, कृष्ण की दही मासक अच्छा लगता है, फला नहीं वहाँ उन्हें मिलता होगा, क्या नहीं । यथा-

‘दही मही मासक नित जाई सात कान के धाम कन्हाई ।

कान ग्वाल बालन के साथी, भोजन करत तहाँ ब्रजनाथ ॥

उद्धव मथुरा से कृष्ण का उपदेश लेकर आते

१- ब्रजवासीदास - ब्रजविलास पृ० ४८२

२-        ..                                .. पृ० ५२३

३-        ..                                .. पृ० ५४६

हैं, प्रत्युत्तर में यशोदा की विकलता केवल एक ही शब्द में निकलती है कि कृष्ण ब्रज लौट वापें और कुछ नहीं। कृष्ण के वियोग में यशोदा के हृदय की वात्सल्य भावना उत्कृष्ट है। यथा-

‘कहियो बहुरि स्त्री समुझाई, तुम बिन दुस्ति यशोमति माई  
स्तनी दया मात पै कीजै, एक बार दर्शन फिर दीजै’ ॥ १

यशोदा का हृदय कृष्ण के आव को भिन्न अभिव्यक्तियों के माध्यम से व्यक्त करता है। वे किसी भी तरह कृष्ण को अपने सम्मुख रखना चाहती हैं। लेकिन कृष्ण की माता देवकी उस दाण की वाशंका से ही भयभीत हो जाती है; जब उन्हें कारागार में ही यह स्मरण होता है कि कैसे कृष्ण के जीवन की स्तरा है। इस माताभावना का वात्सल्य परक उद्घाटन तब होता है जब वसुदेव कृष्ण के वागमन से सम्बन्धित स्वप्न की सूचना देवकी को देते हैं, और देवकी भयभीत होकर कहने लगती है :

‘सुनि तिय कहै नयन मरि पानी, कहत कहा पिय ऐसी बानी ।  
सुनि है दूत कोउ दुस्तदाई, कहि है अबहि कैसे सौं जाई’ ॥ २

कृष्णके जन्म के पश्चात् जब माता देवकी को यह ज्ञात होता है कि उनका पुत्र सदैव के लिए उनसे विच्छेद जायेगा, तब उनकी वात्मा कराह उठती है। संतान के वियोग की वात्सल्यानुभूति उनके हृदय को इतना कचोटती है कि वे बार-बार श्रीकृष्ण को हृदय से लगाकर भी तृप्त नहीं होती। यथा-

‘तब जननी निश्चय करि जानी, रोवन लागी कण्ठ लफ्टानी  
बारहि बार कहति उर लाये, मैं नहि कबहुँ गौद सिलाये’ ॥ ३

१- ब्रज विलास - ब्रजवासीदास पृ० ५७६

२-       ,,                       ,,                       ५१२

३-       ,,                       ,,                       ५१२



बार-बार हृदय से श्रीकृष्ण को लगाते हुए देवकी अपनी पुत्र को वसुदेव के साथ भेज देती है, वे इस विद्वोह के पाण में तड़प कर रोना चाहती है, किन्तु पुत्र के भविष्य के अनिष्ट की आशंका से आवाज भी नहीं निकाल पाती। माता के हृदय की इस विवशता से युक्त स्थिति का बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण 'ब्रज विलास' में प्राप्त होता है। जैसे-

'बैठत उठत अधीर, व्याकुल सोइ सेज पर ।

पीड़ित नयन नीर, बोलि सकत नहिं कंस भय' ॥ १

देवकी के साथ ही कृष्ण से विद्वोह की स्थिति की कल्पना से नंद भी अत्यधिक चिन्तित होते हैं। फिर प्रेम का परिचय कृष्ण वियोग के परिप्रिय में 'ब्रजविलास' में बहुत ही मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया गया है। नंद पुत्र के कुशलता के लिए शुभ अशुभ कई बातें सोचने लगते हैं। यथा-

'निकसत शकुन अशुभ मगवायो, ताते अधिक सोच डर छायो

दिग चलै कहु सुधि तन नाही, बालक की चिंता म

माही' ॥ १

निष्कर्ष

मध्यकालीन अष्टशक्तिर काव्य में वात्सल्य भाव का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि अष्टशक्तिर कवियों का संपूर्ण प्रभाव इनके काव्य पर पड़ा है। अष्टशक्तिर कवि सूर की काव्य शैली ,

१- ब्रजविलास- ब्रजविलास पृ० ४२४

२- .. .. पृ० ३१

माया एवं वात्सल्यरक्त भावना का स्पष्ट प्रभाव वष्टकाक्षर काव्य पर देखा जा सकता है। कहीं कहीं तो ऐसा म्तीत होता है मानो सूरदास का ही पद कुछ परिवर्तन के साथ चित्रित हुआ है। वष्टकाक्षर काव्य मनीषा-निक रूप से कृष्ण के लौकिक जीवन पर आधारित कथानक से सम्बन्धित है। काव्य में यशोदा के हृदय का ममत्व, कृष्ण के वियोग में उनकी वाकुलता, कृष्ण की बाल-सुलभ-लीलाओं के साथ ही समस्त ब्रज के नर-नारियों का वात्सल्य प्राप्त होता है। वष्टकाक्षर काव्य का वात्सल्य भाव भी वल्लभाचार्य की मक्ति पद्धति से ही प्रभावित है। वात्सल्य की नैसर्गिक विचारधारा के प्रसार पर बाह्य जीवन के प्रतिकूल सिद्धान्तों तथा बाह्यम्बरों का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। यही कारण है कृष्ण भक्त कवियों की वात्सल्यामि-व्यक्ति के सम्मुख समस्त कृत्रिम अन्य वासना का लोप हो जाता है। कृष्ण के लौकिक जीवन के लौकिक सचि में डालकर वष्टकाक्षर कवियों ने माता यशोदा की मनीभावना का विवेचन किया है।

...

## अष्ट अध्याय

### रीतियुगीन काव्य में बाल-भाव सम्बन्धी साहित्य का

#### व्ययन

- अ- शृंगार के श्रौढ़ में वात्सल्य-भाव का समावेश
- आ- पुत्र जन्म के अवसर पर वात्सल्याभिव्यक्ति
- इ- सांस्कृतिक एवं सामाजिक संदर्भों में बाल- भाव की अभिव्यक्ति
- ई- मातृ-हृदय में वात्सल्य-भाव का उद्गार
- उ- कृष्ण के अलौकिक बाल-रूपों पर आधारित वात्सल्याभिव्यक्ति
- ऊ- कृष्ण के लौकिक बाल रूपों पर आधारित वात्सल्याभिव्यक्ति

## कव्याय ६

### रीतियुगीन काव्य में बात- भाव सम्बन्धी साहित्य का

#### कव्यम

हिन्दी साहित्य के बाबोबान्त प्रगुतिगत कव्यम के परिणामस्वरुप यल तल्य सन्मुत बाता है, कि विविध कालों में काव्य प्रतिभा ने बड़े विविध ढाङ्ग तिर हैं। मचितकाल के कवियों ने भाव-विभीरु होकर कविता काफ्ति के चरणों में दिव्य अनुप्रतिर्बों के सुनहरे नूपुर बाधि में और कव्य के तारों की फफार की बीणा के सुधुर तारों में धिरो कर स्वरों में उषो दिया बा। रीतिकाल के बाते बाते कविता प्रीदता की बीर ब्यधर हुं। अपने बीदिक बयत्कार के द्वारा कवियों ने कविता की रीतिकद तथा रीति बिद करने के बाव साथ उले हिन्दी बीतों में प्रेम के गभीर भावलीक तक पहुँचाने की भावुकता का परिचय दिया। हिन्दी के बन्धों में कछी हुं काव्य प्रतिभा बलंरुण के ऐसी बगमनाहं कि उषने साहित्य निातिम पर एक बकाबाधि बी फैला दी। हुंनार के प्रभाव में बहुत कुछ हुब गया। बीयोन एवं विप्रलम्ब के कृत किनारों के बीब हुंनार की रबीती बरिता उषन बली। इसके बतिरिबत अन्य रषों का भी यल-तल बरिपाक रीतिकासीन काव्य में दृष्टिगीबर होता है। मुषण बीर ताल कवि की बीरत्वपूर्ण रचनायें सार्कका लिमहत्व की हैं। देव केले फहाकवियों ने बेराग्य बीर मचित की भावनाओं की उषाने में कबर नहीं रलसी। परन्तु बल बल कुछ सुतहुले ही थे। हमारे विवेक्य विषय की बीर रीतियुगीन कवियों ने कौं हं उल्लेखीय

कार्य नहीं किया। वे प्रकृति के वान्तरिक तथा बाह्य पदार्थों के प्रति प्रायः पारद्वन्द्वित ही रहे, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि वात्सल्य वैसी विमल एवं उत्कृष्ट भावना उपेक्षित हो गई। रूंगारमक नितार और नवरिया ती भक्तिकासीन साहित्य के परिमेल्य में बदलता बदलता गया, परन्तु वात्सल्य की शुद्ध एवं भावमयि कल्पना व अभिव्यक्ति रीतिकाल में विलुप्त विरत हो गई। इस तथ्य से हम निराश नहीं हुए हैं बल्कि हमने रीतिकासीन काव्य के अन्तर्गत वात्सल्य-भावना के कर्णों को चुनने और बटोरीने का प्रयास किया है। हुँदने पर हमारे काम के अनेक खेदों और प्रयत्न उपलब्ध हुए हैं। इस प्रकार पिपीलिका वृत्ति से संवित वात्सल्य के अनेक कृत कवि कर्म के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये गये हैं। वात्सल्य की जो कल्पितियाँ तथा विवृत्तियाँ रीतिकाल में प्राप्य है। वे मन की हूँ गई हैं। इस प्रकार जबपि रीतिकासीन काव्य में सामाजिक जीवन में व्याप्त रूंगारमक वातावरण में वात्सल्य-भाव का अस्तित्व पायस की हनमुन में समाहित हो गया था, तथापि मानव की स्वाभाविक मनोवृत्ति बाहे रूंगार की और में ही सही फिर भी अपना अक्षीर्ण मार्ग पाकर स्निग्ध धारा के रूप में प्रवाहित हो गई।

#### (ब) रूंगार के शीत में वात्सल्य-भाव का समावेश

रीतिकाल में वात्सल्य भाव का उल्लेख रीति-बद्ध, रीतिमुक्त काव्य में प्राप्त होता है। रीतिकाल में रीतिबद्ध कवि विहारी के काव्य में वात्सल्य का उद्घाटन प्रमुख रूप से रूंगार के शीत में अभिव्यक्ति हुआ है। वहाँ वात्सल्य ती स्वयं रूंगार की स्निग्ध स्तित्त बाया पाकर तुषा हुआ है। हाँ साथ में कवि की अपनी कुदयगत भावना में वात्सल्यगत भावों के प्रतिपादन के तिर भी उसी अक्षी अक्षी हुँदने का प्रयास करना पड़ा है। अक्षी

कि बिहारी ने नायिका की वात्सल्यस्था व्यतीत होती और जीवन के प्राप्ति की स्थिति का विश्लेषण किया है, अर्थात् वयः सन्धि नायिका के रूप सावध्य का वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है :

‘हृष्टी न विभुता की मल्ल , फलया बीज्य बीज ।  
दोषति देह ह्युन भित्ति, दिप्त ताकता री’ १<sup>१</sup>

इसी प्रकार कुराव में मस्त प्रीति नायिका नायक के प्रति अपनी पुक्तता की खति पुन के मुन की भुन कर प्रदर्शित करती है। उदाहरण-

‘विहीनि हस्ताया बितोकि उत, प्रीति तिया रस धूमि ।  
पुतकि फलीवति पुत की वि धूम्यो मुत धूमि’ १२

उपश्रुत दोहे में यद्यपि सीधी सरल भाषा में वात्सल्य भाव का उल्लेख बहिष्कृत नहीं होता तथापि किंतु मुत धूम्य की<sup>उच्छा,</sup> नायिका के हृदय में ललक, अवश्य वात्सल्य भाव से प्रेरित है। इस वात्सल्य रस को उल्लेख करने में यह कर्ण धारणी भाव के रूप में नायिका के हृदय में उत्पन्न हुआ जो नायक के वस्त्र से प्रभावित है। इसी प्रकार बिहारी ने नायक की भावनाओं का आरोप किंतु मुत धूम्य लेने के बताने से वर्णित करके नायिका के उरीकों के स्पर्श का सुभारपक चित्रित किया है। यथा-

‘सहिता लेवे हैं मिसुन संगरु मों द्विग बाह ।  
नयो बलानक बांगुरी हाती बस हवाह’ १३

-----कलकत्ता विश्वविद्यालय, १० विभाग, १० विभाग

१- सासा भगवानदीन - बिहारी कोचिनी, दोहा १६६

२- जगन्नाथदास रत्नाकर - बिहारी रत्नाकर, दोहा ६१७

३- लाला भगवानदीन - बिहारी कोचिनी, दो. २४८

नायक के हृदय में नायिका की देखकर गर्व,  
हर्ष तथा आवेग आदि संवारी भावों का उद्भूत होता है जो नायक वात्सल्य-  
भाव के माध्यम बनाकर नायिका के समक्ष प्रदर्शित करता है। विहारी के काव्य  
में व्यक्ति भाव यद्यपि रति भाव का ही उद्घाटन करते हैं, तथापि वे उन भावों  
को प्रदर्शित करने में नायक एवं नायिका ने संतान को माध्यम बनाकर अपनी  
वात्सल्य-भावना का परिचय दिया है। इसका कारण यही कहा जा सकता  
है कि तत्कालीन विवाही प्रवृत्ति की तरंगमें मनुष्य की कोमल भावनाओं को  
सरल-सीधी अभिव्यक्ति का मार्ग अवलम्बित हो गया था। यही कारण है कवि  
लेखनी में अपनी वात्सल्यानुभूति का परिचय कुँनार के झोंद में ही दे रही  
है। विहारी ने पुत्र के जन्म के समय जन्म-पक्षी दिखाने की, ज्योतिषी के मन  
के हर्ष की अभिव्यक्ति निम्नलिखित शब्दों में किया है :

चित्त किमुनाह बोग बुनि, भयो भये सुत रोग ।

फिरि हुतस्वी भिय बोकसी, समुह्यो बारन-योग ॥१॥

विहारी के काव्य में वात्सल्य-भाव का  
समीपग विवर्ण प्राप्त नहीं होता अपितु कतिपय स्थलों पर कुँनार की  
भावना के द्वारा वात्सल्य-भाव के उद्भूत का आभास मात्र होता है।

रससिद्ध कवि रसतान के काव्य में यक्ष-तन्त्र  
वात्सल्यानुभूति, रीतिकालीन कवियों की तरह कुँनार के परिप्रिय में भी प्रकट  
हुं हैं। इन स्थलों में कवि ने कुँनारिक विचारों का प्रतिपादन सम्भावित भाव  
से करते, भक्ति-भावना का एवं अपनी वात्सल्यानुभूति का परिचय देकर वात्सल्य-  
रस के कवियों में अपना स्थान बताया है। कुँनारिक विचारधारा का वात्सल्य-  
भाव पर प्रतिष्ठापित तत्कालीन वातावरण का प्रभाव मात्र ही कहा जा सकता  
है। को-

‘हीर की जाइत बीर नहीं र तू तेहु न केतक हीर बनेही ।  
 बासन के निच मासन मांगत ताहु न पासन केतिक सेंही ॥  
 जानत ही बिच की रहतानि धु काहे की रहतिक बात बदे ही ।  
 गोरख के निच की रह जाइत ही रह कान्ह तू नेहु न पैही ॥१

उपरोक्त श्लोक में कवि रघुनान ने एक गीषी की मःस्थिति को अभिव्यक्ति किया है। गीषी कृष्ण की वात्सल्य ही समझती है कतः वह कृष्ण के दूध मांगने पर कहती है कि तू ने भी देखती हूँ कि तुम कितना दूध पी जाओगे। बासने के बहाने मासन मांगने पर, वहीं मांगने पर, वह कह उठती है कि निच इन्द्रिय-सुख की कामना तुम करते हो वह तुम्हें तनिक भी न मिला। गीषी के हृदय के छात्तिक मन्त्र का चित्रण है। कृष्ण के हृदय में रूंगार की भावना है। गोरख की बात यद्यपि बाल्य की भावना है तथापि यहाँ नारी-मन की छात्तिकता का चित्र है जिसे रूंगार की ओर में अभिव्यक्ति किया गया है।

(धा) पुन बन्म के जखर पर वात्सल्य-भिव्यक्ति

रीति युगीन काव्य में यद्यपि रूंगार से युक्त भावना का आश्रय है तथापि मयित काल की कौमल स्वाभाविक एवं स्निग्ध वात्सल्य-भावना रीति-शास्त्र के कतिपय मन्त्र एवं रीतियुक्त कवियों के काव्य में अविरत रूप से प्रभावित हुई है। उगुण-मयित-धारा से प्रभावित होकर मन्त्र कवियों ने कृष्ण एवं राम के बन्म के शुभ जखर का सुन्दर वातावरण चित्रित करके वात्सल्य-भाव का परिपाक किया है। इस क्लासिक वातावरण को हीनिक रंग में रंगकर प्रस्तुत करने में रीतिशास्त्री कवि धनार्द का नाम उल्लेखनीय है।

१- देहरादूँ सिह भाटी- रघुनान ग्रन्थावली पृ० २२२



फनार्नद का काव्य रीति परम्परा से युक्त स्वच्छन्द अभिव्यक्ति से युक्त काव्य की संज्ञा में अग्रगण्य है। यशुरा नरित के मुख्य प्रेमी कवि होते हुए भी उनके काव्य में सगुण कवि के हृदय की वात्सल्य-भावना की अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। कृष्ण, राम एवं राधा के जन्म का वातावरण एवं तत्कालीन वातावरण का चित्रांकन यद्यपि अत्यन्त बरूप फर्कों में प्राप्य है, तथापि वे मानव हृदय की वात्सल्य की अभिव्यक्ति कराने में सक्षम हैं। राम-जन्म के दृष्टांतों की वे सुभ एवं मागवान मानते हैं। वे दशरथ एवं कौसल्या के जीवन के धन्य मानते हैं जिनके घर जगत् की जीवन प्रदान करने वाले श्री राम ने जन्म लिया है। उदाहरण-

‘जन्मे राम जगत् के जीवन धनि कौसल्या धनि  
दशरथदेन ।

वसध पुरी मधि कलामीह इवि नरनारी फूले बनिदन  
बानंद बध्न बरसत सुत सरसत कहनाकर उदार रसुंदन’ १२

इसी प्रकार फनार्नद के कौसल्या के पुत्र राम-जन्म से दशरथ के भाग्य का उल्लेख करते हैं जिनके घर में सर्वगुण सम्पन्न राम बन्धु ने जन्म लिया है। उदाहरण-

‘कौसल्या की कौसि सुभ सुभ पुत्र रामबन्धु ।

०

०

दशरथ भाग कहा कहि बरनौ सुत देसियत सुसुतन बी’ १३

कृष्ण-जन्म के वसध पर फनार्नद ने वफाी प्रसन्नता का उल्लेख इस प्रकार किया है :

१- बीपा० विश्वनाथ प्रसाद वि०- फनार्नद ग्रन्थावली पृष्ठ १८५

२-

..

..

६२७

‘मंदिलारा बावै ऐग छीं ब्रजपति मंदिर में वानंद ।

बहुमति रानी कृति सिरानी फाटे हैं ब्रजवंद ॥ १

राम एवं कृष्ण बन्ध की प्रसन्नता से कवि की वात्सल्य-भावना तुष्ट नहीं होती। वह राधा के बन्ध से प्रसन्न होकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। जैसे-

‘साध प्रवी भै मन की नू कीरति कन्या बाई ।

बहुमति के ब्रज बीजन फाटे देखि मयी सुत यह सुतना निधि बाई ॥ २

(क) सांस्कृतिक एवं सामाजिक छंदों में बाल-भाव की अभिव्यक्ति

रीतिकालीन भक्त कवियों का बालक काव्य मत्सी एवं बाल भावनाओं के प्रगिय में सिता गया है। यही कारण है कि भावनाओं का गहनतम, बहुतायुक्त समत्कारित रूप उनके काव्य में ब्रजप्राप्य है। वहाँ समुण भक्ति युग की भावनाओं का संगम है। वहाँ काव्य में विभिन्न सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक पदा का उद्घाटन वात्सल्य-भाव की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। इस दृष्टि से सुप्रसिद्ध रीतिकालीन कवि रसतान का काव्य विशेष उत्तेजनीय है। रसतान के काव्य का विनयगत विवेचन करने पर यह प्रतिभासित होता है कि उन्होंने सामान्यतः वात्सल्य के संयोगादित पदा की व्यतारणा की है, जिसका मूल उत्पन्न वात्सल्य की विविध तीक्ष्णता है। रसतान ने निःसंदेह बालक कवियों की वात्सल्य बन्ध को बताना की सुतलित छंदों के अन्तर्गत वात्सल्य के समर्थ एवं विवेक युक्त वि के रूप में प्रकट किये हैं।

१- संपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- वानंद ग्रन्थावली पृष्ठ ६४७

२-

..

..

पृष्ठ ६४२

रसतान के काव्य में भारतीय संस्कृति एवं जनजीवन का व्यावहारिक पक्ष वास्तव्य भावना को उद्भूत करने में सक्षम है। कृष्ण जन्म के प्रसंग में झूठी के उत्सव का संस्कृतिक रूप रसतान के काव्य में इस प्रकार वर्णित है। यथा-

‘लास की झूठी जब लोग जानन्वित नन्द कह्यो जम्हावत ।  
नाझ नाहू बीधाझ ते महुं वीर कृदम्भ जपात न जावत ।  
नाजत बास के रसतान के हित काहू के ताव न जावत ।  
तेसोइ मात पिताउ सह्यो उत्सह्यो कृत हो कृत हो पहि-  
रावत ॥ १

कृष्ण के जन्म के क्षण अवसर पर केवल माता-पिता के हृदय में ही नहीं समस्त ब्रजवासियों के हृदय में हर्ष, आवेग, गर्व आदि अचारी भावों की अधिकता के कारण वास्तव्य-भाव का उद्भूत होता है। रसतान मनोवैज्ञानिक ढंग से अपनी अनुभूति को व्यक्त करते हैं, जिसके फलस्वरूप भावना के उद्वेग होते हुए उनकी अनुभूति साधारण व्यक्तित्व की उसी अनुभूति का अहसास करा देती है, जिसका वर्णन कवि ने अपनी काव्य में किया है। जैसा परहराम बतुर्वेदी जी का विचार है :

“रसतान ने जो अपनी प्रेम सजाणा भवित का परिचय दिया है, उसके अधिकतर व्यक्तित्वगत उद्गारों द्वारा ही प्रकट करने की चेष्टा की गई है। उनमें कवि ने अपना ही हृदय सील कर रस दिया है।”

जानंद ने राम-जन्म के अवसर पर परम्परा

१- श्री० बेशराज सिंह भाटी - रसतान ग्रन्थावली पृ० १७६

२- परहराम बतुर्वेदी - हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह पृ० ६६

का निर्वाह करते हुए स्वध निवासी द्वारा गाये कथाहेतुत मंगल-गीत का वर्णन किया है। इन गीतों में वानन्द की भावामिष्यवित्त हुं है ,  
 किके द्वारा नगरवाधियों ने अपनी वात्सल्यानुभूति का परिचय दिया है। ये-  
 है। ये-

‘बाज मंदिरा दरखराय के बाजे रंग कथाई है।

कौसल्या की कौलि धिरानी बगबंदन रघुनंदन प्रगटे, सब मन  
 भाई है ।

स्वधपुरी वानंद फर लाग्यी उधरी भाग निकार है।

बहुं वीर मंगल धुनि सुनियत राम बुझाई है’ ॥ १

‘राम-जन्म के वसर पर सभी बसोढ्या  
 निवासी फुले फुले फिर रहे हैं, केवल यही नहीं देवता की हृदय वसर पर  
 वानन्द का अनुभव कर रहे हैं। कवि घनानंद की ऐसा प्रतीति होता है, मानो  
 भगवान् राम के जन्म से पात्र से दुःख एवं दरिद्र दूर हो गये हों :

‘राम जगजीवन काम लियो, जुझायी बननी करु दियो ।

निखधि वानंद उदधि स्वधपुरी मधि घर घर

बावति रंग कथाई फुले फिरत नर तियो ।

छिब बिधि सुत सकादि धुर- समूह वानंदित

मूष भवन मीर भई सकी जीव जियो ।

वानन्दफन फर लाग्यी सुत वारिद दूर भाग्यी दरख

दातार बिन जी माग्यी सु तेहि दियो ॥ २

१- विश्वनाथ प्रसाद मि- घनानंद ग्रन्थावली पृ ६२५

२-                    ..                    ..                    पृ ६२७

भारतीय संस्कृति में ब्याह गीत की एक परम्परा है। प्रत्येक जुन अवसर पर ब्याह गीत गाये जाते हैं। नंद के भवन में श्रीकृष्ण-बन्ध के अवसर पर इसी सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह हुआ है। प्लानन्द ने इसपरम्परा का निर्वाह करते हुए ब्रजपति की उदारता ( सु बन्ध के फलस्वरूप ) का वर्णन किया है। उदाहरण-

‘बाहु ब्यावनी नंद भवन में भावनी,

प्राट्याँ है स्याम गुहावनी ॥

होत कृतावत ठौर ठौर फा नैननि द्रुत उपबावनी

०

०

ब्रजपति की उदारता से कैसे करि सकत बरबावनी ॥ १

ब्रज पति की उदारता की देखकर नगरवासियों के हृदय में अत्यन्त उत्साह है। वे सोचने लगते हैं कि इस फा-भावन सम्बन्ध में यशोदा से सख्द फगल कर लेने का समय जागवा है। अतः

‘ब्रज मंगल बाहु है ही

ब्रजरानी सुन्दर सुत जायी, पुरब भाग उदै ही ।

फा भायी सबही के जायी धन्य सुदैस सदै ही ।

बाहु हमारी फगरी है जहनुति मया सौं तेही ॥ २

यशोदा के घर की सुती समस्त गाविसासियों की सुती है। गाँव वाले यही सोचते हैं कि यह जुन अवसर उनके बच्चे ही घर

१- संपा० विश्वनाथ प्रसाद मि- प्लानन्द ग्रन्थावली पृष्ठ ६५७

२-

..

..

पृष्ठ ६५८



वानन्दस्य ब्रजपति बहुधाणी बहु धन वास्तु पुनि पुनि ।। १

राम एवं कृष्ण के जन्म की व्यावहारिक सांस्कृतिक परम्परा का ही निर्वाह राधा के जन्म के समय भी होता है। नाबिवाची, माता पिता तथा स्वयं कवि भी राधा के जन्म लेने से अत्यन्त प्रसन्न है। जैसे-

‘ राधा को जनम बधाई हूतसि हूतसि होसनि गाऊँ ।  
देसि देसि सुतनैद बिहाऊँ मोठी मास मरहाऊँ ।  
कीरति हूत उबियारी की बहु भाँतिन ताहू तहाऊँ ।।  
बसोदा जीवन प्रबोधन हित जोरी बभिलाव मनाऊँ ।। २

सभी नाबिवाचियों के साथ ही साथ यतीव के हृदय में भी कन्या-जन्म सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे कृष्ण के दिव्य रूप की जानती थी। कतः अपनी सुख की भलाई की विचार कर फूली नहीं समाती। जैसे-

‘ जैसे वृणमानु हैं बधाई कीरति कन्या जाई ।  
भाग भरी राधिका सुतच्छिनि ब्रज मंगल मनि जाई ।  
बहुमति रानी पुनि वति हरषी बिधानकर बनाई ।  
सुत की हित विचार म न ही म न फूली वग न समाई ।  
मंगल मोद बधाई की पुनि गोकुल रावत जाई ।। ३

१- सम्पादक - विश्वनाथ प्रसाद मि - पद वानन्द ब्रज्यावली पद ६४६

२- “ “ “ “ ६४५

३- “ “ “ “ ६४६

कृष्ण एवं राधा ही नहीं वरानन्द के काव्य में राम वन्य के समय का वातावरण कवि ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में बहिर्व्यक्त किया है। जैसे-

‘मंदिरा रोवावे बति हो गह गहे फलट मर  
या कवध नगर में रामचन्द्र बर बावे ,  
गावत मंगल मिहि बनित न कहि न परत सुख  
बानंद की निधि निरसि हुत नावे’ ॥ १

भारतीय संस्कृति एवं जन जीवन के व्यावहारिक पक्ष का उद्घाटन ७७ मध्ययुगीन रीतिभास के प्रमुख कवि केशव के काव्य में भी प्राप्त होता है। डा० विजयपाल सिंह ने केशव की दो युगों की सन्धि स्थल पर माना है। उनका विचार है - ‘‘ केशव साहित्य में मभित की अत्यन्त धीमी अनुभूति है और रीतिभासी प्रवृत्तियों का सशक्त उदय । ’’ तत्कालीन राजनीति, धार्मिक एवं वार्मिक परिस्थितियाँ मनुष्य के हृदय में किन भावों का उद्भूत करती हैं उन्हीं का प्रतिबिम्ब साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। कवि परिस्थितियों से प्रेरित होकर अपनी वैयक्तिक विशेषताओं के अनुरूप साहित्य की रचना करता है। केशवदास ने रामचन्द्र की बात-सीताओं का चित्रण ‘रामचन्द्रिका’ ग्रन्थ में वर्णित करके अपने हृदय की मभितपक्ष भावनाओं का परिचय दिया है। उस ग्रन्थ की रचना की प्रेरणा केशव की वात्मीकीय रामायण से मिली थी, यद्यपि वात्मीकीय रामायण का प्रभाव अत्यल्प ही प्राप्त होता है। रामचन्द्रिका में राम के चरित्र के उदात्त गुणों का समावेश हुआ है। वैयक्तिक जीवन के मार्मिक सम्बन्धों का प्रायः रामचन्द्रिका में अभाव ही है। भारतीय संस्कृति में गणों वों की अत्यन्त लादर की दृष्टि से देखा जाता है।

१- संपा० विश्वनाथ प्रसाद मि - जन वानन्द ग्रन्थावली पृ ६२

२- डा० विजय पाल सिंह - केशव युधा पृ० ६



किसी शुभ कार्य के प्रारम्भ में गणेश जी की वन्दना भारतीय जनजीवन का विशिष्ट अंग है। केशवदास के मनोमस्तिष्क में भारतीय ऐक्यता के इस व्यावहारिक पक्ष का बराबर था। उन्होंने 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ ही गणेश जी की वन्दना से किया है। वात्सल्य के चित्रण का धारमिक रूप रामचन्द्रिका में गणेश जी की बाल-पुत्र-बल्लता में परिलक्षित होता है। गणेश जी को 'नव मुल' कहा जाता है, अतः उनके सभी कार्यों की तुलना हाथों के बल्ले से किया है। यथा-

‘बालक मृणातनि ज्यों तौर डारै सब काल  
कठिन करास ऐयँ काल दोह दुल को ।  
विपति रहसु हठि दहूमिनी के पात सम १ पै  
ज्यों फास पैसि पखै कनुत को ॥ १

माता पिता सदैव अपनी संतान की रक्षा की कामना करते हैं। संतान कितनी ही बढ़ो ही जाये। माता-पिता की दृष्टि में सदैव उसका शैशव रूप रहता है। ई अतः किसी भी उम्र में बच्चे को उनका हृदय तत्पर नहीं रहता। केशव ने भी दशरथ के माध्यम में पितृ हृदय की स्पष्टप्रकृति का परिचय दिया है। जब विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए राजा दशरथ से रामचन्द्र को बच्चे के सिर कहते हैं, तो वे कहते हैं कि राम तो स्वयं ही अभी लङ्का की अवस्था में है। हम ही चतुरंगी सेना साथ लेकर चलेंगे। यथा-

‘अतिकीर्त्त केशव बालकता ।  
बहु हुंकर राकस बालकता ।  
हम ही बलिहै कणि रंग बंध ।

सवि सेन जैसे बहुरंग सदैव ॥ १

भारतीय सांस्कृतिक एवं जनजीवन के व्यावहारिक पक्ष का उद्घाटन 'नागरीदास ग्रन्थावली' में प्राप्त होता है। नागरीदास के काव्य में तत्कालीन शृंगारिक प्रभुत्व का उन्मेष होते हुए भी नैसर्गिक प्रभुत्व के स्वतः सुलभ हो। नागरीदास के काव्य में मानव-हृदय की स्वाभाविक मनोवृत्तियों का चित्रण अत्यन्त सजीव है, इतिहासकारों की मान्यता के अनुसार नागरीदास का युग काव्यकला एवं कलाकला से युक्त रीतिरिवाज ही माना जाता है। जहाँ कामिनी के कामुक एवं मादक रूप का वर्णन ही कवियों के हृदयों के हृदयों के हृदय में बाधना का संवरण करने में समर्थ था। कवि नागरीदास का काव्य मधिरासीन स्वर्णिम युग का वह पृष्ठ है जिसमें राम वत्सा कृष्ण की बात-धृतम-श्रीदासों के साथ ही माता के हृदय की कोमल वात्सल्य-सुभ्रति के चित्र वर्णित हैं। यद्यपि नागरीदास के काव्य में १९३ चित्र वर्णित हैं, तथापि वे वफा पुष्प ही अस्तित्व प्रतिष्ठापित करने में समर्थ हैं। नागरीदास ने राम जन्म के तुल्य अवसर के समय भारतीय सांस्कृतिक एवं सामाजिक मान्यताओं का चित्रण सगुण मधिरासीन कवियों की भाँति ही किया है। तथोक्त में राम का जन्म हुआ है, समस्त तथोक्तवासी ही उस अवसर पर बधाई गीत गाकर अपनी हृदय की वात्सल्य-भावना का परिचय देने के लिए दलदल के भवन में भीड़ लगाते हैं :

‘अधपूर बाजत बालु बधाई ।

भई नगर पर भीर विमाननि फ़ाट पर रसराई ।

बरछत कुसुम धुजा कलसनि पर बलि सीमा उफनाई ।

नागरीदास मान मंगल धुनि शाय रही सुलभाई ॥ २

१- सासा भगवानदीन - केवल कौमुदी व्याप्ति रामचन्द्रिका ३० २५

२- डा० किशोरीलाल गुप्त- नागरीदास ग्रन्थावली ५० ६१

नागरीदास ने राम-बन्धीत्य के उस्तास-  
नय बातावरण में ब्रवीव्यावाधियों के हृदय की बहुरंग प्रसन्नता के साथ ही  
कृष्ण बन्ध के अवसर पर ब्रवीव्याधियों के हृदय की प्रसन्नता का भी बहुरंग  
चित्रण किया है। भारतीय समाज में पुत्र-बन्ध के अवसर पर कुछ उपहार देने  
की प्रथा है। कृष्ण-बन्ध पर ब्रवीव्याधी बात भर-भर कर उपहार दे जाते हैं।  
बन्धी प्रसन्नता की पीत गान एवं बधाई की धुन गाकर व्यक्त करते हैं। उदा-  
हरण :

बाहु ब्रवीराम के छुत भयी धुनि सति ,  
उमगि उपहार हैं हैं बहुरंग पहरावनी  
बार कर बार बारि, भार लकत लै  
बसत बलि बार उर फाव्यो पहरावनी  
स्तहि धुनि गान बहुरंग मंगल निसान धुनि  
उतहि नीकी लगत धन धरावनी  
नागरीदास ब्रव बंद प्रगटत भयी,  
नंद निधि सिये वानन्द तहरावनी' ॥ १

इसी प्रकार समस्त सुवर्तिया बन्धुस्त उदाह  
में भरो, गतियों में गाती हुई नंद के घर बारी है। इस दृश्य का वर्णन  
नागरीदास ने इन शब्दों में किया है :

बाव भयी नंद भवन बानंद  
ब्रव जन उमगि बहुरंग बलि मिति, प्रगट्यो पुरन बंद ॥  
गावत मंगल गीत गतिन में, बावलि सुगती बृंद ॥

नागरीदास उवाच हूँ सब मिटि सु गर हुत दैव ।। १

कृष्ण-बन्ध के शुभ अवसर पर कथाई गीतों की सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह नागरीदास के अनेक कर्तों में प्राप्त होता है जिनके माध्यम से तत्कालीन परिवेश में वात-बन्ध के समय की सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक मान्यताओं का बोध होता है। उदाहरण-

(ब) 'कथाई नेक पीढ़ी है ब्रह्मरानी ।

पुत्र बन्ध उत्पन्न रह सानी, बान्धवित बरसानी ।

सासनहु पासन में घोर, कपल नैन फय पानी ।

नागरि गोपी नान मनोहर फिरि करियो सुखानी ।। १

(बा) 'कथाई कथाई कथाई हो बाजु ब्रज हाय रही

बहुदा के सुत भयो, सुनि उत्कान दै दै ,

भय से निधान बाजि सलनाय रही

ठाढ़ो नंद जगन में, पंगल कलस तिर ,

पंगल रह गोपी गोपी सब गाय रही

नागरिया सुत सानी, दधि सेवन करानी ,

ष्ट भीजि वीग , रंग फरि लाय रही ।। २

(ड) 'नंद भू के बाजत कथाई बाज दाहै

गहमस मनत महानान धुनि लाय रही ब्रज सारै

बसि बानंद भयो सुनि सजनी, बनत न कहू उचारै ।

नागरिया बहुमति सुत जायो, जलो री बदन निहारै ।। ३

१- संपा० डा० विशोही लाल गुप्त - नागरीदास ग्रन्थावली पृ० ११८

२- " " " ११९

३- " " " १२३





सदैव अपनी पुत्र की कुलसता के लिए चिन्तित रहता है। वे घर जाना यही सोचकर व्याकुल रहती हैं कि उनका सुहृदार पुत्र वन का कठिन जीवन किस प्रकार याप्त करेगा। बासम ने मातृ हृदय की विस्मयता धामात्मिक संदर्भों में इन शब्दों में चित्रित किया है। क्या-

‘फूल में बैठे परोसी भये पण्डित के,  
 भारत के डार घर बार करि रहि हैं ।  
 सेत मुनि डाधि हैं कि बिसे बेति बाधि हैं कि,  
 कृष हैं कि काधि हैं कौसल्या काहि कहि हैं ।  
 जन गिरि बेरनि करे सुत कैसे करि,  
 कौबरे कुमार सुहृदार भरे सहि हैं ।  
 मैते तन कर ए कपैते हात हस्तनि के,  
 जन फल फीरि होति हात ताक रहि हैं’ ॥ १

### (हं ) मातृ-हृदय में वात्सल्य-भाव का उद्रेक

माता के हृदय में वात्सल्य-भाव का उद्रेक (जिन परिस्थितियों में होता है) उनमें हृदय की उन्मुखता एवं दर्श का अनु-भूति तथा विचारों की उच्चता का साधान्य होता है। मातृ की सकल कर्तव्यता माता ही क्या सामान्य मानव-हृदय की भी ताकजित करने की साम्प्रदायिक होती है।

रसज्ञान की वैयक्तिक अनुभूति सहृदय पाठक

१- संपादक साता पण्डितदीन - बासम बीर सेत - बासम केति - रामलीला

की अपनी प्रतिक्रिया के द्वारा कृष्ण की बात सुलभ झूठा का निरीक्षण करने में समर्थ प्रतीत होती है। कृष्ण साधारण बातों की तरह माता यशोदा के साथ खेल रहे हैं। 'ता' कह कर बुल जाते हैं। जब यशोदा नहीं मिलती तब हठ करते हैं। इन बातों-वित्त सीताबाई को देखकर माता यशोदा के हृदय में वात्सल्य भाव का उद्रेक होता है। वे कृष्ण की बात-सुलभ-बेव्याख्या को देखकर अत्यन्त ममत्व में भर उठती हैं। इस चित्र की कवि रघुनान जी ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरण-

‘ता’ कह्यो कहुँ धनु की बीर दिंडीरत ताहि फिरे  
हरि भुली ।

हूँन हूँ फा पारि जैसे मयते रव पाँहि विधुरि सुकुले ।

हरि हरे रघुनान तबै उर पास ते टारि के बाद लट्ठे ।

सो हवि देखि कान्दव नन्द ब्रु बगनि ब्रु समात न फुलै’ ॥१

माता यशोदा के द्वारा कृष्ण के मस्तक पर पड़े लम्बे लम्बे बालों को हटाकर बुल लेना, नंद का यह दुरव्य देखकर फुले न समाना, सबकुछ मनोवैज्ञानिक रूप से माता-पिता के हृदय में वात्सल्य भाव का उद्रेक करता है।

स्त्री की संपूर्णता मातृत्व में प्रतिबिम्बित होती है। वात्सल्य का भाव प्रत्येक स्त्री के हृदय में रचा-बसा रहता है। मातृत्व की नैसर्गिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप माता की केवल अपनी पुत्र की बात-बाबिल ही नहीं बल्कि बूढ़े बच्चे की ज़रूरत भी प्रभावित करती है। रघुनान ने इसी भावना को निम्नलिखित पद में अभिव्यक्ति किया है :

१- देवराज सिंह भाटी- रघुनान ग्रन्थावली पृ० १७७



‘बपुजी जी डोटा हम ही के सदा बाई,  
 दीऊ ज्ञानी सब ही के काव नित धावही ।  
 ते ती रघुमान अब दूर हैं तमासी बने’ ॥ १

इन वैक्तियों में यशोदा की माँ की भावना उत्कृष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती है। माता ने इस बाल्य की स्वीकार किया है कि बुरे समय में तमासा देखने वाले बंधी होते हैं। कासी नाम से कृष्ण को बचाने के लिए कोई बाग नहीं बढ़ता । रघुमान की यह भावना उन्हें रीतिभासीन परिवेश में भी भक्त कवियों की भावनाके समीप पहुँचाने में भी सफल है। यशोदा का समस्त वात्सल्यानुभूति उपरोक्त पद के एक शब्द ‘भर बनासी’ में केन्द्रित है ।

रघुमान के समान ही नागरीदास ने अपनी काव्य में माता के हृदय की उद्देक्षित करने वाली वात्सल्य की भावना का चित्र वर्णित किया है। राम की बात श्रीहार्दी की देखकर मुदित हो रही है। यथा-

‘भारोसैं भाकैं दसरथ रानी ।  
 कीसलबादि सुतनि के सुत की देखत नाहिं बचानी ।  
 नैननि नीर फुल उर बानंद कीतक रही निहार ।  
 क्याई बीर बरव नेकु मिति लेखत राजकुमार ।  
 सत्कारत दुखटत बधि ताते आवत दुष्टि न परिही ।  
 बिजु लता से फल फलत हम, ते ते भेद निकरि ही  
 वारत पात बचन भुवण मिति, कलकत नृप गज बाव  
 भई बिमानन बीर अवध पर, देखत समर समाव ॥

अर्थ धर्म ब्रह्म काम मोक्ष ये मानहुँ रूपधर ।

नागर रामचन्द्र सबही के दुगति को तिमिर करे' ॥ १

राम के साथ ही लक्ष्मण , भरत एवं लक्ष्मण भी सरजू के छट पर बात-झीझा कर रहे हैं जिन्हें देखकर नागरीदास के हृदय में वात्सल्य की भावना उमड़ती है।

‘लेखत बरष गैहूँ बीर ।

लक्ष्मण ब्रह्म भरत लक्ष्मण राम सरजू तीर ।

हुमन बलि हम भूमि पर हय चपल पद गति बार ।

फर चतुर्दश बलत अनु चरहरत सुनता पार

परसपर ते बात गैहूँ करत हय छट बीर

प्रमर लीसुप नरनि को मन ज्यों न ठहरत ठीर

उठन कीन भक्तोर सधि केति प्रमर बीगान

टूटि भीती मात विभुरत , फिर रण लपटान

लेख विष हथि हथि बहस के बदत पुरि बीस ।

लिये नागर रही बरष राम कुमार कसीत' ॥ २

हीरिकांत के प्रसृत कवि ज्ञानदेव के काव्य में भी मातृ-हृदय की समस्त बरी भावना का केन केन स्पर्श पर प्राप्य है। यक्षीदा का यह चित्र मातृ-हृदय की स्वाभाविकता का चित्रकित करता है। जिसमें माता विभिन्न प्रकार के अपने लाल को लोह लड़ाती है। यथा-

‘बहुमति लालहि लेहु लड़ाह ।

करी बयौ न यौ सफल भसी विधि बीजन सो धन पाह ।

१- डा० किशोरीलाल शुक्ल- नागरीदास ग्रन्थावली -बात सीता पद ६१

२-

००

००

६४

यह घृत सीमा वह यह बीसर मल्यो कन्यो है बाह ।  
 गोपराज के बास कधी मन जो तौ कहू बसाह ।  
 स्याम सबीजन ब्रजजन बीजन रहत स्मरत बाह ।  
 हितनि मित्रनि बोलनि डोलनि छेलनि वप वपे बाह ।  
 यह जमुना वह रम्य भूमि हवि पैलन की है दाह ।  
 रवी बिजाता बति रुरीनी रंग बढ़े ली बाह ।  
 रघु नरकी जो परे जीव कहैं बिये ज्याह गुन बाह ।  
 प्राण पपीहनि पीणि पातिये जानैबधन बसाह' ॥ १

माता यहीदा बात कृष्ण की गीद में  
 लेकर अत्यन्त प्रसन्न भाव से सुतार रही हैं, अपना दूध पिला रही हैं, श्रीकृष्ण  
 के बास-बिनीद से बसत-पसत हो रही हैं। इस वातावरण की कवि ने अत्यन्त  
 स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है। जैसे-

'भागनि भरी जसीदा मेया मन की गीद कहौ ।  
 गीद तिये सातहि दुसरावति यह घृत बसि रहौ ।

० ०

सुखसुख००दियत००दियत००हह०००

सुखत फियत बियत वह ज्यावत जननी बिय बाधार  
 प्रसत मोह की उमंग तरंगनि डबित दूध की धार ॥

० ०

नन्द घरिनि की भाग निकारें घृत तसि कही न बाहें ।  
 बसि लहई बिर बियो सभागी ऐसी जननी पाहें ॥

बसत बसत गोपी समाधि की बात विनीत कहीत ।

मुक्त विहानि अनुमति दिव समझे मुक्त तोलते बोल' ॥ १

मृत कविता की ही भाँति आनन्द ने भी माता यशोदा की उस भावना का चित्रण किया है जिसमें वे नजर उतारने वाली उतारने तथा कृष्ण की बसेरा लेने की क्रियाएँ करती हैं। उदाहरण-

‘असौमति बारी उतारे उमनि बाफो ज्यों वारे ।

चित बदि रही ललन की कतें गीधन से घर बावति ।

बति बारी सौ बदन निहारे ।

ते बसाय, बाहर मुक्त पीकति प्रेम पुनरनि बरबति प्यारे ।

बुधनि मरी सुझी या विधि आनन्दन हितकाम्य सीहं वारे’ ॥ २

मौलैज्ञानिक दृष्टि से वेदना में दैन्य स्वायी रूप से विद्यमान रहता है। दैन्य-भाव के कारण ही वेदना का रूप अधिक कृष्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण हो जाता है। ममत्वपूर्ण मीकांक्षा आत्मिक की अनुपस्थिति में और अधिक तीव्र हो जाती है। मानव-हृदय विद्योत के चान्नी में दर्शन की अमिताभा के कारण लु-वदिनी से भी वसा सम्बन्ध जोड़ लेता है। ऐसे समय में यदि माता से संतान दूर होती है तो संतान के मुक्त की कामना ही माता के हृदय की एक विरल अमिताभा होती है। आनन्द ने भीमाता यशोदा की माःस्थिति का वर्णन किया है। जब वे गोपात के जाने की राह निकारती हैं। क्या-

भीगीबाह गोदुत बिहारी वारी तिहारी बावनि निहारिये ।

१- संपा० विश्वनाथ प्रसाद फि- आनन्द ग्रन्थावली पद ८७

२-

..

..

पद ८७३

बस धरनि में धरनि होती धनि कहा कहीं फिरि कहा चारिये ।  
 नर धित ललित स्त्रीनी पुरति नैन सुनत सातसा चारिये ।  
 जानवषम भर तगै तगै हैं प्रान पपीठनि रुचि बिचारिये' ॥ १

मातृ-सुदय की स्नेहित भावनाओं का परिचय  
 रीतिकालीन कवि बाबा बृन्दावन दास के काव्य में अविरत रूप से प्राप्त  
 हुआ है। बाबा बृन्दावनदास राधा के अत्यन्त भक्त थे। उनके काव्य 'साह  
 सागर' में राधा की बालीहू का मोहारी चित्र प्राप्त होता है। उदा-  
 हरण -

'कटीरा सुदुर्गर्ह देखे, ते भवैगी कीर ।  
 तु तू हरहर कर्षंगी, बसिहैं न कस कूह कीर ॥' २

बालिका के लठ जाने पर माता के सुदय  
 में बात्सल्य भाव का उद्भूत होता है, वह हर तरह से अपनी बेटी को पाना  
 चाहती है :

'बेटी कृपाव दिय देखे किनु कस न बिय,  
 मोहई कठि ताहि तु पनाई री ।  
 पागों छी छी तू देखे दिय छी लगाई लेऊ ,  
 नैननि की याति कबही मिलाई री ।  
 हाटों नही बाही फेरि कहि दे तु टेरि टेरि ,  
 बाऊ प्राण प्यारी मो ऊर धिराउ री' ॥ ३

१- संपा० विश्वनाथ प्रसाद मि- कानंद ग्रन्थावली पृ १८५

२- बाबा बृन्दावन दास - साह सागर, राधा बालविनीय पृ ४

३-                    "                    "                    "                    १२

कृष्ण की माता यत्नीदा चीटी करने के लिए कृष्ण वफा की में पर लेती है, किन्तु वे हाथ हटाकर भाग जाती हैं। इस दृश्य की काव्य में बृन्दावनदास ने इन शब्दों में संजीया है। उदाहरण-

‘बाउ तोरी गुहरी चीटी, ललीकि केन लियो ।

सुनत ऐसे बचन हाथ हटायके भवि गयो’ ॥ १

राधा के विवाह के शुभ अवसर पर विदा के समय मातु-हृदय की वेदना का प्रत्यक्षीकरण कवि बृन्दावनदास ने पाठक के हृदय प्रसार कराया है कि मानव हृदय स्वयं की उन्ही स्वत पर पाता है। जैसे-

‘सती चलन दिन बाव पास कह्यरति है ।

योहे कल में मीन मनी तहफरति है ।

पुनि पुनि ताकत बदन , नख कल भरति है ।

सीनी प्रेम बसाव न धीरज धरति है’ ॥ २

बाबा बृन्दावन दास के काव्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट ही जाता है कि मानव-हृदय की भावनाएं किसी सम्प्रदाय की सीमा में बंध कर नहीं रहती। राधा के विदा के अवसर पर माता के हृदय की वेदना के साथ ही बाब बृन्दावन दास की ने कृष्ण के वियोग में तहफती हुई यत्नीदा के हृदय का स्वाभाविक चित्रण किया है। कृष्ण परदेश में है। उदय जैसे ही उनके सम्मुख आते हैं, वे और कुछ भी नहीं पूछती ,

१- बाबा बृन्दावनदास - साहू सागर कृष्ण दास विनीत पद ६

२-

..

..

विवाह

बिना वितम्ब किये वे कृष्ण का कुशल समाचार जानना चाहती हैं। जैसे-

‘यसोदा फिरि फिरि झुलत जाय ।  
 कहि ऊधी श्रीकृष्ण भले हैं बातें सब समुझाय ।  
 हम तो क्या प्य हैरत कब धीं मिति है हाय ।  
 वृन्दावन हित रूप यसोदा कहि कहि लेत बताय ॥ १

कृष्ण के वियोग में यसोदा यही कामना करती है कि कृष्णसदैव नेत्रों को सज्जमे रहें। उन्हें बारीं वीर श्रीकृष्ण का रूप ही दृष्टिगोचर होता है। वे अपनी स्नेह की उत्पाद अवस्था में उदय द्वारा लाये कृष्ण के चरित का भी अविश्वास करती हैं :

‘ऊधी ये रहैं दृष्टि पय जागे ।  
 सुम सु कहत हम मधुवन बहि सुहि कुर्यां के लागे ।  
 कबहुं कहुं मागत के सुने कबहुं ममति के भागे ॥  
 वृन्दावन हित रूप ता दिसै कबहुं सोय सोजागे ॥ २

वृन्दावन वास के काव्य में यसोदा के हृदय की व्याकृतता का चित्र ध्रु की यसोदा के हृदय की प्रतिष्ठाया प्रतीत होती है। हृदय की व्याकृतता की उत्पाद एवं स्मृति स्थायी भाव पुष्ट करते हैं।

माता के हृदय में पुत्र के क्भाव से उत्पन्न वियोगजन्य वात्सल्य का परिपाक केवल के काव्य में अधिक पाया जाता है। इन वर्णनों में भी मावात्सल्यता का भावः क्भाव है। रामजन्य के सुदय वर्णन

१- वृन्दावनवास - भवर्णित पद २

२- .. .. पद ६

के पश्चात् ही कवि ने विश्वामित्र की उपस्थिति का चित्रण किया है। विश्वामित्र की आज्ञा से जब रामचन्द्र यज्ञ की रक्षा हेतु उनके साथ जाते हैं। उस समय केशव ने दारुण की जिस विरह-युक्त वेदना का चित्रण किया है, वह इतिवृत्तात्मक है, उसमें हृदय की भाव प्रणता व्याप्य है :

‘राम नरत नृप के कुल सौजन ।  
बारि भरित नये बारिद रौजन ।  
पायल परि कण्ठ के सजि मौनहिं ।  
केशव उठि गये भीतर भीनहिं ॥ १

राजा के नेत्रों से कसपि जल की धारा प्रवाहित हो रही है, तथा उनके हृदय में सात्विक एवं क स्तम्भ स्थायी भाव का प्रस्फुटन हो रहा था, तथापि कवि की हृदयगत सम्मोक्षा के भाव में यह भावात्मक स्थल पाठक के हृदय में वह अनुभूतिपरक तादात्म्य का उद्भव नहीं कर पाता, जिसकी तुलना किसी भवत कवि से की जा सकती है। राम कथा में राम-बन-नग्न प्रसंग सर्वाधिक नायिक एवं अनुभूतिपरक स्थल माना गया है। केशव के काव्य में यह प्रसुत स्थल भाव एवं परिस्थिति के अनुकूल न हो, साधारण भावना से युक्त प्रतीत होते हैं।

‘रहौ नृप एवं सुत क्यों बन जाहु ।  
न देखि सैं तिनके उर बाहु ॥  
सगी अब बाप तुम्हारे हि जाय ।  
करी उलटो विधि क्यों कहि जाय ॥ २

१- साक्षा भगवानदीन - केशव कौशिकी (रामचन्द्रिका) पृ० ३१

२-

..

..

पृ० १३३



वन-गमन के ही प्रतीक में कांतल्या का यह कहना कि वन अपनी साथ से चली जाहे व्यवध पुरी में नाब पड़े, राम-कथा को पर्यादा से सुनत श्रुत नहीं प्रस्तुत करता । क्या-

‘मोहि चलो बन संग तिर ।  
 पुन सुखें हम देखि बिये ॥  
 बाँधपुरी महँ गाज परे ।  
 कै सब राज्य नरत्न करे’ ॥ १

इसी प्रकार की राफल्ट्र की नक्षत्र के प्रति अपनी वात्सल्य-भावना परित्यक्त होते हुए उनसे यह कहते हैं कि वे भी कभी-कभी में ही रहे । माता की दस्मात करें । यथा-

धाम रही तुम सत्पण राख की सेवा करी ।  
 मातन के मुनि बात । सुदीख दुःख हरी ।  
 वाय भरत्य कई की की बिय भाय गुनी ।  
 जो दुख केवै तो ते उर गी यह सीत सुनी ॥ २

राम-कथा का दूसरा मार्गिक स्वरूप यह प्रतीत है जिसमें राम-वन-गमन का समाचार सुनकर दशरथ सभी प्राणियों का त्याग करते हैं। केशवदास इस भावात्मक स्वरूप का वर्णन करनेमें, पितृ-वृन्द की सेवा का स्वाभाविक चित्रण करते हैं, सफल नहीं प्रतीत होते। जैसे-

राजबन्धु धाम में जति हुई जब नृपात ।  
जात हो गई धनी से सबे गये महा बिहात ॥

१- ताता भगवानदीन - केशव कौमुदी (रायचन्द्रिका) पृ० १३४

2-

• •

22

५० १४०

ब्रह्मन्त्र फीरे जीव यों मिली कुली बाय ।

मेर धरि ज्यों कभीर बन्ध में मिले जड़ाय' ॥ १

राम, लक्ष्मण एवं सीता वन के लिए प्रस्थान कर चुके हैं। परंतु जब उनसे मिलने के लिए वन में जाते हैं, उस समय परिवार जनों का मिलन, वात्सल्यानुभूतियुक्त वातावरण का चित्रण केवल छंद का शब्दों में किया है :

‘मातु सबे पित्रिये कहें बाई ।

ज्यों पुत्र की धुर भी सुनवाई ।

लक्ष्मण स्याई उठि के एहराई ।

पायल बाय पर दीउ भाई ॥

मातनि कीठ उठाय लगाने ।

प्रात फी कुत देखनि पाये ॥

बाप मिली तब सीय समानी ।

देवर बाधुन के फा लागी ॥ २

रामबन्धु यद्यपि वन में हैं, तथापि उनके हृदय में परिवार जनों के प्रति लगाव स्नेह है। वे सभी का कृतज्ञ होय भारत वादि से प्रकट हैं। इस मार्मिक प्रसंग का वर्णन ‘रामचन्द्रिका’ में इस प्रकार हुआ है :

‘तब पुत्रियी एहराई । सुतहै फिदा तन माई ।

तब पुत्र की सुत बीह । कुम ते उठी खबराई’ ॥ ३

१- साक्षा भगवावदीन - केवल कीमुदी ( रामचन्द्रिका ) पृ० १४९

२-                    ..                    ..                    ..                    पृ० १५७

३-                    ..                    ..                    ..                    पृ० १५७

इस प्रकार केशव के काव्य में मातृ-हृदय के विविध भावों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि केशव उस अनुभूति पर सहस्रोद्गारों के वर्णन में अक्षुब्ध रहे हैं, जो कि सहृदयता के परिचायक हैं। राम-कथा का वह स्वर जो कथा को प्रभावोत्पादक, मार्मिक एवं सज्जित बनाने में सक्षम है, केशव की बोधित काव्य कला के प्रभावहीन हो गया है। वैयक्तिक अनुभूतियों की अवहेलना एवं मानव-हृदय की वास्तव्यपरक वैयक्तिक अनुभूति का आकर्षण केवल काव्य में अक्षरार्थ ही गया है। राम की उपेक्षात्मक प्रकृति का रूप वर्णित करते केशव ने उनका पारलौकिक एवं पर्यायित रूप बना दिया है।

मातृ-हृदय का वर्णन कि केशव के अविरचित वाचन के काव्य में भी प्राप्त होता है। वाचन रीति युग की मादक एवं विलास-पूर्ण वातावरण में भी वसित पूर्ण साहित्यकी संज्ञा करते, अपने हृदय की छुट करती रहे। वाचन की भाषा में स्वाभाविकता फलकता है। उनकी कृति परिष्कृत एवं साहित्यिक है। राम-कथा में वनमन्त्र के अवसर पर माता कौसल्या के हृदय की अनुभूति का प्राकृतिक वर्णन उनकी परिष्कृत भावाभिव्यक्ति का प्रमाण है। माता कौसल्या के हृदय की संयोगात्मक सुतानुभूति की विरह को वेदना नष्ट कर देती है। विरह सुप्त अवस्था में वे कभी उन्मादित हो जाती हैं, कभी अपनी के बेबसी पर दमन भाव से होने लगती हैं। इसी प्रकार कृष्ण को दहो अत्यन्त प्रिय है, अतः वे वही बनाकर रखती हैं कि किसी के हाथ परदेसी पुत्र के तिर भेज दूँगी। किन्तु स्वयं की कृष्ण की धाय मानती है। अतः उनकी दशा भी "दूर" की योदा की तरह "हो तो धाय बिहारे हुत की, भया करत हो रहियो" <sup>१</sup> हो जाती है। वाचन ने भी

१- सूरसागर, दशम-स्कन्ध, पद ३७४३

यसोदा की इसी स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया है। उदाहरण-

‘दान की दस्ती भिन्न कान्हर की घर जानि ,  
 देवकी के द्वार हूँ मैं कहूँ बिधि दोबिर ।  
 तबि सबे नात मात तात को न बात कहैं ,  
 धीमा धाये कहाय कहूँ बिधि बीजिये ।  
 बरि बरि रहै भरी कातो बरि बरि उठै ,  
 ‘बातम’ झिहि झिन् झीना किनु बीजिये ॥  
 महल न ताउ जिनि मोहिं कताउ बाउ ,  
 बतहु महर मयुरा ही घर कीबिर ॥’<sup>१</sup>

विरह की अवस्था में यसोदा का वात्सल्य मानव-हृदय की स्वीभावना में ही नहीं समाहित होतावत् मानवतर जगत् में भावनाओं की प्रतिष्ठापित करके, अपनी क्षुप्त वात्सल्य को तुष्ट करती है :

‘कृष्ण की प्रेम देखि हाती छौं लगाये होना ,  
 बधरु न देखि ताँतों सेया न भेदाति है ।  
 बिरिया की बाह देखि बीबहु में बारी रातें ,  
 बहूवा की बाह किनु छीज न बाधाति है ।  
 बातम कठिन सेरी हियो हौं सराठों नन्द ,  
 नन्दहिं फोड़ों झाँकि तायो कारी राति है ।  
 हम निरमोही मोही वन के फेरु पक्षु ,  
 बासक वियोगु कहूँ विषम बिहाति है ॥’<sup>२</sup>

१- सं० आला भगवानदीन - शेख आलम, आलम केलि पद 22५

२- सं० आला भगवानदीन - शैल बातम , बातम कैलि पद २२

कृष्ण-काव्य में प्रायः कृष्ण के वियोग से पीड़ित उनके पातित पशु-पक्षियों का दुःखकाही वर्णन प्राच्य है। बालम ने यही बात की पशु पक्षियों के हावों के पालन पोषण में लीन होकर वात्सल्य भावना का उन्मूलन दिखताया है।

वात्सल्य-रस में बालम की भावना प्रायः प्रसाद गुण एवं कीमत् रीति से सम्पन्न रही है। भवित भाव व्यक्त इन्हीं में प्रायः प्रसाद गुण का ही प्रयोग है :

‘कमीनी हो मंगुली बीच मनीनी बाणि फलकतु  
 कुमरि कुमरि कुकि ज्यौं ज्यौं फुलें फलना  
 सुंदर फुल फी सुंदरा के डोर फी ।  
 सुंदरारे बार मानां फल बारि बलना ।  
 बालम रसातल कुन, लोचन बिसाल लीत  
 ऐसे नंदलाल जनदेते कहूँ कल ना  
 बेर बेर हँफेरि फेरि, गोद से ले धरि धरि  
 डेरि डेरि गायें कुन गोकुल की ललना’ ॥ १

यहाँ ‘म’ ‘तया’ ‘प’ वर्णों की बाहुल्य के फलस्वरूप भावाभिव्यक्ति में कीमत्ता का समावेश हो गया है। कवित्व की इस विशिष्टता के कारण अवगोन्द्रियों तक पहुँचते पहुँचते शब्दों का अर्थ स्वयं ही व्यक्त हो जाता है।

माता का हृदय अत्यन्त कीमत् होता है,  
 संतान के वनिष्ट की बातें से ही उसके हृदय में मय का सँभार होने लगता

है। किसी गोपी ने कौशल्या को ब्रज में कबे द्वारा किये उत्थात की सूचना मिलती है, जिससे स्वाभाविक रूप से उनका हृदय प्रकीर्ण हो जाता है। वे अपनी वात्सल्य की कृतकता के विषय में चिन्तित होती है :

‘ऐसे बारी बार याहि बाहिरी न जान दीखै ।  
बार नद बारी तुम बनित्त सैन की  
ब्रज टीना टामन निष्ट होनहार ठोसै  
बसोवा निटाउ टेव बीर के वान की ।  
वासम सै राव तीत बारि फेरि डारि नारि,  
बोस धी हुनाइ धुनि कनक कान की ।  
बीर सुत सफटार बार कटुनि मरे बीया ,  
नेकु हवि देती कान मन की’ ॥ १

अपने वात्सल्य की दृष्टि से बचाने के लिए सभी मातारं कृत्रिम उपाय करती हैं। माधे पर काता टीका भी लगा देती हैं, कपड़ा राने नैन उतारती हैं।

कृष्ण ने गोपियों की अभिलाषा को पूर्ण किया और जब वे फाँदे गये तब यशोदा के सन्मुख लाये गये। कृष्ण ने अपनी सफाई देते हुए कहा कि वे तो वहीं में से बोटिंग निकाल रहे थे। यशोदा कृष्ण की इस उचित को धुनकर ही कहती है और यही समझाती है कि तुम किसी के घर मत जाया करो। वे तुरन्त गोपियों से कहती हैं :

‘कहत सगावत लोग , झूठहि सब भरे झुतहि ।  
कब भये बारी योग, पाबि बरस के तनिक छे’ ॥ २

१- संपा० साता मगवानदीन - शैल, वासम, वासम के सि हृन्द ६

२- ब्रजवासी दास - ब्रज विज्ञान १० ६६

कृष्ण-कथा में कृष्ण के मधुरा प्रस्थान के  
 क्षण पर माता यशोदा स्व सपत्न ब्रजवाधियों के हृदय की वात्सल्य-भावना  
 का परिचय प्रायः सभी भक्त कवियों ने दिया है। कवि का उचित हुक्म माता  
 यशोदा स्वनी विवक्षित ही जाती है कि वे कृष्ण के चरणों में गिर कर  
 पुत्र के प्राणों की भीति की याचना करती है। उदाहरण-

व्याकृत पहिरि यशोमति धारं ।  
 बाहुर परी चरण पर आरं ।  
 हुकलक सुत मैं दासि तुम्हारी ।  
 'मुनी कृपा करि विनय हमारी ॥ १

यशोदा के हृदय में लीला, मय, प्रास, मुग्धा,  
 विधाद वादि संवारी पाव बागुल होते हैं जिससे उनकी विकसता और बढ़  
 जाती है। ब्रजवासी दास के काव्य में . . . मूरखाना की भावात्मकता प्रत्येक  
 पदों में विद्यमान है। यही नहीं कही तो उचित की साम्यता का भी दृष्टि-  
 गोचर होती है।

मध्यकालीन शृंगारिक कृष्ण-भक्त कवियों  
 ने अपनी हृदय की वात्सल्यानुभूति का परिचय कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित  
 अनेक कथाओं को माध्यम बनाकर दिया है। कुछ भक्त-कवियों ने कृष्ण की  
 बात-सीता का परिचय देकर अपनी वत्सल अनुभूति को स्पष्ट किया तो कुछ  
 कवियों ने अपनी हृदय में ही कृष्ण की बात कवि की बनाकर उनके बात  
 सतीने रूप को अभिव्यक्त किया है। मध्यकालीन कृष्ण-भक्त कवि अद्वार  
 कान्य ने "प्रेमलोफिका" ग्रन्थ की सर्वना कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित

तीन घटनाओं की ओर की है। कृष्ण के बाल्य काल से सम्बन्धित भावनाओं का परिपाक कवि बदर कान्ध ने उस स्थल पर किया है, जब सुक प्रहण पर <sup>कृष्ण</sup> कुरुक्षेत्र यात्रा के समय नन्द, गोप, गोपियों में मिलते हैं। इस अवसर के कवि बदर कान्ध ने यमपि कथानक के रूप में पिराने का प्रयास किया तथापि यद्यपि तब उन्होंने व्यक्तिगत वास्तव्यानुभूति का परिचय भी दिया है। वे कृष्ण के कलात्मिक रूप पर मोहित होते हुए भी उनके बात रूप पर न्यायावर हैं। वे सोचते हैं कि कृष्ण ने वही बात-विनीद से सक्ती भुत दिया है, वही भुत इस कुरुक्षेत्र में दिताई देता है। उदाहरण-

‘बसुदा को बहु भुत दिये करि करि बात विनीद ।

ते कबहुँ रस बस भये बाप करै उत मोद’ ॥ १

बदर कान्ध के हृदय में नन्द का दुःख प्रति-  
बिम्बित होता है। उदय कृष्ण का सन्देश जब नन्द को सुनाते हैं तब जिन  
बच्चों को नन्द उदय से कहते हैं उसमें बदर कान्ध की ही वस्तुतः भावना का  
परिचय प्राप्त होता है :

‘बासदेव बलदेव देव सम देख्ये ।

सम भुत कर नहि मान जान प्रभु देख्ये ।

तिन बिन दीन कथिन न जान परै कह्ये ।

कर्म परख देव कर्म करियी यही’ ॥ २

संतान कितनी भी बढ़ी हो जाये किन्तु  
माता-पिता के लिए वह सदैव शिशु के सदृश ही होता है। इस मनोवैज्ञानिक

१- संपा० रायबहादुर ताता सीताराम - बदर कान्ध कृत प्रेमदीप्ति पृ० ४

२-

..

..

पृ० ३२



तथ्य का उद्घाटन कवि बदर कन्नय ने व्यवितगत अनुभूति के माध्यम से किया है। जब श्रीकृष्ण मथुरा से ब्रज जाते हैं, तब भी यही बात उन्हें याद आती है। यथा-

‘मिली बसोमति रोह के, मान कहा का पीव ।

है कहाइ मुस दूध के है बेठी धर पीव’ ॥ १

बदर कन्नय की ही भाँति ग्रंथगीतिकाओं ने भी वात्सल्य भावनाओं का परिपाक का तज किया है। भारतीय संस्कृति में पुत्र कन्नय के दूध अवसर पर दूध परम्पराओं का निर्वाह होता है। इन परम्पराओं के परिधि में यशोदा की व्यवितगत वात्सल्यानुभूति का वर्णन किया है।

(उ) कृष्ण के कर्तृत्विक रूप पर आधारित वात्सल्यविषयक

कल्कासीन काव्य में कृष्ण के दिव्य कर्मा कर्तृत्विक रूप का वर्णन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। राम एवं कृष्ण की माता यह जानती थी कि उनका पुत्र ईश्वर का एक रूप है। यद्यपि उन्हें पुत्र बत पाकर ही अपनी बद्धत भावना का परिचय दिया है। लेकिन उनके कर्तृत्विक <sup>रूप का</sup> स्मरण प्रायः कर लिया करते हैं। सभी प्रकार के कवियों ने भी राम कर्मा कृष्ण के वात्सल्य रूप का सर्गीयानि चित्रण किया है, लेकिन उनकी हस्तों से यदा कदा कृष्ण कर्मा राम का दिव्य रूप भी चित्रित हो गया है। प्रसुत रीतिकालीन कवि नागरीदास ने कृष्ण के कर्तृत्विक रूप का यदा कदा वर्णन किया है। यथा-

‘श्री बल्लभ दूध बंदी

१२ बदर कन्नय- प्रेमलोका ५० ३६

करि ध्यान परम जानै  
 धनि नंद कसुमति रानी  
 लयी कृष्ण कमल जग जानी  
 कृष्ण कमल मयी जानैद गुरु महाफल ठयी  
 पीछा उच्छ्वस मोर भारी नम विमानन सौं हयी  
 दूध दधि घृत मयी कादौ मी भादौ बरसही ॥१॥

कृष्ण के क्लीक-बात रूप को देखकर स्वयं  
 ब्रजवासा की चकित हो जाती है। वह सोचने लगती है कि जिस बरहूँने  
 बाँधे थी, वह पालने में ही है। काः गोद में लेकर स्तन का पान कराने लगी।  
 इस दृश्य का वर्णन 'वैद्य बध लह' में नागरीदास ने इस प्रकार किया है :

'मूकस्त पालनै हरि राहं  
 भंग्यी छोट की बनि बाहं  
 चकित रही ब्रज वासा  
 यह को है रूप रसाता

प्रथम रूप रसात धरि है तात गहि तर गोद में  
 कंधरिपु को पाय फलाई फुलाई यह गोद में  
 करत बस्तन पान लीन प्राण ऐवि सुखी समै ॥ २

जीकृष्ण के क्लीक-बात-रूप का वर्णन  
 करते समय नागरी दास ने इस बीर वर्णित किया है कि जो परम ब्रज हैं,  
 उसने नंद के घर में बन्ध ले लिया है, बीर ब्रज की दही बुराकर लाता है।

१- वैया० डा० किशोरीदास गुप्त - नागरीदास ग्रन्थावली ब्रज लीला पृ० ३२

२-

न

.. फुलाई बध लह पृ० ३२

‘बभ्रुमति सुत सुतरासी ।

रसमन् सकल ब्रजवासी

तिय धाम काम सब भूली

रहै बास केति रह भूली

करत बालक केति बहुविधि सख के मन की हरै

बीरही दधि दूध घर घर बरपि ले कीने धरै

कूँद बाँदर बल सता सब तिनहि सर्ग लगावहीं ।

देति भवनी भवन बाधत तहाँ हैं पवि बाधही

कहूँ बालक बहि अस्त, बाँके पर फिरबाहिरी

छि छट करि महुँ पीवत नंद सुत मन बाँहिरी

बग्य में बाधत न कीने भेद मंद उपाय के

‘दास नागर’ सो ब्रज में बही सात दुराय के’ ॥ १

कृष्ण के क्लृप्तिक वात-रूप का प्रतिपादन

कवि ब्रजवासीदास के काव्य में भी प्राप्त होता है। ब्रजवासीदास ने कृष्ण पर आधारित वात्सल्य-भावना का सम्मिश्रित ‘ब्रज विहार’ नामक ग्रन्थ में किया है। यह प्रबन्ध काव्य तुलसीदास का उत्तरण करके बीरवाणी में लिखा गया है। कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित<sup>लीलाओं</sup> का विस्तार सुरदास कृत ‘सुरदागर’ के उत्तरण किया गया है। इस प्रबन्ध काव्य में कृष्ण की लीला का वर्णन उद्दीप्त विभाव के माध्यम से किया है। कृष्ण के सभी कार्य यक्षोदा के हुनस में उत्साह का संवर्णन करते हैं, किन्तु वे उनके क्लृप्तिक रूप को नहीं भूलती हैं। पूतना बध के उपरान्त कृष्ण का माता यक्षोदा से विष्ट कर दूध पीने का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एवं सहजता से वर्णित किया गया है। उदा०

१- डा० किशोरीदास गुप्त- नागरीदास ग्रन्थावली - बीर लीला पृ० १४

'कही देवता या कृत करे ।  
 मैं पुजिहीं कमल पद तेरे ॥  
 बेनि बढो कर दे यह बासक ।  
 ब्रजवन प्राण पुनः पालक ॥  
 द्वितीया के सति तौ शिशु बाढ़े ।  
 बधितौ बरिउर नित छाढ़े ।  
 सीवे धरी बास कन्हाई ।  
 पाता मुत की बलि बलि जाई ॥  
 सीवत देसि मीन गहि रहैं ।  
 बागत देसि बहुरि कहू कहैं ।  
 कीन फरकाय कसप मुकुनि ।  
 ता हवि की उपमा की जानि ॥  
 बार बार शिशु बदन निहारे ।  
 यक्षुमति बप्पौ भाग्य विचारे ॥

०

०

कबहुँ सैत उड़ींग , उर लगाय धूमत मुतहिं ।  
 निरति मनोहर की, कबहुँ मुतावत पालनै' ॥ १

उपर्युक्त पंक्तियाँ मैं यक्षोदा कृष्ण का मुत  
 देखकर प्रसन्न हो रही है। उनके हृदय में वात्सल्य-भावना के हर्ष तथा बधि-  
 ताया संवारी भाव उद्भूत करते हैं ।

पुनः वध के समान ही ब्रजवासी बास ने  
 लकटाधुर वध के उपरान्त कृष्ण के कर्त्ता कृत शक्ति सम्पन्न रूप का <sup>वर्णन</sup> यक्षोदा

१- ब्रजवासीदास - ब्रज विज्ञान पृ० ३३

एवं नंद की वात्सल्य भावना के अन्तर्गत किया है। यद्यपि वे कृष्ण के व्यक्तीक रूप से वात्स्य विस्मृत ही जाती है, तथापि वह स्थिति कुछ दाय के लिए रहती है। वे कृष्ण की सभी लीलाओं को सख्य वात्सल्यित श्रद्धाओं के रूप में अनुभव करके वात्सल्य विभीरु विलास देते हैं। उदाहरणतः

‘लिर मातु इतियाँ सप्टाहं  
बुमि बदन पुन को पव दीन्ही ॥

० ०

निरलि नंद भुत वानन्द भारी,  
कमल बदन इति रहे निवारिके ।  
हटकी दे वे सुताहि तिलावे,  
निरलि निरलि मुल बति भुत पावे ॥ १

उपर्युक्त पंक्तियों में यशोदा के वात्सल्य की मनोवैज्ञानिक रूप में देखा जा सकता है। पुत्र की कृतज्ञता में ही माता का समस्त ममत्व निर्भर है। कृष्ण की संयोगात्मक अनुप्रतियाँ को हर्ष, विलासा, वमर्ष, तथा गर्व आदि संवारी भाव पुष्ट करने में सहायक हैं ।

हीति कालीन कवि वपार अन्य कृत 'प्रेम-दीपिका' सज्ज काव्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने कृष्ण के वात्स-जीवन से सम्बन्धित लीला का परिपाक सुखे ग्रहण के अवसर पर ( जब कृष्ण कुरुक्षेत्र की यात्रा करते हैं, वहाँ नंद एवं अन्य ब्रजवासियों से उनकी भेंट होती है ) किया है। नंद-श्रीकृष्ण के दिव्य रूप को स्तुति कर लिया है, फिर भी वे कृष्ण की वात्स-लीलाओं का स्मरण करके विव-

लित हो जाते हैं। ऐसीसमय में यशोदा के ममत्व का रूप में बहने लगता है :

‘नैन नीर, कृष्ण शीर भवहि कुरागित बहुधा ।’ १

कुराग की भावना एवं कृष्ण के जीवन के स्व निरत अवसरों से मुक्त भावनाओं का लपटन हो जाता है। इस समय उनकी भावनाएं शब्दों का सहारा न लेकर नेत्रों का सहारा लेती हैं बिना यशोदा के हृदय की वात्सल्य भावना की तीव्रता का तात्पर्य होता है।

(ऊ) कृष्ण के लौकिक वाक्तरूपों पर बाधित वात्सल्यभाविव्यक्ति

रीतिकालीन काव्य में रीति मुक्त कवियों ने कृष्ण के लौकिक रूप का वर्णन साधारण मानवरूप में किया है। उनके कृष्ण साधारण बालक के समान, मुक्त कवियों के कृष्ण के रूप में वाग्वि में लेखते हैं साथ पाताके साथ की प्रकार की वृत्तितियां करते हैं। रसज्ञान इस कोटि के व्यक्त स्वभाविक एवं ममतायुक्त वर्णन के लिए उत्तमोत्तम है। रसज्ञान ने यशोदा की ममता का बहुत ही नैसर्गिक रूप चित्रित किया है।  
उदाहरण-

‘ता’ बहुधा कह्यो धनु की कोट दिंडोरत ताहि फिर  
हरि धूलें ।

हृदन हूं का चारि बतें मयलें रस पाहि बिपूरि हृदलें ।

हरि हृदि रसज्ञान तब उर सात ते टारि के बाद लटलें ।

सो इति वेति अनन्दन नन्दन कीनि की समान न फूलें ।। २

१- वल्लभ अनन्य- प्रेम दीप्ति फ १२

२- देशराज सिंह भाटी - रसज्ञान ग्रन्थावली पृ० १७७

‘ता’ शब्द पुनः कृष्ण का माता को  
 बुझना, न मिलने पर लीजना, छठ करना, मरत जाना, श्राव ही कृष्ण  
 की बात सुनने के बाद की परित्याग करने माँ के हृदय में कर्ण एवं उद्वेग  
 भाव का उद्वेग होना आदि सभी कृष्ण के लौकिक रूप की प्रतिभाषित करता  
 है। ममता का पर्यायवाची नाम ‘माँ’ है। अतः स्व ममता का भाव माँ के  
 हृदय में अपेक्षाकृत अधिक होता है।

इसी प्रकार कृष्ण के माप की लटों की  
 हटाना, नंद का प्रसन्न होना सब कुछ मनोवैज्ञानिक रूप से वास्तव्य भाव  
 की स्वाभाविक एवं सहज अभिव्यक्ति है। रीतिभालीन कवि होते हुए भी  
 रसज्ञान के कतिपय पक्षों में अष्टशाय कवियों की तरह कृष्ण, यशोदा, नंद  
 आदि का अत्यन्त स्वाभाविक रूप दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण के लौकिक  
 रूप में माता-पिता के श्राव ही ब्रज के समस्त नार नारियों के हृदय में  
 वास्तव्य सुख प्रसन्नता का समावेश है। यथा-

‘बाबु गरुं हुसी भीर ही हौं रसज्ञान  
 रहं बटि नन्द के भीनहि ।  
 बाकौ जियौ जुग तास करीर  
 जसोमति की सुख जात कस्यो नहि ।  
 तेत लगान लगान के तेज  
 भीहि बनाइ दिग नहि ॥  
 हासि हसनि हार निहारत,  
 बारत ज्यौं हुकारत डीनहि ॥ १

उपसृत पद में नारी का वास्तव्य भाव

का विवर्धन है। सही की भावना की विवेचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वात्सल्य की भावना केवल बच्चे ही के लिए नहीं उपलब्धी बल्कि किसी भी वास्तव का शीन्दर्य देखकर वह भी हमकी बहिरस धारा प्रभावित होती है। उपरोक्त पर मैं एक गोपी कृष्ण के लौकिक वात्स-शीन्दर्य<sup>०</sup> दुधरी सही से कह रही रही है। एक ओर जहाँ माता ठिठोना लगाकर बच्चे वास्तव की कृद्रष्टि से बजाती है वहाँ एक अन्य नारी कृष्ण के रूप पर मोहित होकर सारी वात्स बोधित होने की वाक्यांश व्यक्त करती है।

कृष्ण के वात्स-शीन्दर्य का वर्णन प्रायः सभी भक्त-कवियों ने किया है। मुख्यतः बृहद्वाप कवियों में सुरदास ने कृष्ण के वात्स रूप का शीन्दर्य<sup>अर्पण</sup> स्तनी विस्तृत भावना से किया है कि परवर्ती कवियों के लिए किसी भी मौलिकता के प्रवर्तन की गुंजाइश नहीं रह गई। कृष्ण के वात्स इति वर्णन , उनकी चपलता के वर्णन में भी यद्यपि रसतान ने परम्परागत रूप का ही निर्वाह किया है, तथापि प्रसंग की उचितता होती हुए भी रस के अपेक्षित तत्त्वों के अभाव में वे वातावरण को रस की कोटि तक ले जाने में असमर्थ है। यही कारण है कि रसतान के कृष्ण की चपलता सुर के कृष्ण की तुलना में भी हल्की ही प्रतीत होती है। उदाहरण-

धूर परे बति लोमित स्वाम भू  
तेंधी जनी बिर सुन्दर जोटी ।  
लेतत सात फिरें बेना फा,  
मेनी बाकती पीरी कड़ीटी ।  
वा इवि की रसतानि मिलीकत  
बात काम कता निज कीटी ।  
काग के भाग बने सक्नी हरि  
हाथ सों ले गयो मात्त रीटी ॥ १



रसतान ने बष्टझाप क पिर्यो की नाति  
कृष्ण की पास-बोरी की सीखा का वर्णन किया है।

‘काहू की पास -- कायो ॥ १

उपसृत पद में गोपियों के उताड़ने के प्रति यतीदा की उदासीनता, ऐी हाथों कृष्ण के फहने जाने पर भी यतीदा का मौन वादि बस्वाभाविक है। ऐसा म्नीत होता है कि रसतान ने गोपियों से हाष्ट होकर पाता यतीदा की उदासीनता को चित्रित करते अपनी हृदयगत भावनाओं को व्यक्त किया है। उपरांत पंक्तियों में ‘हीहरा बायो’ और ‘भै कायो’ दो कृष्ण प्रकार के पावों की व्यंजना है। गोपियों यतीदा से बाकर घुमने की बात ‘बायो’ शब्द ‘हीहरा’ के लिए प्रयोग करती हैं। किन्तु भै शब्द के लिए ‘कायो’ शब्द का प्रयोग करती हैं।

वात्स-कास में प्रत्येक वात्स नटखट होता है। वात्स की ली नखट प्रकृति को लक्ष्य करते रसतान के हृदय में भी कृष्ण के प्रति वात्सल्य-भाव का पंकरण हुआ जिसका वर्णन उन्होंने एक सली के पाठ्यम से किया है जो कृष्ण की नवस्तता को उचित करते हुए कहती है। यथा-

‘कौ तैं न बायो याही गविरे की बायो

माई बायरे बिबायो प्याह दूध बारे बारे की ।

सोई रसतानि पखिबानि कानि हाँडि बाहे

लोचन नबावत नभैया डारे दारे की ॥ २

कृष्ण जैसे ही गोपियों की परितान<sup>नहीं</sup> करते थे।

१- वीरराव सिंह भाटो- रसतान ग्रन्थावली पृ० २२३

२- .. .. पृ० २१८

वे अपनी सत्ता के साथ जब जन में जाती हैं, तब भी सरासरी बालक मिल कर गोपियों की परीक्षा करती हैं, जब वे किसी तरह नहीं जानती तो वह यक्षोदा की धीगन्ध बिता देती हैं। तब कृष्ण भाग जाते हैं :

‘एक ते एक सौ कानति ये बरहे  
धीह सता सब लीने कन्हाज ।  
बाबत ही हौ कहां सौ कहां कोउ कहै  
बहै बलि की बधिकार ।  
सायो बही मेरी पावन फौरायी न  
हीबत बीर दिबावें सुहार ।  
रसतानि तिहारी सौ ररी बसोवति  
भागै मल करि छूटन पावें ॥ १

उपर्युक्त कबीरे से कवि रसतान के कृष्ण का माता यक्षोदा के प्रति लगाव प्रेन अभिव्यक्ति किया है।

रसतान की ही तरह बालक ने भी कृष्ण का बाल-रूप अत्यन्त प्राकृतिक रूप में अभिव्यक्ति किया है। बालक कृष्ण का रूप सर्व बचिस्व, यक्षोदा के हृदय में उत्साह एवं दर्प की भावना का संभार करता है । वे कृष्ण के नवतता की देखकर विमुग्ध हो जाती हैं। क्या-

‘पासने लेता नन्द सत्तन बलन बलि ,  
गोद ले ले सतना करति मोद गान है ।  
‘ बालम ’ सुकवि पल पल मेया पावें सुख,  
पीन्धि पीन्धि पीन्धि सुकरत पय जान है ।

नन्द वीं कहति नन्दरानी वी महर । सुत ,  
 नन्द की वी कलनि बह तु भी जान है ।  
 बाह देति नानन्द वी प्यारे कान्द नानन में ,  
 बाब दिन नान धरी नान इवि नान है ॥ १

रीतिकान्त के प्रसुत लृणाहिक कवि नागरी बाब  
 ने ' बीबार्ण ' लीला तण्ड में कृष्ण का लीनिक रूप वर्णित किया है।  
 कृष्ण अपनी विविध लीलाओं से सबका मन मोह लेते हैं। स्वयं बागरीदास भी  
 कृष्ण के इस बात-रूप पर मोहित है। उन्हें भी कृष्ण की विविध लीलायें ,  
 नैवसता एवं सावण्यमयी रूप अत्यन्त आकर्षित करता है । यथा-

‘न न गाय नरावै ।  
 नारै नर नै नवार्नै  
 नतराम कृष्ण सुखदाई  
 नहु लीला करत सुखार्नै ॥’ १

करत लीला विविध ननै संग बालक पँठली ।  
 डाक जैवत , डाक इरियाँ, चिते नरित कर्मठली ।  
 नहँ दिशि न्यातावली, ब्रज नंद विव नरितली ।  
 ललित लीला बात कउतक धुर विमानन देखली ।  
 परसपर नालत नलावत, हसि हलावत है तनै  
 नय नुन नयों नुठ जैवत ही विधि नहरा नवै  
 सजग नग रह्यो हरि पाकौं, सोई हरन की बते ।  
 ‘ बाब नागर ’ करत भीजन फिरत, मोहि लानि मते ॥ २

१- संपा० लीला भगवानदीन - लालम बीर लाल - लालम कैलि - बाब लीला पद १

२- संपा० डा० किशोरी लाल गुप्त - नागरीदास ग्रन्थावली डाक लीला तण्ड

दीनि दयाल कृत 'कुराग बाग' में भी कृष्ण की विविध सीताओं का फौहारी चित्र प्राप्त होता है। माता यशोदा की चिर बभिताणा है कि उनका पुत्र बस्ती ही कहा होकर धर उधर डोलें, कुछ शब्दों का उच्चारण करे। कृष्ण के मुँह से 'माँ' शब्द सुनने की चिर बभिताणा में माता यशोदा एक एक पाण बिताती है। कृष्ण के मधुर स्वर सुनत नुसर सी जनि कैसी होगी। इसकी सुनने की तीव्र इच्छा यशोदा के हृदय को ज्वलत कर देती है। यथा-

कोमल फौहर मधुर सुस्तात छे ,  
 नुसर निनादनि सौँ कान दिन बोलि हैं ।  
 नाके मम ही के वृष वृवन सुनीतिन को ,  
 गहि के कृपा की अब जीवन सो तीसिहें ॥  
 नैम धरि छेप सौँ प्रसुप्त होय दीनि दयाल,  
 प्रेम कीकनद बीन कब धौँ कलीसिहें ।  
 नरन तिहारि जदुईस राजईस । कब  
 धेर मन पानस में मंद मंद डोलि हैं १'१

'कुराग बाग' में कवि का मन्त हृदय स्पन्दित होता है।

तत्काल कृत 'सत्योपाख्यान' नामक वर्णनात्मक ग्रन्थ में राम चन्द्र के बाल-जन्म से विवाह तक का वर्णन प्राप्त होता है। तत्काल ने राम के बालक रूप का वर्णन इन शब्दों में किया है :

धरि निव की राय की माता । सत्यो मोद तति पुत पुतु गाता ॥

बँस कृपे पुहुता सम घोड़े । बँसु बीस सम बीस बिगोड़े ॥  
 किशतव बधर कधर बधि बावे । गँड नील सम गँड विरावे ॥  
 हुँदर बिलु नाजिका घोड़े । हुँदम तिलक बिलक फा मोड़े ॥  
 काम बाप सम प्रहृष्टि विरावे । कलक कलित पुत बलि बधि बावे ।  
 यह विधि सकल राम के वंश । तसि प्रमति कानो हुत वंश ॥ १

कृष्ण के लौकिक लीन्यर्य की विवेकन में पित  
 कृत 'सुरभी दान सीता' में बहिर्ब्यक्त हुए हैं। कृष्ण के सुभावने रूप पर  
 स्वर्य कवि बंशित ही वाक्यत होचक हैं :

हुँदल सीत अमीत कान के हुत कपीलन बावे ।  
 हुँत बाप से हुँत जोर बधि बरबस फाहि चुरावे ॥  
 सीर बिघात भात पर घोमित केसर की बिब नावे ।  
 साके बीस बिंदु रीरी की, रेखी केस बावे ॥  
 प्रहृष्टी के नैन लैन से बँस गँजतवारि ।  
 मद भवन लन मीन उदा से फा रँजत बनियारि ॥ २

### निष्कर्ष

रीति सुनी काव्य में वात्सल्य-भाव का  
 विवेकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव मृदय की वात्सल्यमयी  
 प्रस स्वाभाविक प्रवृत्ति का वर्णन कृत्रिम एवं मौलिक वातावरण में भी संभवता  
 के साथ उपलब्ध है। समुदाय-नृत कवियों की भाव-धारा रीति रीति वाचनात्मक

१- रामचन्द्र सुत- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३६५

२-

..

..

पृ० ३५५

वातावरण में कुछ सफ़ाई के साथ प्रकट हुई है। कहीं कहीं भूनादिक परिवर्तन सब मनीषित्व के प्रवाह के बीच भवत कृत्य की निम्न पाव-धारा विविधता की कलक कलक धारा के रूप में दृश्यमान है। वास्तव्य-मानना के विरत दीप भूगार के उल्लूक प्रवाह में लुप्त नहीं हुए , बल्कि लुप्त की सद्गुण वगमगाते क रहे ।।

...

## सप्तम अध्याय

### मध्ययुगीन भक्ति एवं रीतिकाव्य का बाल-भाव

#### सम्बन्धी साहित्य का तुलनात्मक

#### अध्ययन

- क- पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर वात्सल्य-  
भावना का परिपाक
- ख- ब्रह्म और जीव के लोभ पर आधारित सूफी  
कवियों का वात्सल्य-भाव
- ङ- राम एवं कृष्ण काव्य में उपलब्ध वात्सल्य-भावना  
का सामान्य आधार
- च- बाल-सुलभ लीलाओं में वात्सल्य का निर्देश
- उ- रीतिकालीन काव्य एवं भक्तिकालीन काव्य में  
वात्सल्य का निरूपण

निष्कर्ष

मध्ययुगीन भक्ति एवं रीतिकाव्य का बाल-भाव

सम्बन्धी साहित्य का तुलनात्मक

व्ययन

मध्ययुगीन भक्ति एवं रीति-काव्य के बाल भाव का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का अवलोकन आवश्यक है। इस युग के काव्य की सर्जना जन साधारण के बीच नहीं हुई। कवि जनता के बीच समाज के बीच जन्म लेकर भी समाज से दूर हो गये थे। स्काकी जीवन उनकी नियति थी। प्रतिभाशाली कवियों की फ्लायनवादी प्रवृत्ति ने जहाँ भक्त कवियों की ईश्वर की शरण लेने के लिए बाध्य किया, वहीं भक्तिकाल के अवसान में शृंगारिक कवियों ने अपने वात्रय दाताओं के यहाँ शरण ले ली। मध्यकालीन भक्ति काव्य प्रमुख रूप से चार प्रकार की भावना को लेकर रचा गया है। जिसे सैत-काव्य, सूफी-काव्य, कृष्ण-काव्य एवं राम-काव्य के नाम से जाना जाता है।

सैत-काव्य में भिन्न रूप प्रतीति होती सत्ता को एक छत्र में पिरोकर विभिन्न धार्मिक विरोधों को दूर करने का प्रयत्न परिलक्षित होता है। सैत कवियों ने ईश्वर के ऐसे रूप की कल्पना की जो सामान्यतया हिन्दू एवं मुसलमानों दोनों की ग्राह्य हों। तत्कालीन परिवेश



मैं उन सैतों को ब्रह्म के निर्गुण रूप का ही प्रतिपादन अभीष्ट हुआ । अतः उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों से सम्पन्नता किया । सैत कवियों ने हिन्दू धर्म से प्रभावित वैष्णव भावना को अपने काव्य में अभिव्यक्ति किया । सैत कवियों की ही भाँति निर्गुण भक्त कवियों का एक और सम्प्रदाय साहित्य के क्षेत्र में अन्तर्गत हुआ, जिसने हिन्दुओं, एवं मुसलमानों के उदार सैद्धान्तिक पक्ष को अपने काव्य में अभिव्यक्ति किया । उस समय तत्कालीन संघर्ष ने भारतीय जीवन में क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न कर दी थी । सामाजिक विषमता उत्कर्ष पर थी । हिन्दू एवं मुसलमानों के हृदय की पारस्परिक विषमता को दूर करने का प्रयास सूफी फकीरों की लेखनी से संभव हो सका । मध्यकालीन भक्ति-काव्य में सैत, सूफी विचारधारा के अतिरिक्त ईश्वर के सगुण रूप की प्रतिष्ठा राम एवं कृष्ण काव्य में अन्तर्गत हुई । भक्त कवियों ने अवतारवाद से प्रभावित होकर राम एवं कृष्ण के बाल रूप का वर्णन किया । इस युग से पहले राम एवं कृष्ण के बाल रूप की प्रतिष्ठा काव्य का अधिक विषय नहीं बनी थी ।

:

इस युग में कृष्ण एवं राम एक साधारण बालक, सखा के साथ ही सर्वशक्तिमान के रूप में काव्य का विषय बने । काव्य में वात्सल्य-भावना की प्रतिष्ठा हुई । एक और कृष्ण की बाल-रूप में अनेक प्रकार की साधारण लीलायें चित्रित हुईं तो दूसरी ओर राम का मर्यादित बाल-रूप काव्य का विषय बना । सगुण-काव्य के प्रणीता परम ब्रह्म परमेश्वर का बाल-रूप अनेक करते समय उसकी विराट् सत्ता को विस्मृत कर गये । वात्सल्य ने भक्ति में प्रमुख स्थान ले लिया । यशोदा साधारण माता के सदृश कृष्ण को मारती पीटती और दुलारती चित्रित की गई ।

इस प्रकार वात्सल्य की भाव भूमि पर जेक प्रकार के चित्रण हुए, जिससे मध्ययुग<sup>क</sup> साहित्य के इतिहास में स्वर्णयुग माना गया है।

इस समय राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक रूप से नैतिक पतन का काल था। कविगण अपनी भावनाओं का उद्घाटन केवल वाग्यदाताओं के मौरिज के लिए कर रहे थे। अतः संपूर्ण मध्यकालीन काव्य में किसी न किसी रूप में परतन्त्रता का आभास होता है। मध्यकालीन काव्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस युग का एक काव्य यदि फ्लायवादी था तो दूसरा वाग्यवादी। वात्सल्य की भावना एक ऐसी प्रवृत्ति द्वारा संचालित है कि इसका जगज्ज प्रवाह रोकना असंभव है। अतः इस युग में भी वात्सल्य-भाव की धारा बहती रही है, यद्यपि उसकी बाह्य शृंगारिक क्रियाशीलता ने साहित्यिक अभिव्यक्ति का मार्ग बदल दिया। वात्सल्य की भावना का उद्घाटन शृंगार की जीट में अवतरित हुआ। इतिहासविदों ने मध्ययुगीन संपूर्ण काव्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं के आधार पर दो कालों में विभाजित किया है। हंशरीन्मुख काव्य को मभित काव्य तथा शृंगारीन्मुख काव्य को रीतिकाव्य के नाम से अभिहित किया गया।

अतः तुलनात्मक विवेचन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम उन सभी पद्यों तथा प्रवृत्तियों का पुनः अपेक्षित सर्वेक्षण करें, जिनके आधार पर मध्ययुगीन कवियों की वात्सल्य भावना का फिल्ले कथार्यों में विश्लेषण किया गया है।

(ब) पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर वात्सल्य-भावना का

परिपाक

मभित-काव्य में निर्गुण काव्य-धारा के

प्रमुख आधार स्तम्भ कबीर का काव्य निर्गुण काव्य का प्रतिनिधित्व करने में पूर्णरूपेण सक्षम है। कबीर ने भगवान् के भक्त वत्सल तथा करुणामय रूप की प्रतिष्ठा की, लेकिन सैदान्तिक रूप से वह ब्रह्म निर्गुण ही रहा । कबीर के काव्य में भावना एवं सिद्धान्त का समन्वय माता- पिता, पुत्र-पुत्री वादि सम्बन्धों में दृष्टिगोचर होता है। व्यक्ति की जो भावना में लौकिक जीवन से ईश्वरीन्मुखी हो जाती है, वही भावना भक्ति के नाम से अभिहित की जाती है। सैत-काव्य में मनुष्य की भावना में रागात्मक सम्बन्धों का त्याग आवश्यक है। सैत-काव्य में वात्सल्य की नैसर्गिक उत्पत्ति की अवकाश ही नहीं है। यही कारण है कि सैतों में काव्य में विषय की अनिवार्यता के फलस्वरूप भगवान् से अपने सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया है। यदा कदा सैत काव्य में अपने वाराध्य के लिए 'माँ' सम्बोधन का प्रयोग किया गया है। कहीं कहीं 'बाप' शब्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है। एक स्थल पर पिता पुत्र का सम्बन्ध स्थापित करते हुए कबीर ने कहा है :

‘छउ पूत तैरा . तूँ बाप मेरा’

इसी प्रकार जीवन में सभी प्रकार की दिलासा देने वाले के रूप में ईश्वर की महत्ता का प्रतिपादन 'बाप दिलासा मेरी कीन्हा सब सुखाली मुसि अपुत दीन्हा' किया है। पिता के सदृश माता की वत्सल-भावना का परिपाक 'हरि जननी मैं बालक तैरा' कह कर दिया है। कबीर की दृष्टि में माता का हृदय विशाल है। उस विशाल हृदय में उनके अपराधों को दामा करने की शक्ति है। उदाहरण देते हुए कबीर ने कहा है कि माता का हृदय इतना विशाल है कि वह पुत्र के द्वारा किये गये असंख्य अपराधों को

झामा करके उससे स्नेह करती है।

‘ हरि जननी मैं बालक तेरा ’ १

कबीर की इस विचारधारा का प्रतिपादन दादू दयाल , सैत रजब, वचना जी, अर्जुन देव की वाणी में भी प्राप्त होता है। सैत कवि हरि जी को अपना रक्षक मानते हैं। उनका विचार है कि ईश्वर के द्वारा ही मनुष्य का लालन पालन होता है। ईश्वर सदैव मनुष्य मात्र की रक्षाली करता है, सैतान के सभी अपराधों को झामा करके ईश्वर मनुष्य को अपने गले से लगा लेता है। सैत कवि दादू दयाल की इच्छा है भगवान् उनके सभी अपराधों को पिता के समान झामा करें। तभी तो वे कह उठते हैं :

‘ माता बड़ी बालक तजे, सुत अपराधी होय’। २

सांसारिक सम्बन्धों के घरातल से हट कर सैत कवि को मुक्त हृदय ने वात्सल्य भावना की महत्ता का प्रतिपादन वैराग्य की माध्यम बना कर भी किया है। वात्सल्य की भावधारा में सैत सिद्धान्तों की स्थापना का प्रतिपादन भी हुआ है। कहीं-कहीं सैत कवियों ने अपनी विचारधारा को वात्सल्य भाव की बीड़ में ढीक रूपों में व्यक्त किया है। लेकिन माता पुत्र के साथ पिता पुत्र के दो रूप होते हुए भी एक हो जाते हैं।

(ब) ब्रह्म और जीव के अन्ध पर आधारित सूफी कवियों का

का वात्सल्य-भाव

जहाँ सैत कवियों ने माता को सर्वगुण सम्पन्न

१- प्रो० पुष्पपाल सिंह- कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १११ पृ० ३५३

२- परशुराम चतुर्वेदी- दादू दयाल ग्रन्थावली पृष्ठ ३ पृ० ३६६

दिसाकर पुत्र के अङ्गुणों को स्वयं जोड़ लेने की बात का वर्णन किया है। वहीं उनके ब्रह्म के ऐश्वर्य रूप की प्रतिष्ठा परिलक्षित हो जाती है। यही भावना सूफी काव्य का प्रण है। सूफी-काव्य में स्काकार होने की भावना की प्रक्रिया में ही मिलन का अन्त है। सैत कवि जहाँ सम्बन्धों की कौमलता का दर्शन कराकर ईश्वर के प्रभुत्व का प्रदर्शन किया है, वहीं सूफी कवि साधक अपनी सब कुछ लीकर अन्त में उस परम ब्रह्म में लीन होने भावना में "ओक" से "एक" हो जाता है। सूफी कवि की भावना में वफा का उल्लेख उन्होंने सैत कवियों की भाँति केवल सम्बन्ध सूत्र जोड़ कर अपनी वात्सल्य भावना का परिचय नहीं दिया, बल्कि भारतीय परिवेश की लोक प्रचलित कहानियों को माध्यम बनाकर उसकी नायिका के बाल्यकाल का सूक्ष्म विवेचन किया है। ईश्वर से मिलन के सूत्र रूप में वात्सल्य भाव की विवेचना में सैत कवियों ने जहाँ मानवीय सम्बन्धों को आधार बनाया, वहाँ सूफी कवियों ने विश्व भर को ईश्वर मिलन के लिए अत्यन्त आकृत व्याकृत चित्रित किया है।

सैत-काव्य में वात्सल्य-भावना का परिपाक प्रतीति के माध्यम से हुवा है, किन्तु सूफी-काव्य में परमात्मा से मिलन के संयोग वर्णन के स्थान पर वियोग के चित्र ही अधिक हैं। सूफी काव्य में साधक परमात्मा से मिलन के लिए आकृत रहता है।

सूफी विचारधारा के अनुसार परोक्ष सत्ता प्रेम एवं सौन्दर्य का रूप है। ब्रह्म के सौन्दर्यमय रूप का दर्शन कर लेने पर सूफी कवि अपने को धन्य समझता है। परोक्ष सत्ता के बाल्यकाल के रूप वर्णन में

सूफी कवियों ने अतिशयोक्ति का आश्रय लिया है लेकिन यह भक्त की ईश्वर तादात्म्य की स्थिति है। यही कारण है जहाँ पद्मावती, मधुमालती अथवा चित्रावली के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है वहाँ किसी न किसी रूप में परोक्ष सत्ता की विराटता का स्मृत भी है :

‘मये दस मास धरि मैं घरी ।

पद्मावति कन्या वीतरि’ ॥ १

उपर्युक्त जीपार्ह में पद्मावती का जन्म परोक्ष सत्ता की अवतारणा पर ही आधारित है। सत काव्य के ही सदृश सूफी काव्य में भी वात्सल्य-भाव की तीव्रता का उल्लेख ऐसे चुने स्थलों पर ही हुआ है। वे स्थल भी संयोग के स्थान पर वियोग की अमिव्यंजना अधिक करते हैं। मधुमालती की विदा के अवसर पर माता के हृदय की व्याकुलता शकुन्तला की विदा पर कण्व कण्ठ के हृदय की व्याकुलता से किसी तरह कम नहीं -

‘कर्म न होइ माय बाप के हाथे ।

भुज जहि लिखा दैव जो माथे’ ॥ २

(इ) राम एवं कृष्ण काव्य में उपलब्ध वात्सल्य-भावना का

सामान्य आधार

राम एवं कृष्ण के पारिवारिक जीवन से

१- डा० माता प्रसाद गुप्त- पद्मावत , जन्म सण्ड दो० ५१ पृ० ४४

२- मैकन - मधुमालती, सम्पदन सण्ड पृ० १५६

घटनाओं को

सम्बन्धित भावनात्मक सूत्र में पुरोकर जिस काव्य की सर्जना हुई वह काव्य मध्ययुग का सगुण काव्य कहलाया। भक्ति की भावनाओं से मरा यह काव्य एक और राम की विविध मर्यादित लीला का गान करता तो दूसरी ओर कृष्ण की लोक रंजन वाली लीलायें काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य बनीं। मध्यकाल में राम कृष्ण के प्रमुख स्तम्भ तुलसी, अष्टछाप के कवि तथा अष्टछापतर कवियों ने तत्कालीन समाज के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुए। राम एवं कृष्ण की बात लीलाओं की विविध व्याख्या ने पुनः समाज में सरसता एवं तन्मयता का वातावरण बनाया। राम काव्य में अद्वेय राम के प्रति प्रशंसात्मक प्रसूति का कैन है, उनके प्रति एक विशेष प्रकार का सम्मानपूर्ण भावना काव्य में प्रतिबिम्बित होता है। यही कारण है तुलसी ने राम की विविध लीलाओं का गान अत्यन्त मर्यादित रूप में वैकित किया है। तुलसी के वात्सल्य वर्णन में भी राम का यह मर्यादित ईश्वरीय रूप यथावत् प्राप्य है :

‘कौशल्या जब बोलन जाई ।

ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहि पराई ।

निगम नैति सिव कैत न पावा ।

ताहि धरहि जननी हठि धावा’ ॥ १

तुलसी के ही सदृश अष्टछाप<sup>कवि</sup> भी ईश्वर के सगुण रूप के उपासक थे। उनके आराध्य कृष्ण थे उनकी लीलाओं के वर्णन में कृष्ण के ईश्वर रूप के प्रतिपादन के साथ ही कृष्ण की बाल्यावस्था, ठुमके ठुमके कर चलना, अत्यधिक स्वभाविक रूप में वैकित है।

अष्टछाप कवि तुलसीदास के सदृश किसी

मर्यादा के बन्धन में नहीं बंधे हैं। वष्टहाप कवियों की परम्परा का निर्वाह करके वष्टहाफार कवियों ने भी कृष्ण को उसी लोकरंजनकारी रूप में स्वतन्त्रता से चित्रित किया। जहाँ राम काव्य में राम के ठुम्क ठुम्क कर चलने का भाव उनके शुद्ध ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा करता है, वहाँ कृष्ण भक्त कवि एवं कवयित्रियों में चन्द्रसखी, बीबी रत्नकृष्णरि, ब्रजवासीदास आदि ने कृष्ण के स्वाभाविक रूप को अवतरित किया। कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण के साधारण रूप को उनके आध्यात्मिक रूप में मिला कर वर्णित किया।

‘यशुमति सुत को चलन सितावे,

कंगुली फरि लिए दौड जनियाँ’॥ १

राम का बाल्यकाल शील एवं शक्ति के गुणों से आच्छादित है :

‘पाँदिये लाल पालने ही भुलावै’॥ २

और छ्धर कृष्ण का स्वाभाविक रूप देखिए-

‘हरि रोये माता की कनियाँ,

दूध पियायी तब नन्दरनियाँ’॥ ३

कहने का तात्पर्य यह है कि राम-काव्य एवं कृष्ण काव्य के वात्सल्य का अन्तर केवल दृष्टिगत अन्तर है। राम-काव्य के प्रणीता राम को आराध्य की दृष्टि से देखते हैं तो कृष्ण-भक्त

१- पद्मावती शबनम - चन्द्रसखी और उनका काव्य पृष्ठ ६

२- तुलसीदास - गीतावली पृष्ठ १८

३- ब्रजवासीदास- ब्रजविलास पृष्ठ ३३



कवि कृष्ण को वाराध्य मानते हुए भी वफ़े बालक की दृष्टि से देखते हैं।

### ( ई ) बाल-सुलभ लीलावी में वात्सल्य का निर्देश

---

राम एवं कृष्ण के वात्सल्य वर्णन की प्रक्रिया में यह बात उल्लेखनीय है कि दोनों के जीवन में वातावरण का अत्यधिक अन्तर था । राम-राज वैभव में, असीम सम्पदा से युक्त बालक के रूप में अवतरित हुए थे , जबकि कृष्ण का जीवन गवि के सुरम्य वातावरण में, राजसी वैभव से दूर गौप कुमारी के बीच बीता था । यही मुख्य कारण है कि राम की बाल-लीला में चपलता स्वाभाविकता से युक्त बालोचित प्रवृत्ति का अभाव प्रत्येक स्थल पर स्पष्टता है। लेकिन कृष्ण की बाल लीलाएं स्वच्छन्द, चंचल , चपल, रूप में चित्रित किये गयी हैं। उनके जीवन में बालोचित प्रवृत्ति के विकास का वातावरण था । वे अनेक गायों के स्वामी नन्द के पुत्र थे । वे गवि के अन्य गौपों के साथ साथ खेलते थे । अतः उनमें बालक की सभी प्रवृत्तियाँ यथा रुठना, सीजना, हठ करना , साथियों के साथ फगड़ना, फिर समझौता कर लेना आदि बातें स्वाभाविक रूप में प्राप्त होती हैं। कृष्णपरक वात्सल्य पूर्ण काव्य में मर्यादा बाध नहीं आती है। कृष्ण-काव्य में कृष्ण की बाल्यावस्था का विकास स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है।

इस प्रकार निर्गुण कवियों ने वात्सल्य-भाव की विशेषतः आध्यात्मिक अनुभूति के द्वारा व्यक्त किया है। प्रेममार्गी कवियों ने वात्सल्य-भावना का परिपाक प्रचलित लोक कथाओं की माध्यम बनाकर किया, तो संत कवियों ने पारिवारिक सम्बन्धों की शक्ति के रूप

रूप में प्रयोग करके हृदय में उमड़ती भावनाओं को तुष्ट किया ।

राम एवं कृष्ण-काव्य में वर्णित वात्सल्या-  
नुभूति का मूल स्वर लीला तत्त्व है। राम एवं कृष्ण की अवतारणा विभिन्न  
वातावरणों में होती हुए भी मूलतः सहज एवं मानव सुलभ है। कभी कभी राम  
और कृष्ण की दिव्य बाल कवियों भी देखने को मिलती हैं।

(उ) रीतिकालीन काव्य एवं भक्तिकालीन काव्य में वात्सल्य का

निरूपण

रीतिकाव्य में शृंगार की माँभावनाओं  
को उद्घाटन सगुण एवं निर्गुण काव्य से बिल्कुल विपरीत है। परोक्ष सत्ता  
के प्रति मध्ययुगीन भक्ति कवि श्रद्धा की भावना को लेकर काव्य सर्जना की  
और उन्मुख हुआ है। रीतिकाल के कवि सहृदय थे । उनके हृदय में भक्ति  
का अविरत प्रवाह भी बह रहा था, किन्तु तत्कालीन परिवेश एवं समस्याओं  
के कारण कवि हृदय अपनी भावनाओं का उद्घाटन शृंगार का परिधान  
पहन कर करता था । यद्यपि शृंगार-काल के प्रमुख कवि बिहारी पूर्णरूपेण  
शृंगारी कवि थे, तथापि बिहारी सतसई के कतिपय दोहे उनके हृदय में  
भगवान् के प्रति श्रद्धा के परिचायक हैं। भक्ति के साथ ही शृंगार की छोट  
में बिहारी ने अपने हृदय में उमड़ती वात्सल्य-भावना का परिचय भी दो  
तीन दोहों के माध्यम से दे दिया है, जहाँ नायिका के हृदय में प्रिय के  
प्रति वासना की ललक पुत्र के माध्यम से अवतरित हुई है<sup>१</sup>। यही शृंगार से

१- लाला भगवानदीन - बिहारी बोधिनी दोहा १६६

युक्त चित्रण भक्ति-काव्य से रीतिकाल को अलग करने में समर्थ है। भक्ति-काव्य में कवि की यशोदा वधवा कौसल्या को किसी नायक का सहारा नहीं लेना पड़ा। रीतिकालीन काव्य में भी वात्सल्य-भावना से युक्त अनेक चित्र प्राप्त हैं, जो इस बात का परिचायक हैं कि वातावरण चाहे कैसा भी हो लेकिन मानव जीवन से सम्बन्धित स्वाभाविक भावनाओं वधवा क्रिया कलाओं का कुछ अवरोध गति से चलता रहता है। इन स्वाभाविक भावनाओं वधवा क्रिया कलाओं की तुलना एक ऐसे फल के की जा सकती है जो अनेक शिला सप्टों को काटता हुआ अपनी अभीष्ट स्थल पर पहुँचने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

मध्ययुगीन भक्त कवियों की ही तरह रीतिकालीन काव्य में भी राम वधवा कृष्ण के जन्म के अवसर पर विभिन्न प्रकार की शुभियाँ वर्णित हैं। भारतीय सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह भी इस अवसर पर कवियों ने तन्मयता से चित्रित किया है।

‘जर्म राम जगत के जीवन,  
धनि कौसल्या धनि दसव्यदन ।  
अवधपुरी मधि महामोह हवि,  
नरनारी फूले वानंदकन’ ॥ १

सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह करते हुए रीतिकालीन कवियों ने ब्रजपति के गृह का चित्र सींचा है, जहाँ लला के जन्म की कृती के शुभ अवसर पर सांस्कृतिक परम्पराओं का निर्वाह हो रहा है :

‘सात की छठी ब्रज लोक वानन्दित नंद बढ़्यो बन्धवावत ।

चाह्न चाह बधाह्न ते चहुँ वीर कुटुम्ब वधात न यावत’ ॥१

कृष्ण के जन्म के अवसर पर माता-पिता नगर के नर नारी के हृदय के बाह्याद का वर्णन तुलसीके राम-जन्म तथा कृष्ण के जन्म की सुखद वेला का वर्णन स्मरण कर देता है। नारी के हृदय में अपनी सन्तान के प्रति ममत्व की भावना का परिपाक रीतिकाव्य में भी प्राप्त होता है, किन्तु मूलतः रीतिकवि की दृष्टि नारी के कम्पीय रूप पर ही अधिक केन्द्रित रही है।

रीतिकाव्य में नारी के मातृ-रूप के सौंदर्य का वर्णन प्रायः नगण्य है। इसका मूल कारण प्रायः समसामयिक वातावरण की कहा जा सकता है। मकित-काल में नारी हृदय की वात्सल्य-भावना के परिपाक का विस्तृत चित्र है। यशोदा, कौशल्या, देवकी के हृदय की विकलता मकित-काव्य की विभूति है जो मनोवैज्ञानिक रूप से सभी माताओं के हृदय का चित्र कहा जा सकता है। कृष्ण की बाल लीला से सम्बन्धित अनेक पद रीतिकालीन काव्य में उपलब्ध। भावों में वह स्वाभाविकता भी है, किन्तु मकितकालीन काव्य में उपलब्ध लीला पदों<sup>में</sup> सुरम्य प्रताह यहाँ अप्राप्य है। मध्यकालीन भक्त कवियों को जहाँ कृष्ण तथा राम के बाल-वर्णन की ललक थी, वहाँ इसके विपरीत शृंगारी भावना पर सुगंध रीति कवियों की प्रवृत्ति वैसी नहीं थी। यही कारण है कि रीतिकालीन कवियों की वात्सल्य भावना के परिपाक के लिए शृंगार-भाव

का वाश्रय लेना पड़ा ।

निष्कर्षतः यह प्रमाणित हो जाता है कि मध्यकालीन परिवेश में सम्भ्रूत काव्य के अन्तर्गत जितना स्वच्छ सहज एवं मार्मिक बाल-भावना सम्बन्धी चित्रण सगुण भक्ति-साहित्य में उपलब्ध होता है, उतना न तो निर्गुण काव्य में और न रीति-काव्य के अन्तर्गत प्राप्य है।

सगुणवादियों ने अपने दृष्ट देवों को सामान्य लोक स्तर पर प्रतिष्ठित करके वात्सल्य-भावना को जितने सजीव रूप में प्रस्तुत किया है, अन्यत्र दुर्लभ है। शोध दृष्टि को व्याप्त बनाते के कारण हमें मध्यकाल की वष्टकापिटर वात्सल्यपरक चित्रण की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक विवेचन करना उचित प्रतीत हुआ । परवर्ती हिन्दी-काव्य में जहाँ-जहाँ वात्सल्य का चित्रण प्राणवान् एवं सफल दिखाई देता है, हमारी धारणा है कि वहाँ मध्यकालीन वात्सल्य-चित्रण कहीं सघन-भाव छाया बन कर और कहीं अन्तःसलिला के रूप में विद्यमान है।

तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वात्सल्यपरक साहित्य का शास्त्रीय एवं मनो-वैज्ञानिक निरूपण जितना कि वष्टकाप तथा वष्टकापिटर राम कृष्ण काव्यों के अन्तर्गत हुआ वैसा मध्यकाल के निर्गुण एवं रीतिपरक काव्य में संभव नहीं हुआ । काव्यिक भाव एवं कलापदा को सगुण-भक्त-कवियों ने ही सहज एवं उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया है, जैसा कि तत्सम्बन्धी विपुल शोध-तथा समीक्षात्मक अब तक किये गये कार्य से प्रकट है। प्रस्तुत शोध का लक्ष्य न तो उस विपुल कार्य की रूपान्तर से पुनरावृत्ति करना है और न ही उसका पुनर्गुल्याकन ।

...

उपसंहार

## उपसंहार

मानव प्रकृति की समस्त प्रकृतियाँ में बालप्रवृत्ति ने सभी का ध्यान आकर्षित करके मन मोह लिया है। सृष्टि के प्रारंभ से ही माँरागी की कोमल आकांक्षाओं ने वात्सल्य को प्रसूता दी है। मानव सृष्टि की ओर ध्यान जाते ही बालक की सुन्दर कवि नेत्रों के सन्मुख सजीव हो जाती है। बालक के रूप में उसके क्रियाकलापों में मानव-हृदय अपनी आकांक्षित कृप्त कल्पनाओं की परिपूर्ति देखता है। यही कारण है कि बालक मनुष्य के अतीत की रूपरेखा, वर्तमान की आकांक्षा के साथ भविष्य की कामना के रूप में <sup>उसके मन में</sup> विद्यमान रहता है। बालक के अभाव की कल्पना ही मनुष्य के <sup>मन में</sup> लोक जीवन की सभी प्रसन्नता को समाप्त कर देती है। उसकी नैसर्गिक वात्सल्य की भावना वास-पास के अन्य बालकों में उद्घाटित होती है। यद्यपि इस भावना के प्रस्फुटित होने के ढंग में विभिन्न प्रकार के अन्तर स्वयं सन्निहित हो जाते हैं। भारतीय कथात्मकादी परिवेश में संतान की उत्पत्ति ही नहीं, विशेषकर पुत्र की उत्पत्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गई है। भारतीय जनजीवन में वेदों का प्रमुख स्थान है। वेदों की विचारधारा हमारे सामान्य जीवन का आवश्यक ढंग बन गई है। अतः उसी विचारधारा के अनुसार धर्म, कर्म, काम, मोक्ष ये मनुष्य के जीवन के चार प्रमुख आधार हैं, जिनमें मोक्ष की प्राप्ति बिना पुत्र के किसी भी प्रकार संभव नहीं। इस प्रकार संतान मनुष्य के रागात्मक जीवन का आवश्यक ढंग है। बालकका उज्ज्वल, निश्कल पवित्र एवं उदात्त रूप मनुष्य के जीवन के साथ ही कवि की लेखनी का

भी प्रमुख तत्त्व ही गया । ईश्वर भक्त कवियों ने भगवान् के इसी निश्कल उदात्त, चंचल, पवित्र, स्वाभाविक रूप में एक बालक की कल्पना की । उसे वात्सल्य साहित्य का नाम दिया गया । ईश्वर भक्त कवियों ने अपने वाराध्य देव को बाल रूप में ही कहीं जन्य माना है तो कहीं जनक, लेकिन उनका हृदय बाल रूप के प्रति ही वासवत हुआ । मध्यकालीन भक्त कवियों ने कृष्ण वथवा राम की सहज, बाल लीलाओं को अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में चित्रित किया, जिसके फलस्वरूप मध्यकालीन साहित्य में दाम्पत्य भाव के साथ वात्सल्य की भावना घुल मिल कर ईश्वरीन्मुख हो गई । भगवान् के बाल<sup>रूप</sup> को साहित्य का प्रमुख प्रतिपाद्य बनाकर प्रतिष्ठा प्रदान करने वाले साहित्यकार कवियों में अष्टछाप कवियों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मध्ययुगीन जिसमें वात्सल्य रस को काव्य का प्रमुख रस माना गया । रस काव्य की आत्मा के पद पर प्रतिष्ठापित होने के कारण लौकिक होते हुए भी लौकीत्तर रूप में सर्वमान्य है। काव्यशास्त्रियों ने प्रत्येक भाव को तभी काव्य में स्वीकार किया जब उस भाव में रस की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य हो । यही कारण है कोई भाव रसदग्ध तक पहुँचने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। वात्सल्य को रस का प्रतिष्ठित स्थान दिलाने के लिए अनेक प्रकार के सौपानों का सहारा लेना पड़ा ।

भरत से लेकर पं० राज जगन्नाथ : वात्सल्य को रस की कसौटी पर अनेक प्रकार से कस कर इसका सम्बन्ध "प्रीति" वथवा "रीति" से जोड़ने का प्रयास करते रहे । संस्कृत के अनेक वाचार्यों ने वात्सल्य को रस के रूप में प्रतिपादित करके इसे रस का दर्जा दिया है । जिनमें वाचार्य विश्वनाथ का नाम प्रमुख रूप में उल्लेखनीय है। वात्सल्य रस का एक व्यापक क्षेत्र है, जिसमें संयोग वात्सल्य वियोग, वात्सल्य के साथ ही



साथ विभिन्न स्थायी भावों एवं संचारी भावों का सम्मिश्रण है। यही कारण है कि वात्सल्य रस को श्रेष्ठ रसों में एक रस माना गया है। <sup>प्रथम काव्य -</sup> संचारी धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक उथल पुथल में हुई थी। तत्कालीन परिवेश में मानव को जीवन से ही अनास्था हो गई थी। ऐसे नाजुक दौर में निर्गुण-भक्ति काव्य के सूफी एवं संत कवियों की वाणी ने अमृत का कार्य किया। इनकी भक्ति एवं यथार्थ बोध से युक्त विचारधारा से जनजीवन को स्फूर्ति मिली, वे फिर से जीने की चाह करने लगे। संत कवियों ने अपनी सरल वाणियों से मानव का ब्रह्म के साथ स्वाभाविक सम्बन्धों का विश्लेषण करके वाढम्बरविहीन समाज की वाक्यांश व्यक्त की। सन्त-वाणी में सामाजिक रागात्मक सम्बन्धों का त्याग कर-संसार के समस्त प्राणी से प्रेम, का संदेश वर्णित था। इन संतों ने यद्यपि अपने काव्य में परिवार के त्याग की बात की थी तथापि अपनी बात को अभिव्यक्त करने के लिए पारिवारिक सम्बन्धों को प्रतीक के रूप में अपनाया था।

निर्गुण ब्रह्म के प्रतिपादक सूफी फकीरों ने अपने मतों के प्रतिष्ठापन के लिए उस राह को चुना जिन्हें हिन्दू तथा मुसलमान हृदय समान रूप से स्वीकार करता था। उन्होंने हिन्दू परिवेश में प्रचलित लोक कथाओं को माध्यम बनाकर विभिन्न प्रतीकों का सहारा लेकर अपने हृदय की बात कही है। भारतीय लोक कथाओं का सहारा लेते हुए काव्य में वात्सल्य भावना के प्रतिपादन में सूफी कवि सफल रहे हैं। पारिवारिक जीवन में पुत्र अथवा पुत्री के विरह से उत्पन्न माता अथवा पिता के हृदय की व्याकुलता, सूफी कवियों ने 'प्रेम की पीर' के माध्यम से व्यक्त की है।

मध्यकालीन काव्य में कृष्ण-भक्त कवियों

ने कृष्ण की बाल सुलभ लीलाओं का गान अत्यन्त स्वाभाविक रूप में किया। अष्टहाप तथा अष्टहापेतर काव्य में कृष्ण के बाल-जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का जैसा वर्णन प्राप्य है, उससेयह स्पष्ट हो जाता है किमानव हृदय की रागात्मक अनुभूति के प्रवाह को बाह्य परिस्थितियाँ रोकने में असमर्थ होती हैं। वात्सल्य-भाव एक ऐसा प्रवाह है जिसको रोकना एक तीव्रप्रवाह वालेफरने को रोकने का असफल प्रयास है। मध्यकालीन कृष्ण काव्य में कृष्ण के लोक रंजनकारी व्यवितत्त्व ने तत्कालीन सभी मन्वित सिद्धान्तों को अपने चरित्र में समेट कर बाह्य अवरोध को नष्ट किया। बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित मत के प्रतिपालक कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के चरित्र में हंश्वरीय रूप कम और साधारण बालक का रूप अधिक व्यक्त किया और साथ ही कृष्ण के जीवन को सामान्य जन-जीवन के स्तरों निकट ला दिया कि मृत्यु मात्र के हृदय में अपने वाराध्य की दिव्य भावना तिरोहित हो गई और वहाँ वाराध्य अपने ही बालक की तरह विभिन्न क्रीड़ाएँ करता दृष्टिगोचर होने लगा। मध्यकालीन कवियों के काव्य की वात्सल्य-भावना ने वाराध्य सर्व वाराध्य की दूरी को समाप्त प्रायः कर दिया। यशोदा, देवकी के साथ ग्राम की गोपियाँ कृष्ण की हवि में अपने बालक की हवि टटोलने लगी। कृष्ण के संयोग चित्र जहाँ बाल-सुलभ चंचलता से युक्त होते हैं, वहीं कृष्णवियोग में तड़पती यशोदा देवकी जयवा कीर्ति का हृदय मातृ-हृदय की वाकुलता - व्याकुलता से युक्त है। कृष्ण की लीलाओं को देखकर यशोदा नंद की प्रसन्नता का वर्णन उनकी सहज वत्सल-भावना को अभिव्यजित करते हैं। उन्होंने कृष्ण का ठुम्क ठुम्क कर चलना, टेढ़ी चितवन से देस्ता, मांगना, न मिलने पर रुटना, चौटी बढ़ने के लालच में कच्चा दूध पीना, गोपियाँ के घर जाकर उनका दही फसल ला जाना, फँडे जाने पर साफ फुर जाना, तथा बड़े

मौले बन जाना वादि कीक बाल-लीलाओं के चित्रण द्वारा एक और कृष्ण की बालीचित लीलाओं का वर्णन किया है तो दूसरी ओर इन लीलाओं को देखकर यशोदा एवं नन्द के हृदय में उमड़ती वात्सल्य भावना का विस्तृत विवेचन किया है।

साहित्य के क्षेत्र में शृंगार रस से सम्बन्धित काव्य प्रचुरता की दृष्टि से वात्सल्य रस से सम्बन्धित काव्य के समान है। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक युग के लौकिक साहित्य तक वात्सल्य-भावना से सम्बन्धित साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। वात्सल्य-भाव की व्यापकता इसी तथ्य से प्रमाणित हो जाती है कि इसकी अविरल धारा अबाधगति से बह रही है।

कृष्ण की चंचलता एवं यशोदा के हृदय का वात्सल्य सम्पूर्ण मध्यकालीन साहित्य की निधि है। मध्यकालीन भक्ति-साहित्य का बाधा भाग कृष्ण के वात्सल्य जीवन पर आधारित लीलाओं का गान है। यद्यपि कृष्ण के ईश्वरीय रूप का सम्मिश्रण होने से मध्ययुगीन काव्य में भक्ति पर पदों की संख्या भी कम नहीं है। इन पदों में भक्त हृदय की संवेदनशील अभिव्यक्ति है। मध्ययुगीन भक्त-कवियों ने कृष्ण का यह आभीरु के देवता का बाल-रूप संस्कृति के द्वारा अपनाया था जिसे वल्लभाचार्य ने वैष्णव भक्तों के हृदय में प्रतिष्ठित किया था।

मानव जीवन के वियोगानुभूति का मार्मिक कैनन राम-काव्य की प्रमुख विशेषता है। माता एवं पिता की हृदय विदारक दशा का वर्णन राम-काव्य का मूल तत्त्व है, जिसके आधार पर संपूर्ण

रामायण की सर्जना हुई है। वियोग पदा में कौशल्यादि माताओं एवं दशरथ के हृदय की वात्सल्य अनुभूति का वर्णन है। राम के बाल्यकाल से सम्बन्धित घटनाओं की चर्चा यद्यपि राम-काव्य में अभिव्यक्ति हुई है, तथापि वह मर्यादा के वावरण से बाधित है। राम के चरित्र का यही मर्यादित रूप राम के स्वभाविक बाल विकास वर्णन की प्रक्रिया में बाधक बने हैं। तुलसीदास का काव्य समग्र का राम काव्य के प्रतिनिधि है।

भक्ति-काल के अवसान के पश्चात् <sup>काव्य में</sup> शृंगार की भावना का मुख्यतः समावेश हुआ। कतः इतिहासकारों ने इस काल की रीतिकाल के नाम से अभिहित किया। शृंगार युक्त वातावरण में भी वात्सल्य भावना का प्रवाह न रुका, वह निरन्तर बहता रहा यद्यपि भाव प्रकाशन का मार्ग बदल गया। वात्सल्य की भावना किसी स्थान पर भक्ति काल के काव्य की प्रेरणा से अभिव्यक्ति हुई तो वहीं शृंगार की ओर लेकर। शृंगार पर आरोप कहे वात्सल्य-भावना की अभिव्यक्ति कवि वर्ग के लिए अनिवार्यता बन गई थी। मध्यकालीन रीति कवि का प्रमुख ध्येय अपने वात्रयदाता को प्रसन्न करना था। कतः वे इसी प्रकार के साहित्य का प्रणयन कर रहे थे, जिससे वात्रय दाता प्रसन्न रहे। इसी में रीतिकालीन कवि का स्वार्थ सिद्ध था। रीतिकालीन काव्य में वात्सल्य चित्र से युक्त कृष्ण की लीला पूर्ण रूपेण अष्टशाय कवियों से प्रेरित थी। उनमें कोई मौलिकता नहीं थी। परन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं। इस युग के काव्य पर विहंगम दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि प्राकृतिक प्रवाह अपने सुगम पथ की ओर स्वयं बहसर हो जाते हैं, उन्हें किसी भी प्रवाह का वातावरण प्रभावित नहीं करता। यही कारण है कि भक्ति-काव्य की ही तरह रीतिकालीन काव्य में भी

बालक कृष्ण की चंचलता , यशोदा के हृदय की विकलता अभिव्यक्त है।

संपूर्ण भक्तिकाल की बाल-भावना दो भागों में विभाजित है। भक्ति भावना से युक्त सात्विक साहित्य, भक्ति-काव्य एवं शृंगार पर आरोप कहे हृदय की स्वाभाविक भावनाओं से भरा काव्य अलेशृंगार काव्य कहा जाता है।

भक्ति-युग के कवि का हृदय वातावरण से प्रभावित तो था किन्तु उसका मुख्य ध्येय समाज में सदाचार, सच्चरित्रता, की चेतना को जाग्रत करना था। भक्तिकालीन कवि जन साधारण में फैली बाहुम्बर से मुक्त भावना का विनाश करके सीधी सरल भक्ति के विचार को फैला रहे थे। निर्गुण कवि जहाँ निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल देकर मानव-हृदय को निर्मल बना रहे थे, निर्गुण कवि अपनी विचारधारा के उद्घाटन के लिए पारिवारिक सम्बन्धों की अवहेलना करने के लिए जनसाधारण को प्रेरित कर रहे थे।

सगुण-भक्त कवि स्क वीर राम एवं कृष्ण की विविध बाल-लीलाओं का वर्णन साधारण एवं मर्यादित रूप में कर रहे थे। भक्ति कालीन कवियों के सदृश्य ही रीतिकालीन कवियों ने वात्सल्य भावना का दो प्रकार से उद्घाटन किया, अर्थात् शृंगार का सहारा लेकर एवं सहज रूप में।

निष्कर्षतः अष्टकाक्षर कवियों के हृदय ने वल्लभाचार्य की भक्ति-पद्धति से प्रभावित होकर कृष्ण की बाल-लीला सम्बन्धी पदों का गान किया है। वात्सल्य-भावना का यह प्रवाह कभी प्रकट रूप से

बिना किसी बाह्य गतिरोध के और कभी सामान्य रूप से अविरल रूप में बहता रहा है। मध्ययुगीन कवियों की सात्विक भावनाओं के सन्मुख सभी वात्सल्य-भावनाएँ वारोपित हो जाती हैं, नैत्री के सन्मुख कृष्ण अथवा राम की ही सुन्दर बाल-कवि घूमती है। वष्टहापेतर कवियों ने अपनी हृदयगत अनुभूतियों का कृष्ण के बाल रूप में चित्रांकन किया है। कहीं यशोदा के हृदय की ममता से युक्त कवि को वैकित किया है। इस प्रकार कवि की वात्सल्य-भावना के साथ ही पाठक को यशोदा की वात्सल्य-भावना का परिचय भी प्राप्त होता है। वष्टहापेतर काव्य में वात्सल्य-भावना से भरे पद मानव-हृदय को आनन्दित कर देते हैं। वात्सल्य-भाव का प्रवाह भवित काल के अवसान के बाद भी मिलता है। वष्टहापेतर रीतियुगीन काव्य में वात्सल्य-भावना का नैसर्गिक रूप यद्यपि कुछ बदल कर प्रकट हुवा है, तथापि बाह्य वातावरण इस अनुभूति को पूर्ण रूप से रोकने में असफल रहा है।

...

सहायक

पुस्तकों

की

सूची

## सहायक ग्रंथ सूची

### संस्कृत

अग्नि पुराण	व्यास, वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १८५७
अलङ्कार- कौस्तुभ	चरित्र रिसर्च सोसाइटी सीरीज
अभिनवभारती	अभिनवगुप्त गायकवाड औरियन्टल सीरीज, बडौदा
काव्यादर्श	दण्डी श्रीमज्जीवानन्द विद्यासागर प्रकाशन, कलकत्ता , सन् १९६६
काव्यालङ्कार	भामह चौसम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१
कालिदास- रघुवंश	( टीका० मल्लिनाथ ) चौसम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१



काव्यानुशासन

हेमचन्द्र

तैत्तिरीय उपनिषद्

गीता प्रेस, गोरखपुर

सं० १९६३

नाट्यशास्त्र

भरत मुनि

डा० रघुवीर,

मीतीलाल बना रसीदास,

वाराणसी, १९६४

साहित्यदर्पण

विश्वनाथ

निर्णय सागर प्रेस, बम्बई,

१९२२ ई०

सरस्वती कण्ठाभरण

मीन

( व्याख्याकार कामेश्वरनाथ मिश्र )

दौलम्बा बीरियन्टालिया वाराणसी

सं० १९७६

साहित्य कल्पद्रुम

सौमेश्वर

(राजकीय पुस्तकालय मद्रास की हस्तलिखित  
ग्रन्थ )

## हिन्दी

अकबरी दरबार के हिन्दी कवि

डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल  
लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ

वष्टकाप और वल्लभ संप्रदाय

डा० दीन दयालु गुप्त  
हिन्दी साहित्य सम्मेलन,  
प्रयाग ( भाग १-२ )  
सं० २००४ वि०

वाल्मीकि

वाल्मीकि  
संपा० लाल भगवानदीन ,  
उमार्शकर मेहता,  
१९७६

आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप-  
वर्णन

डा० रामशिरोमणि " होरिल "  
सर्वादय प्रकाशन, सासनी गेट ,  
बलीगढ़ , सन् १९७६

इन्द्रावती

नूर मुहम्मद  
संपा० श्यामसुन्दर दास  
ना० प्र० सभा, काशी  
प्रथम संस्करण

कल्याण

सैत वाणी विशेषांक  
गीता प्रेस गोरखपुर  
१६ वर्ष का विशेषांक

कवितावली

तुलसीदास  
गीता प्रेस, गोरखपुर  
तृतीय संस्करण

कृष्ण गीतावली

तुलसीदास  
गीता प्रेस, गोरखपुर  
तृतीय संस्करण

कबीर ग्रन्थावली

संपा० प्रो० पुष्पपाल सिंह  
वशोक प्रकाशन, नई सड़क  
दिल्ली, ब० सं०

काव्यदर्पण

रामदहिन मिश्र  
उपोत ग्रन्थमाला कार्यालय,  
फटना, सन् १९५१

काव्यशास्त्र

डा० शम्भूनाथ पाण्डेय  
तृतीय संस्करण

केशव-सुधा

डा० विजयपाल सिंह  
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली  
प्रथम संस्करण १९६६

केशव-कौमुदी कथात्  
रामचन्द्रिका

लाला मगवानदीन "दीन"  
राम नारायण लाल, इलाहाबाद  
गण्ठावृत्ति, सं० २००४ वि०

गासां द तांसी

डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय  
हिन्दुस्तानी स्कैमी, उत्तर प्रदेश,  
इलाहाबाद, दि० सं०

गौस्वामी तुलसीदास

रामचन्द्र शुक्ल  
ना० प्र० सभा, काशी  
सं० २०२२ वि०

गीतावली

तुलसीदास  
गीता प्रेस, गोरखपुर  
पै० सं० सं० २००६

घनानंद बीर स्वच्छन्द काव्य  
धारा

डा० मनोहर लाल गौड़  
ना० प्र० सभा, काशी  
सं० २०१५ वि०

घनानंद ग्रन्थावली

संपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र  
वाणी वित्तान ब्रह्मात,  
काशी, २००६

चन्द्रसखी और उनका काव्य

फदमावती शक्नम

लोक सेवक प्रकाशन, प्रथम संस्करण  
बुलानाला, बनारस

हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

श्री अथकिशन प्रसाद खंडेलवाल, अष्टम सं०  
विनोद पुस्तक भंडार, आगरा

जीवन के तत्त्व और काव्य के  
सिद्धान्त

लक्ष्मीनारायण सुधाशु  
जनवाणी प्रकाशन,  
कलकत्ता, सन् १९५०

तुलसी

संपा० डा० उदय मानु सिंह  
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली  
१९६५

गोस्वामी तुलसीदास

रामचन्द्र शुक्ल  
ना० प्र० समा, काशी  
सं० १९६०

तुलसी ग्रन्थावली

रामचन्द्र शुक्ल  
ना० प्र० समा० काशी,  
वृ० सं० २००४ वि०

तुलसी काव्य-मीमांसा

डा० उदयभानु सिंह  
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली  
१९६६

दादू कयाल

संपा० परशुराम चतुर्वेदी  
ना० प्र० सभा० काशी  
प्रथम संस्करण

नवरस

गुलाबराय  
ना० प्र० सभा० वारा (बिहार)  
१९५५

नागरीदास ग्रन्थावली

संपा० डा० किशोरी लाल गुप्त  
ना० प्र० सभा० काशी  
प्रथम संस्करण

फुमावत

जायसी  
(संपा०) डा० माताप्रसाद गुप्त  
भारती मण्डार, इलाहाबाद  
प्रथम संस्करण १९६३

प्रणव भारती

बौकार नाथ ठाकुर  
इंडियन प्रेस, बनारस

पारिभाषिक शब्द कोश

राजेन्द्र सिंह द्विवेदी

वात्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

१९५५

बिहारी बोधिनी

लाला भगवानदीन

साहित्य सेवा सदन, बनारस

२००७ वि०

बिहारी रत्नाकर

जगन्नाथ दास रत्नाकर

ग्रंथकार, सिवाला, बनारस

सं० १९६०

मधुकालीन हिन्दी कवियों  
का वात्सल्य चित्रण

डा० कवधेश्वर 'वरुण'

रेखा प्रकाशन, मुजफ्फरनगर

प्र० सं० १९७६

भारतीय काव्य में नारी

डा० गजानन शर्मा

रचना प्रकाशन, इलाहाबाद

प्र० सं० १९७२

मध्यकालीन धर्म साधना

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

साहित्य भवन, इलाहाबाद

तृतीय संस्करण

मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ

डा० सावित्री सिन्हा

वात्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

सन् १९५३

मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति परंपरा  
वौर लोक-संस्कृति

डा० रामेश्वर दयाल

पाण्डुलिपि प्रकाशन, नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण, १९७५

मध्यकालीन काव्य प्रभा

संपा० डा० नरेन्द्र कुमार शर्मा

डा० हरिमोल

अभिनव प्रकाशन, वागरा

प्रथम संस्करण १९७६

मधु मालती

मैकन

संपा० डा० शिव गोपाल मिश्र

नया संसार प्रेस, वाराणसी

प्र० सं० १९५७

रस-रत्नाकर

हरिश्चंद्र शर्मा

रामनारायण लाल, इलाहाबाद,

सन् १९४५

रस-मीमांसा

रामचन्द्र शुक्ल

ना० प्र० सभा० काशी

तृ० सं० सं० २०१७ वि०



रसज्ञान ग्रन्थावली

सैपा० डा० भवानी शर्मा या शर्मा  
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग  
प्रथम संस्करण

रसज्ञान ग्रन्थावली

देशराज भाटी  
वशीक प्रकाशन,  
प्रथम संस्करण, १९६६

रस-कलस

वयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिवोध"  
हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस  
सं० २००८ वि०

राजस्थानी भाषा और साहित्य

मौलीलाल मेनारिया  
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग  
तृतीय संस्करण

रागकल्पद्रुम भाग १-२

कृष्णानन्द व्यास

रामचरितमानस

गौस्वामी तुलसीदास  
टीका० श्यामसुन्दरदास  
इंडियन प्रेस, प्रयाग

रीतिकाव्य की भूमिका

डा० नगैन्द्र

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

सन् १९५३

ब्रज विलास

ब्रजवासीदास

डैकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई

सं० १९६४ वि०

सर जार्ज ग्रियर्सन

मार्टिन वर्नाबिल्लर लिटरेचर बाफ

हिन्दुस्तान

सटिप्पण कृवाद

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, प्रथम

संस्करण, वाराणसी

संक्षिप्त नव रत्न

मित्रबन्धु

गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ

छठी आवृत्ति

संगीत-सुधाकर

हरिपाल देव

गायकवाड ऑरियन्टल स्टोरीज एजेंडा

संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी  
रचनाएं

नमदेश्वर चतुर्वेदी

साहित्य भवन लि० इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

सैत-सुधा-सार

वियोगी हरि

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रथम संस्करण , १९५३

सैत- दर्शन

डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

साहित्य निकेतन कानपुर

प्रथम संस्करण , १९५३

साहित्यशास्त्र

डा० राम कुमार वर्मा

लोक भारती प्रकाशन,

इलाहाबाद , १९६८

सूरसाहित्य

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी ग्रन्थार्त्ताकर, बम्बई

१९५६

सूर और उनका साहित्य

डा० हरबंश लाल शर्मा

भारत प्रकाशन मंदिर, कलिंगद

सूर सागर

सूरदास

भारत प्रकाशन , दिल्ली

तृतीय संस्करण , १९५६

सूरदास

डा० ब्रजेश्वर वर्मा

हिन्दी परिषद् विश्व विद्यालय  
प्रयाग

सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य डा० शिव प्रसाद सिंह

भारत प्रकाशन मंदिर, कलिंगद  
प्रथम संस्करण

हिन्दी साहित्य का इतिहास

रामचन्द्र शुक्ल

ना० प्र० सभा काशी,

संवत् २०२५ वि०

हिन्दी साहित्य का इतिहास

डा० नगेन्द्र

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रथम संस्करण

हिन्दी साहित्य का आलोचना-  
त्मक इतिहास

डा० राम कुमार वर्मा

रामनारायण लाल, प्रयाग

द्वि० सं० सन् १९४८

हिन्दी साहित्य

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

वतचन्द्र कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली

प्रथम संस्करण, सं० २००६ वि०

हिन्दी भाषा और साहित्य

श्याम सुन्दर दास

इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास

डा० मणीरथ मिश्र  
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ  
संवत् २००५

हिन्दी काफ मेडिकल इंडिया

डा० ईश्वरी प्रसाद  
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

हिन्दी साहित्य

डा० रामरत्न भटनागर  
कितान मकल, इलाहाबाद

हिन्दी साहित्य का वृहत्  
इतिहास

डा० मणीरथ मिश्र  
भा. प्र. सभा, काशी, सप्तम भाग  
प्रथम संस्करण

हिन्दी कृष्ण चरित काव्य

डा० हिम्मत सिंह जैन  
शारदा प्रकाशन, दिल्ली  
प्रथम संस्करण

हिन्दी सैत काव्य संग्रह

श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी  
हिन्दुस्तानी स्कैडेमी, उ०प्र०  
इलाहाबाद सन् १९५२  
द्वि० सं०

हिन्दी काव्य में प्रेम-भावना

डा० राम कुमार लण्डेलवाल

बनौरी प्रेस, सदर बाजार

मथुरा

संस्करण १९७६

बीजी ग्रंथ

विलियम मैक्डगल

एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइकालोजी

मैथुन एण्ड कम्पनी लि०

लन्डन , १९५६

२० केन

हमोशन्स एण्ड द विल